अक्तूबर-दिसंबर, 2016 [संयुक्तांक]

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

प्रधान संपादक
डा. एम. सी. पांडेय

महत्वपूर्ण निर्णय

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) – धारा 7, अनुच्छेद 60, 109, 110 और 113 [सपठित हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 11] – हिंदू अप्राप्तवय की स्थावर संपत्ति का अंतरण – हिंदू अप्राप्तवय की पैतृक संपत्ति का अंतरण मिताक्षरा विधि द्वारा शासित है और अप्राप्तवय द्वारा प्राप्तवयता पाने के पश्चात् परिसीमा अधिनियम की धारा 7 के अधीन नहीं बल्कि अधिनियम के अनुच्छेद 60 के अंतर्गत यथापरिकल्पित वाद फाइल किया जाना उचित और न्यायसंगत है ।

नारायण बनाम **बाबासाहेब और अन्य** 24

संसद् के अधिनियम

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ (1) – (21)

पृष्ठ संख्या 1 – 198 **[2016] 4 उम. नि. प.**

विधि साहित्य प्रकाशन
विधायी विभाग
विधि और न्याय मंत्रालय
भारत सरकार

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका – अक्तूबर-दिसंबर, 2016 [संयुक्तांक] [पृष्ठ संख्या 1 – 198]

संपादक-मंडल

डा. जी. नारायण राजू,
सचिव, विधायी विभाग

डा. रीटा वशिष्ठ, अपर सचिव,
विधायी विभाग

डा. बी. एन. मणि,
सेवानिवृत्त अपर विधि सलाहकार,
विधि मंत्रालय

डा. सुरेन्द्र कुमार शर्मा, प्रिन्सिपल,
विधि विभाग, डी आई आर डी, गुरु गोविंद सिंह इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय

डा. ऋषिपाल सिंह,
सेवानिवृत्त संयुक्त सचिव एवं विधायी परामर्शी, राजभाषा खंड

श्री कृष्ण गोपाल अग्रवाल,
सेवानिवृत्त संपादक, वि.सा.प्र.

डा. अनुराग दीप,
एसोसिएट प्रोफेसर,
भारतीय विधि संस्थान

डा. मिथिलेश चन्द्र पांडेय,
प्रधान संपादक

श्री विनोद कुमार आर्य,
संपादक

श्री कमला कान्त,
संपादक

सहायक संपादक : सर्वश्री अविनाश शुक्ला, असलम खान और पुण्डरीक शर्मा

उप-संपादक : सर्वश्री महीपाल सिंह और जसवन्त सिंह

कीमत : डाक-व्यय सहित

एक प्रति : ₹ 57

वार्षिक : ₹ 225

© 2016 भारत सरकार, विधि और न्याय मंत्रालय

प्रकाशन और विक्रय प्रबंधक, विधि साहित्य प्रकाशन, विधि और न्याय मंत्रालय (विधायी विभाग), भगवानदास मार्ग, नई दिल्ली-110001 द्वारा प्रकाशित तथा..... द्वारा मुद्रित ।

भारत के समाचारपत्रों के रजिस्ट्रार द्वारा रजिस्ट्रीकृत रजि. सं. 16288/68

सादर

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा तीन मासिक निर्णय पत्रिकाओं – उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका का प्रकाशन किया जाता है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका में उच्चतम न्यायालय के चयनित निर्णयों को और उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका तथा उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिकाओं में देश के विभिन्न उच्च न्यायालयों के क्रमशः चयनित सिविल और दांडिक निर्णयों को हिन्दी में प्रकाशित किया जाता है । इन पत्रिकाओं को और अधिक आकर्षक बनाने के लिए इनमें जनवरी, 2010 के अंक से महत्वपूर्ण केन्द्रीय अधिनियमों का प्राधिकृत हिन्दी पाठ पाठकों की सुविधा के लिए शृंखलाबद्ध रूप से प्रकाशित किया जा रहा है । तीनों निर्णय पत्रिकाओं की वार्षिक कीमत केवल ₹ 495/- है । उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 225/- है, उच्च न्यायालय सिविल निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है और उच्च न्यायालय दांडिक निर्णय पत्रिका की वार्षिक कीमत ₹ 135/- है । तीनों मासिक निर्णय पत्रिकाओं के नियमित ग्राहक बनकर हिन्दी के प्रचार-प्रसार के इस महान यज्ञ के भागी बन कर अनुगृहीत करें ।

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

दूरभाष : 011-23387589, 23385259, 23382105

विधि साहित्य प्रकाशन द्वारा प्रकाशित और विक्रय के लिए उपलब्ध विधि पाठ्य पुस्तकों की सूची

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	कीमत (₹)
1.	भारत का विधिक इतिहास	श्री सुरेन्द्र मधुकर	410	30.00
2.	माल विक्रय और परक्राम्य लिखत विधि	डा. एन. पी. परांजपे	371	40.00
3.	वाणिज्य विधि	डा. आर. एल. भट्ट	630	108.00
4.	अपकृत्य विधि के सिद्धान्त (तृतीय संस्करण)	श्री शर्मन लाल अग्रवाल	357	40.00
5.	अंतर्राष्ट्रीय विधि के प्रमुख निर्णय (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. सी. खरे	273	115.00
6.	मानव अधिकार	डा. शिवदत्त शर्मा	340	120.00
7.	दण्ड प्रक्रिया संहिता	न्या. महावीर सिंह	840	200.00

पुस्तकों की सूची जिन पर छूट देने की स्वीकृति प्राप्त की गई है ।

	पुस्तक का नाम	लेखक	पृष्ठ सं.	मूल दर (₹)	संशोधित दर (₹)
1.	संविदा विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रामगोपाल चतुर्वेदी	552	275.00	137.00
2.	श्रम विधि (तृतीय संस्करण)	श्री गोपी कृष्ण अरोड़ा	658	452.00	226.00
3.	चिकित्सा न्यायशास्त्र और विष विज्ञान (तृतीय संस्करण)	डा. सी. के. पारिख अनुवादक डा. एन. के. पटौरिया	969	293.00	146.00
4.	आधुनिक पारिवारिक विधि	श्री राम शरण माथुर	767	429.00	214.00
5.	भारतीय स्वातंत्र्य संग्राम (कालजयी निर्णय)	संकलन संपादन – ब्रह्मदेव चौबे	209	225.00	112.00
6.	हिन्दू विधि (द्वितीय संस्करण)	डा. रवीन्द्र नाथ	617	425.00	212.00
7.	भारतीय दंड संहिता	डा. रवीन्द्र नाथ	696	741.00	370.00
8.	भारतीय भागीदारी अधिनियम (द्वितीय संस्करण)	श्री माधव प्रसाद वशिष्ठ	272	165.00	82.00
9.	प्रशासनिक विधि (तृतीय संस्करण)	डा. कैलाश चन्द्र जोशी	635	200.00	100.00
10.	विधिक उपचार (द्वितीय संस्करण)	डा. एस. के. कपूर	414	311.00	155.00
11.	विधि शास्त्र	डा. शिवदत्त शर्मा	501	580.00	377.00

विधि साहित्य प्रकाशन

(विधायी विभाग)

विधि और न्याय मंत्रालय

भारत सरकार

भारतीय विधि संस्थान भवन,

भगवान दास मार्ग, नई दिल्ली-110001

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

अक्तूबर-दिसंबर, 2016

निर्णय-सूची

	पृष्ठ संख्या
आर. के. रोजा **बनाम** यू. एस. रायडु और एक अन्य	121
कला **उर्फ** चंद्रकला **बनाम** राज्य **मार्फत** पुलिस निरीक्षक	187
गुजरात राज्य **बनाम** जयराजभाई पुंजाभाई वारु	146
टेकन **उर्फ** टेकराम **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (अब छत्तीसगढ़)	1
नारायण **बनाम** बाबासाहेब और अन्य	24
बलराम यादव **बनाम** फूलमनिया यादव	62
बलवीर सिंह और एक अन्य **बनाम** राजस्थान राज्य और एक अन्य	67
मध्य प्रदेश राज्य **बनाम** गोलू राइकवार और एक अन्य	16
मुख्तयार सिंह **बनाम** पंजाब राज्य	127
मुथुरामलिंगम और अन्य **बनाम** राज्य **मार्फत** पुलिस निरीक्षक	161
राजस्थान राज्य **बनाम** जगराज सिंह **उर्फ** हंसा	93
स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक **बनाम** महाराष्ट्र राज्य	38

संसद् के अधिनियम

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 का हिन्दी में प्राधिकृत पाठ	1 – 21

विषय-सूची

पृष्ठ संख्या

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66)

– धारा 7, 8 और 20 – कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता – वैध रूप से विवाहित पत्नी न होने की घोषणा के लिए कुटुम्ब न्यायालय में वाद फाइल किया जाना – वाद डिक्री किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा कुटुम्ब न्यायालय को नकारात्मक घोषणा की अधिकारिता के अभाव के आधार पर अपील मंजूर किया जाना – यदि किसी व्यक्ति की वैवाहिक प्रास्थिति पर कोई विवाद है, तो उस बाबत घोषणा की ईप्सा केवल कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष की जानी चाहिए और इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह सकारात्मक अनुतोष के लिए है या नकारात्मक अनुतोष के लिए ।

बलराम यादव बनाम **फूलमनिया यादव** 62

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2)

– धारा 31 और 427 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 300] – कई हत्याएं कारित करने के लिए आजीवन कारावास के विभिन्न दंडादेश – दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश दिया जाना – यह विधिक स्थिति भली-भांति सुस्थिर होते हुए कि आजीवन कारावास से विवक्षित अपराधी के शेष बचे जीवन के लिए कारावास होता है, जब तक कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा शेष कारावास का लघुकरण या परिहार नहीं किया जाता, इसलिए आजीवन कारावास के दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश नहीं दिया जा सकता है क्योंकि इससे उस वास्तविकता की अनदेखी होगी कि मानव के पास अन्य सभी जीवित प्राणियों की तरह ही जीने के लिए केवल एक जीवन होता है ।

मुथुरामलिंगम और अन्य बनाम **राज्य** मार्फत **पुलिस निरीक्षक** 161

पृष्ठ संख्या

– धारा 31 और 427 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 300] – कई हत्याएं कारित करने के लिए आजीवन कारावास के साथ-साथ अन्य अवधि के दंडादेश अधिनिर्णीत किया जाना – दंडादेशों के चलने के क्रम का निदेश देने की न्यायालय की शक्ति – न्यायालय विधिसम्मत रूप से यह निदेश दे सकता है कि कैदी अपना आजीवन कारावास प्रारंभ होने से पूर्व पहले आवधिक दंडादेश भुगतेगा, तथापि, इसके प्रतिकूल स्थिति सही नहीं हो सकेगी क्योंकि यदि न्यायालय आजीवन कारावास को पहले आरंभ होने का निदेश देता है तो इससे आवश्यक रूप से यह विवक्षित होगा कि आवधिक दंडादेश साथ-साथ चलेगा, क्योंकि एक बार जब कैदी अपना जीवन कारागार में बिता देता है तो उसके द्वारा कोई और दंडादेश भुगतने का प्रश्न ही नहीं है ।

मुथुरामलिंगम और अन्य बनाम **राज्य** मार्फत **पुलिस निरीक्षक** 161

– धारा 31 और 427 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 300] – कई हत्याएं कारित करने के लिए आजीवन कारावास के विभिन्न दंडादेश – दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश दिया जाना – अनेक हत्याओं या आजीवन कारावास से दंडनीय अन्य अपराधों के लिए आजीवन कारावास के अनेक दंडादेश अधिनिर्णीत किए जा सकते हैं, किंतु इस प्रकार अधिनिर्णीत आजीवन कारावास के दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश नहीं दिया जा सकता है, तथापि, ऐसे दंडादेश एक-दूसरे के ऊपर अधिरोपित होंगे ताकि एक मामले में सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुदत्त किसी परिहार या लघुकरण का फायदा कैदी को अन्य मामले में दिए गए दंडादेश के लिए स्वतः प्राप्त न हो सके ।

मुथुरामलिंगम और अन्य बनाम **राज्य** मार्फत **पुलिस निरीक्षक** 161

पृष्ठ संख्या

– धारा 193 और 190 – शिकायतकर्ता द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थियों के विरुद्ध पुलिस रिपोर्ट में वर्णित अपराध के साथ-साथ अन्य अपराधों के लिए भी संज्ञान करने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन – मजिस्ट्रेट द्वारा आवेदन पर सम्यक् रूप से विचार करने के पश्चात् इसे खारिज किया जाना – मामला विचारण के लिए सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया जाना – शिकायतकर्ता द्वारा सेशन न्यायालय के समक्ष पुनः इसी प्रकार का आवेदन फाइल किया जाना – सेशन न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थियों की सुनवाई करने के पश्चात् आवेदन मंजूर किया जाना – सेशन न्यायालय मूल अधिकारिता का प्रयोग करते हुए मामले में दूसरी बार संज्ञान नहीं ले सकता था, किंतु मजिस्ट्रेट का आदेश उच्चतर न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण योग्य था और चूंकि सेशन न्यायालय द्वारा अभियुक्तों को सुनवाई का अवसर देते हुए आदेश पारित किया था, इसलिए यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन ऐसे आदेश में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है ।

बलवीर सिंह और एक अन्य बनाम **राजस्थान राज्य और एक अन्य** 67

– धारा 193 और 190 – शिकायतकर्ता द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अतिरिक्त धारा 498क और 304ख के अधीन भी अपराध का संज्ञान लेने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन – आवेदन खारिज करते हुए मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया जाना – शिकायतकर्ता द्वारा सेशन न्यायालय के समक्ष पुनः इसी प्रकार का आवेदन फाइल किया जाना – सेशन न्यायालय द्वारा आवेदन पर संज्ञान लिया जाना और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किया जाना – जब मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्तों की सुनवाई करने के पश्चात् सम्यक् रूप से मस्तिष्क का प्रयोग करते हुए

पृष्ठ संख्या

मामले में संज्ञान लिया गया हो, तब सेशन न्यायालय द्वारा मूल अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में मामले में दूसरी बार संज्ञान लेना अनुज्ञेय नहीं होगा क्योंकि संज्ञान केवल एक बार लिया जा सकता है ।

बलवीर सिंह और एक अन्य बनाम **राजस्थान राज्य और एक अन्य** 67

– धारा 357क – आहत को दिया जाने वाला प्रतिकर – आहत का विकलांग होना – पुनर्वास के लिए राज्य की बाध्यता – आहत प्रतिकर योजना – आहत की किसी भी व्यक्ति द्वारा देखभाल नहीं की जा रही है और उसे भावनात्मक या आर्थिक रूप से कोई सहायता नहीं मिल रही है और वह अकेली रहती है, ऐसी स्थिति में बलात्संग की आहत महिला को एक लाख रुपए एक मुश्त देने के बजाय आजीवन प्रतिमास 8,000/- रुपए उक्त राशि पर ब्याज के रूप में संदाय किया जाना न्याय के हित में होगा ।

टेकन उर्फ **टेकराम** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य (अब छत्तीसगढ़)** 1

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45)

– धारा 300 – हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – अभियुक्त-अपीलार्थी (पत्नी) द्वारा अन्य व्यक्तियों के साथ मिलकर अभिकथित रूप से साड़ी के टुकड़े से गला घोंटकर अपने पति की हत्या किया जाना और शव को एक मोपेड में डालकर नहर के पुल के नीचे रखा जाना – पुलिस द्वारा की गई शव की बरामदगी अभियुक्तों के बताने पर न होने, साड़ी के टुकड़े और मोपेड की बरामदगियों का अपराध से संबंध साबित न होने, अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा मृतक की बहिन से की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति संदेहास्पद और अन्य साक्ष्य से संपुष्टि न होने के कारण अभियोजन पक्ष अभियुक्त को दोषी

पृष्ठ संख्या

ठहराने के लिए परिस्थितियों की श्रृंखला को पूर्ण करने में सफल नहीं रहा है इसलिए अभियुक्त-अपीलार्थी संदेह का फायदा प्राप्त करने की हकदार है ।

कला उर्फ **चंद्रकला** बनाम **राज्य** मार्फत **पुलिस निरीक्षक** 187

– धारा 302 – हत्या – मृतक को कारित अनेक क्षतियां – किसी भी एक क्षति का पृथक् रूप से गंभीर न होना – कारित क्षतियों का संचयी प्रभाव – मृतक को कारित क्षतियां संचयी रूप से प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित किए जाने के लिए पर्याप्त हैं भले ही कारित क्षतियों में से कोई भी एक क्षति प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त न हो, ऐसी स्थिति में अपराध धारा 304 भाग I के अंतर्गत नहीं अपितु धारा 300 के तीसरे खंड के अंतर्गत आएगा ।

मध्य प्रदेश राज्य बनाम **गोलू राइकवार और एक अन्य** 16

– धारा 376 – बलात्संग – नेत्रहीन अभियोक्त्री के साथ दुष्कर्म – पंचायत और चिकित्सक के साक्ष्य सहित चिकित्सीय साक्ष्य की संपुष्टि – अभियोक्त्री द्वारा अभियुक्त की समुचित शनाख्त – अभियोक्त्री के कथन की पुष्टि चिकित्सक और पंचायत में उपस्थित व्यक्तियों के साक्ष्य तथा चिकित्सा रिपोर्टों से होती है साथ ही अभियोक्त्री ने अभियुक्त की आवाज पहचान कर स्पष्ट शनाख्त की है, ऐसी स्थिति में निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए दोषसिद्धि के निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

टेकन उर्फ **टेकराम** बनाम **मध्य प्रदेश राज्य (अब छत्तीसगढ़)** 1

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26)

– धारा 141(2) [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482] – चेक का अनादरण – समन आदेश के विरुद्ध अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग – जहां परिवाद में

पृष्ठ संख्या

कंपनी, अध्यक्ष, प्रबंध निदेशक और पूर्णकालिक निदेशक और कार्यपालक निदेशक के विरुद्ध सक्रिय मौनानुकूलता, रिष्टि और प्रश्नगत चेक जारी करने में साशय का प्राख्यान किया गया हो, वहां उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध समन जारी करने के लिए परिवाद में किसी विनिर्दिष्ट प्रकथन के न होने का निष्कर्ष निकालना बिल्कुल गलत है और विधि के प्रतिकूल है ।

स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक बनाम **महाराष्ट्र राज्य** 38

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36)

– धारा 7, अनुच्छेद 60, 109, 110 और 113 [सपठित हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 11] – हिंदू अप्राप्तवय की स्थावर संपत्ति का अंतरण – हिंदू अप्राप्तवय की पैतृक संपत्ति का अंतरण मिताक्षरा विधि द्वारा शासित है और अप्राप्तवय द्वारा प्राप्तवयता पाने के पश्चात् परिसीमा अधिनियम की धारा 7 के अधीन नहीं बल्कि अधिनियम के अनुच्छेद 60 के अंतर्गत यथापरिकल्पित वाद फाइल किया जाना उचित और न्यायसंगत है ।

नारायण बनाम **बाबासाहेब और अन्य** 24

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49)

– धारा 7, 13(1)(घ), (13(2) और 20 – लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति – अभिलेख के तथ्यों से संदेह के परे यह साबित होने पर कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने एक विशिष्ट कार्य करने के लिए धन की मांग की थी और उसने वास्तव में इसे स्वीकार किया था और उसे छापामार दल द्वारा रंगे-हाथों पकड़ा गया था, इसलिए निचले न्यायालयों द्वारा की गई उसकी दोषसिद्धि उचित है और उसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

मुख्तयार सिंह बनाम **पंजाब राज्य** 127

पृष्ठ संख्या

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1)

– धारा 24 – न्यायिकेतर संस्वीकृति – मृतक की बहिन द्वारा यह साक्ष्य दिया जाना कि अभियुक्त-अपीलार्थी (मृतक की पत्नी) ने उसके समक्ष यह संस्वीकृति की थी कि उसने, उसके भतीजे और पिता ने मृतक की हत्या की है और शव नहर के पुल के नीचे रख दिया है – अभिलेख के साक्ष्य से यह दर्शित होने पर कि साक्षी और अभियुक्त-अपीलार्थी के बीच संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं थे, इसलिए दुश्मन व्यक्ति के समक्ष संस्वीकृति करने की बात अत्यधिक असंभाव्य है और ऐसी परिस्थितियों में मृतक की बहिन के समक्ष की गई संस्वीकृति विश्वासोत्पादक नहीं होने के कारण अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि उचित नहीं है ।

कला उर्फ **चंद्रकला** बनाम **राज्य** मार्फत **पुलिस निरीक्षक** 187

– धारा 32 – मृतका द्वारा पुलिस अधिकारी तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष मृत्युकालिक कथन – मृतका द्वारा अपने कथन में यह कहा जाना कि उस पर मिट्टी का तेल छिड़क कर आग लगाने वाला व्यक्ति अनजान व्यक्ति था और प्रत्यर्थी-पति तथा ससुराल वालों की कोई अंतर्ग्रस्तता नहीं थी – प्रत्यर्थी को अंतर्वलित करते हुए मृतका द्वारा अपने पिता के समक्ष किया गया मौखिक कथन विश्वसनीय न पाया जाना – पुलिस अधिकारी तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रत्यर्थी की भूमिका के बारे में किए गए दोनों कथनों में कोई विरोधाभास न पाए जाने तथा पिता के समक्ष किया गया मौखिक कथन विश्वसनीय न पाए जाने पर उसके एकमात्र कथन के आधार पर प्रत्यर्थी को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है ।

गुजरात राज्य बनाम **जयराजभाई पुंजाभाई वारु** 146

पृष्ठ संख्या

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5)

– आदेश 7, नियम 11 – वादपत्र (निर्वाचन याचिका) को वाद हेतुक के अभाव में नामंजूर किए जाने के लिए आवेदन – उच्च न्यायालय द्वारा आवेदन को मुख्य याचिका की अंतिम सुनवाई के समय सूचीबद्ध किए जाने का आदेश किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण विधि के अनुसार नहीं है क्योंकि आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल किए गए आवेदन का निपटारा किए बिना न्यायालय विचारण को अग्रसर नहीं कर सकता है, अतः आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है ।

आर. के. रोजा बनाम **यू. एस. रायडु और एक अन्य** 121

स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (1985 का 61)

– धारा 42(1) और 42(2) – तलाशी और अभिग्रहण – थाना अधिकारी द्वारा गुप्त इत्तिला प्राप्त होने पर उसे लेखबद्ध किया जाना – इत्तिला की प्रति अपने अव्यवहित ज्येष्ठ अधिकारी को भेजा जाना – थाना अधिकारी द्वारा इत्तिला की जो प्रति सर्किल आफिसर को भेजी गई थी, वह उसके द्वारा लेखबद्ध इत्तिला के अनुसार नहीं थी, अतः, उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई गलती नहीं की है कि धारा 42(2) का भंग हुआ था, इसलिए अभियुक्त की दोषमुक्ति उचित है ।

राजस्थान राज्य बनाम **जगराज सिंह** उर्फ **हंसा** 93

– धारा 42(2) का परंतुक – वारंट के बिना सूर्यास्त के पश्चात् तलाशी – थाना अधिकारी द्वारा गुप्त इत्तिला प्राप्त होने पर तलाशी लेने के लिए अग्रसर होने से पूर्व धारा 42 की उपधारा (1) के परंतुक या धारा 42 की उपधारा (2) द्वारा यथापरिकल्पित विश्वास का कोई आधार लेखबद्ध न किए जाने के कारण धारा 42(2) के परंतुक का

पृष्ठ संख्या

अतिक्रमण हुआ था क्योंकि तलाशी सूर्यास्त के पश्चात् ली गई थी, अतः उच्च न्यायालय द्वारा की गई अभियुक्त की दोषमुक्ति उचित है ।

राजस्थान राज्य बनाम **जगराज सिंह** उर्फ **हंसा** 93

तुलनात्मक सारणी

उच्चतम न्यायालय निर्णय पत्रिका

[2016] 4 उम. नि. प.

अक्तूबर-दिसम्बर, 2016

क्र. सं.	निर्णय का नाम व तारीख	उम. नि. प.	ए. आई. आर. (एस. सी.)	एस. सी. सी.
1	2	3	4	5
1.	टेकन **उर्फ** टेकराम **बनाम** मध्य प्रदेश राज्य (अब छत्तीसगढ़) (11.2.2016)	[2016] 4 1	2016 817	(2016) 4 461
2.	मध्य प्रदेश राज्य **बनाम** गोलू राइकवार और एक अन्य (2.3.2016)	16	1182	- -
3.	नारायण **बनाम** बाबासाहेब और अन्य (5.4.2016)	24	1666	6 725
4.	स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक **बनाम** महाराष्ट्र राज्य (6.4.2016)	38	1750	- -
5.	बलराम यादव **बनाम** फूलमनिया यादव (27.4.2016)	62	2161	- -
6.	बलवीर सिंह और एक अन्य **बनाम** राजस्थान राज्य और एक अन्य (10.5.2016)	67	2266	6 680

1	2	3	4	5
7.	राजस्थान राज्य **बनाम** जगराज सिंह **उर्फ** हंसा (9.6.2016)	[2016] 4 93	2016 3041	(2016) - -
8.	आर. के. रोजा **बनाम** यू. एस. रायडु और एक अन्य (4.7.2016)	121	3282	- -
9.	मुख्तयार सिंह **बनाम** पंजाब राज्य (5.7.2016)	127	3100	- -
10.	गुजरात राज्य **बनाम** जयराजभाई पुंजाभाई वारु (11.7.2016)	146	3218	- -
11.	मुथुरामलिंगम और अन्य **बनाम** राज्य **मार्फत** पुलिस निरीक्षक (19.7.2016)	161	3340	- -
12.	कला **उर्फ** चंद्रकला **बनाम** राज्य **मार्फत** पुलिस निरीक्षक (12.8.2016)	187	3912	- -

(xi) (xii)

[2016] 4 उम. नि. प. 1

टेकन उर्फ **टेकराम**

बनाम

मध्य प्रदेश राज्य (अब छत्तीसगढ़)

11 फरवरी, 2016

न्यायमूर्ति एम. वाई. इकबाल और न्यायमूर्ति अरुण मिश्र

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 376 – बलात्संग – नेत्रहीन अभियोक्त्री के साथ दुष्कर्म – पंचायत और चिकित्सक के साक्ष्य सहित चिकित्सीय साक्ष्य की संपुष्टि – अभियोक्त्री द्वारा अभियुक्त की समुचित शनाख्त – अभियोक्त्री के कथन की पुष्टि चिकित्सक और पंचायत में उपस्थित व्यक्तियों के साक्ष्य तथा चिकित्सा रिपोर्टों से होती है साथ ही अभियोक्त्री ने अभियुक्त की आवाज पहचान कर स्पष्ट शनाख्त की है, ऐसी स्थिति में निचले न्यायालयों द्वारा निकाले गए दोषसिद्धि के निष्कर्षों में हस्तक्षेप नहीं किया जा सकता ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 357क – आहत को दिया जाने वाला प्रतिकर – आहत का विकलांग होना – पुनर्वास के लिए राज्य की बाध्यता – आहत प्रतिकर योजना – आहत की किसी भी व्यक्ति द्वारा देखभाल नहीं की जा रही है और उसे भावनात्मक या आर्थिक रूप से कोई सहायता नहीं मिल रही है और वह अकेली रहती है, ऐसी स्थिति में बलात्संग की आहत महिला को एक लाख रुपए एक मुश्त देने के बजाय आजीवन प्रतिमास 8,000/- रुपए उक्त राशि पर ब्याज के रूप में संदाय किया जाना न्याय के हित में होगा ।

इस मामले में अभियुक्त-अपीलार्थी टेकन ने अभियोक्त्री के साथ विवाह करने के बहाने से समय-समय पर संभोग किया और अंत में अभियोक्त्री गर्भवती हो गई तथा अपीलार्थी ने उससे विवाह करने से इनकार कर दिया । अभियुक्तों की ओर से रिपोर्ट दर्ज कराई गई ।

अभियुक्त-अपीलार्थी को गिरफ्तार किया गया और दंड संहिता की धारा 376 के अधीन न्यायालय के समक्ष विचारण किया गया । विचारण न्यायालय ने अभियुक्त-अपीलार्थी को बलात्संग के अपराध का दोषी पाया । अभियुक्त-अपीलार्थी ने विचारण न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने तथ्यों और संपूर्ण साक्ष्य का परिशीलन किया और विचारण न्यायालय के निर्णय और आदेश को उचित ठहराते हुए अभियुक्त-अपीलार्थी की अपील खारिज कर दी । उसके पश्चात् अभियुक्त-अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय ने निचले दोनों न्यायालयों के निर्णयों की पुष्टि करते हुए अभियुक्त-अपीलार्थी को बलात्संग के अपराध का दोषी पाया । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय ने अपीलार्थी और राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेलों को सुना । न्यायालय ने अभियोजन पक्ष की ओर से अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर दोनों न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों पर सूक्ष्मता से विचार किया । इस मामले का अति सावधानी से परिशीलन करने के पश्चात् न्यायालय का यह सुनिश्चित मत है कि अभियोजन पक्ष ने सभी युक्तियुक्त संदेहों के परे अपीलार्थी का दोष साबित कर दिया है । अतः इस न्यायालय को दोनों न्यायालयों द्वारा पारित किए गए निर्णयों में कोई भी कमी या अविधिकता दिखाई नहीं देती है । इस प्रकार, दोषसिद्धि का निर्णय विधि की दृष्टि से कायम रखा जाना चाहिए । (पैरा 7)

अब विचार के लिए यह प्रश्न सामने आता है कि क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अभियोक्त्री, एक आहत को दिए जाने वाले प्रतिकर की हकदार है या नहीं, यदि वह हकदार है, तब उसकी कितनी सीमा होनी चाहिए ? सुनवाई के दौरान, इस न्यायालय ने तारीख 1 जुलाई, 2015 को पारित आदेश द्वारा प्रत्यर्थी राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल को यह निदेश दिया कि वह आहत को दिए जाने वाले प्रतिकर योजना की एक प्रति, जो छत्तीसगढ़ राज्य में लागू होती है, फाइल करे और आहत, उसके भाइयों और अभियुक्त-अपीलार्थी की वित्तीय हैसियत के संबंध में जांच करे । उपर्युक्त आदेश के अनुसरण में, राज्य के विद्वान् काउंसेल ने एक अतिरिक्त शपथपत्र फाइल किया है जिसमें आहत और अभियुक्त की वित्तीय हैसियत को सुनिश्चित करने के संबंध में की

गई जांच के ब्यौरे दिए गए हैं और अभिलेख पर अधिसूचना/प्रतिकर योजना की एक प्रति भी प्रस्तुत की है । इस संबंध में की गई जांच से यह प्रकट होता है कि आहत, जिसकी अब आयु लगभग 37 वर्ष है, ग्राम नंदिनी कुंदिनी, जिला दुर्ग, छत्तीसगढ़ में अकेली रहती है । वह अविवाहित है और एक कच्चे मकान में रहती है । आहत के दो भाई हैं जो उससे अलग रहते हैं । आहत का एक भाई ईश्वरी साहू एक अलग ग्राम धौर (नंदिनी कुंदिनी से 12 किलोमीटर दूर) में रहता है । दूसरा भाई बलदऊ साहू जिला भीला (नंदिनी कुंदिनी से 22 किलोमीटर दूर) में रहता है और दैनिक मजदूर है । अभियोक्त्री को अशक्तता (विकलांग) होने के आधार पर 300/- रुपए प्रतिमास की राशि पेंशन के रूप में मिलती है । वह बीपीएल कार्ड धारक है जिसके आधार पर वह प्रतिमास 35 किलोग्राम चावल 1 रुपया किलोग्राम की दर से और निःशुल्क नमक पाने की हकदार है । आहत के भाइयों की आर्थिक अवस्था भी अच्छी नहीं है । अभियुक्त की वित्तीय/आर्थिक अवस्था के संबंध में की गई जांच से यह भी प्रकट होता है कि अभियुक्त उसी ग्राम अर्थात् नंदिनी कुंदिनी में रहता है जहां आहत रहती है । अपीलार्थी-अभियुक्त विवाहित है और उसके चार बच्चे हैं । अभियुक्त की माता भी उसके साथ रहती है । उसे पैतृक सम्पत्ति के रूप में लगभग 2 एकड़ भूमि विरासत में मिली है जो कि उसकी जीविका का स्रोत है । इसके अतिरिक्त अभियुक्त की पत्नी नीला कार्ड धारक है जिसके आधार पर वह अपने परिवार के लिए 2 रुपया प्रति किलोग्राम की दर से 35 किलोग्राम चावल प्रतिमास प्राप्त करने की हकदार है । अभियुक्त पक्के मकान में रहता है । विभिन्न राज्यों और संघ शासित राज्य क्षेत्रों की उपर्युक्त आहत प्रतिकर योजना का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बलात्संग के आहत को बलात्संग और पुनर्वास के लिए प्रतिकर उपलब्ध कराने में एक जैसी रीति नहीं अपनाई गई है । धारा 357क के अधीन 20,000/- रुपए से 1,00,000/- रुपए प्रतिकर के रूप में भिन्न-भिन्न राशि दिए जाने की इस परिपाटी पर सभी राज्यों और संघ शासित राज्य क्षेत्रों द्वारा सावधानी से विचार किया जाना चाहिए । उन्हें गोवा राज्य में विरचित योजना के आधार पर विशेषकर बलात्संग की आहतों को एक समान राशि, अर्थात् 1,00,000/- रुपए, दिए जाने के लिए सूत्र विरचित करने चाहिए । बलात्संग के आहत को अनुतोष दिए जाने और उसका पुनर्वास किए जाने के लिए भिन्न-भिन्न योजनाओं का परिशीलन करते हुए इस न्यायालय ने दिल्ली डोमेस्टिक वर्किंग वोमेंस फोरम बनाम भारत संघ और अन्य (दांडिक रिट याचिका सं. 362/93) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए गए निदेश के आधार पर राष्ट्रीय

महिला आयोग द्वारा बनाई गई योजना का भी परिशीलन किया है जिसके द्वारा इस न्यायालय ने अन्य बातों के साथ राष्ट्रीय महिला आयोग को ऐसी योजना बनाने का निदेश दिया था ताकि बलात्संग की आहत महिलाओं को राहत दी जा सके । महिला आयोग द्वारा इस योजना का परिशोधन तारीख 15 अप्रैल, 2010 को किया गया । इस योजना के अधीन जो आवेदन किया गया वह योजना के पैरा 22 में यथाउपबंधित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357, 357क के अधीन किए जाने वाले आवेदन के अतिरिक्त था । इस योजना के अधीन वर्तमान मामले जैसे विशेष मामलों में जिनमें अपराध किसी ऐसी विकलांग महिला के साथ कारित किया गया हो जिसे विशेष देख-रेख और उपचार की आवश्यकता है, आहत को अनुतोष और पुनर्वास के लिए अधिकतम 3,00,000/- (तीन लाख) रुपए दिए जा सकते हैं । वर्तमान मामले पर विचार करने पर यह पता चलता है कि आहत शारीरिक रूप से विकलांग है, वह इस घटना के पूर्व भी सामाजिक रूप से असुविधाजनक स्थिति से जूझ रही थी जो अभियुक्त द्वारा उसके साथ कपट किए जाने और विवाह करने का मिथ्या वचन देने जैसे दूषित आशय से उद्भूत हुई थी और इसके परिणामस्वरूप आहत को दोहरी असुविधाजनक स्थिति का सामना करना पड़ा और कई वर्षों की प्रतीक्षा के पश्चात् उसकी स्थिति और बिगड़ गई है । आहत के लिए यह संभव नहीं होगा कि वह राष्ट्रीय महिला आयोग के समक्ष आवेदन करे और अनुतोष तथा पुनर्वास के लिए प्रयास करे । आहत के अनुसार, उसने अपराध के दिन से लेकर अब तक अत्यधिक पीड़ा सहन की है, इसलिए उसे विशेष पुनर्वास दिया जाना आवश्यक है । प्रत्यर्थी राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री अतुल झा ने पुलिस अधीक्षक, जिला दुर्ग से प्राप्त किए गए निर्देशों के आधार पर यह दलील दी है कि आहत के पुनर्वास के लिए गृह विभाग के गृह सचिव ने आहत को नारी निकेतन में रखने, उसे भोजन, वस्त्र और आवास की सुविधा तथा आजीवन 300/- रुपए प्रतिमास पेंशन उपलब्ध कराने का विनिश्चय किया है । उक्त पुनर्वास योजना के लिए, राज्य ने लगभग 8,000/- रुपए से 10,000/- रुपए प्रतिमास उपगत किए हैं । निर्विवादित रूप से अभियुक्त ने आहत की जिस गरिमा और सम्मान का विनाश किया है उसकी भरपाई किसी भी धन से नहीं की जा सकती । जो मानसिक पीड़ा आहत ने सहन की है वह किसी भी धन से दूर नहीं की सकती । इस सहायता से अपराध के दुष्परिणामों को मुश्किल से ही दूर किया जा सकता है । आहत की दयनीय स्थिति है और किसी भी व्यक्ति द्वारा उसकी देख-रेख नहीं की जा रही है और उसे

भावनात्मक या आर्थिक रूप से परिवार से कोई सहायता नहीं मिल रही है, ऐसी स्थिति में यह न्यायालय प्रत्यर्थी राज्य को यह आदेश नहीं दे रहा है कि आहत को उसके पुनर्वास के लिए प्रतिकर के रूप में एकमुश्त राशि दी जाए क्योंकि आहत उस एकमुश्त राशि का सही प्रयोग करने की स्थिति में नहीं है । अभिलेख से यह स्पष्ट है कि आहत की देखभाल कोई भी नहीं कर रहा है और वह अपने ग्राम में अकेली रहती है । तद्नुसार, यह न्यायालय मामले के विशेष तथ्यों के आधार पर प्रत्यर्थी राज्य को यह निदेश देता है कि वह आहत को आजीवन प्रतिमास 8,000/- रुपए का संदाय करे जो कि 1,00,000/- रुपए की सावधि जमा राशि का ब्याज समझा जाएगा । इस प्रकार राज्य को आहत को कोई भी एकमुश्त राशि देने की आवश्यकता नहीं होगी और ऐसा किया जाना आहत के हित में ही होगा । (पैरा 8, 9, 10, 13, 14, 15, 16, 17 और 18)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2016 की दांडिक अपील सं. 884.

1997 की दांडिक अपील सं. 2554 में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर के तारीख 16 जनवरी, 2014 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सर्वश्री डी. भरत कुमार और विक्रांत नीलेश गोयल (विशाल अरुण की ओर से)
प्रत्यर्थी की ओर से	सर्वश्री अतुल झा और संदीप झा (धर्मेन्द्र कुमार सिन्हा की ओर से)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एम. वाई. इकबाल ने दिया ।

न्या. इकबाल – 1997 की दांडिक अपील सं. 2554 में तारीख 16 जनवरी, 2014 को छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर द्वारा पारित उस निर्णय और आदेश से व्यथित होकर, जिसके अनुसार 1996 के सेशन विचारण मामला सं. 342 में छठे अपर सेशन न्यायाधीश, दुर्ग द्वारा तारीख 29 नवंबर, 1997 को पारित उस निर्णय की पुष्टि की गई थी, जिसके अनुसार अपीलार्थी को भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 376 के अधीन दोषसिद्ध किया गया और 7 वर्ष का कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया गया था, अभियुक्त-अपीलार्थी ने इसी दोषसिद्धि और दंडादेश को चुनौती देते हुए यह

अपील फाइल की है ।

2. यह एक ऐसा मामला है जिसमें अभियोक्त्री के साथ, जो कि नेत्रहीन और अशिक्षित कन्या है, विवाह का वचन देकर संभोग किया गया ।

3. संक्षेप में अभियोजन पक्षकथन इस प्रकार है कि अभियोक्त्री अपने पिता के साथ ग्राम नंदिनी कुंदिनी में रहती थी । उसकी माता उसे छोड़कर चली गई थी और उसने कहीं और अपना विवाह कर लिया था और इसके पश्चात् अभियोक्त्री अपने तीन भाइयों नंद कुमार, ईश्वरी और बलदऊ के साथ रहने लगी । अभियोक्त्री के भाई ईश्वरी के साथ अभियुक्त टेकन भी पढ़ता था । मित्रता होने के कारण अभियुक्त अभियोक्त्री के घर आया करता था और उससे बातचीत किया करता था । अभियोजन का यह पक्षकथन है कि जब अभियोक्त्री अपने मकान में अकेली होती थी, तभी अभियुक्त वहां आया करता था और अभियोक्त्री को यह दर्शाता था कि वह उससे प्रेम करता है । इसके अतिरिक्त, अभियोजन का यह भी पक्षकथन है कि इस घटना के लगभग 1 वर्ष पूर्व अभियुक्त उस समय अभियोक्त्री के घर पर आया जब वह अकेली थी । इसके पश्चात्, अभियुक्त ने उसे बताया कि वह उससे प्रेम करता है और विवाह भी करेगा और यह भी कहा कि वह उसके साथ संभोग करना चाहता है । अभियोक्त्री ने इनकार करने का प्रयास किया क्योंकि वह नेत्रहीन थी, किंतु अभियुक्त ने अभियोक्त्री से कहा कि वह उससे विवाह करेगा और उसके साथ पूरा सहयोग करेगा, अतः अभियोक्त्री ने अभियुक्त के समक्ष समर्पण कर दिया । इसके पश्चात्, अभियुक्त ने अभियोक्त्री के साथ संभोग किया । अभियोजन का यह भी पक्षकथन है कि जब कभी अभियोक्त्री घर पर अकेली होती थी, अभियुक्त वहां आया करता था और उसके साथ संभोग किया करता था । ऐसा किए जाने पर अभियोक्त्री गर्भवती हो गई और उसने अभियुक्त से विवाह करने को कहा । उस समय अभियुक्त ने अभियोक्त्री के घर पर आना बंद कर दिया । इसके पश्चात् इस घटना की जानकारी अभियोक्त्री के पिता को दी गई जिसने ग्राम में पंचायत बिठाई । पंचायत में अभियुक्त को बुलाया गया । अभियोजन का यह भी पक्षकथन है कि पंचायत में अभियुक्त ने यह स्वीकार किया कि उसने अभियोक्त्री के साथ संभोग किया है किंतु उसने विवाह करने से इनकार कर दिया और पंचायत छोड़ कर चला गया । अभियोजन का विशिष्ट पक्षकथन यह है कि यद्यपि अभियोक्त्री नेत्रहीन थी, फिर भी वह अभियुक्त को उसकी आवाज से या उसे छूकर पहचान सकती थी ।

4. यह प्रकट होता है कि पुलिस ने मामले का अन्वेषण किया, अभियोक्त्री की चिकित्सा परीक्षा कराई और अंत में दंड संहिता की धारा 376 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया । अभियोजन पक्ष की ओर से कई साक्षियों की परीक्षा कराई गई जिसमें चिकित्सा परीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श पी-2 और पी-3) प्रस्तुत करने वाले चिकित्सक और विकिरण विज्ञानी की भी परीक्षा कराई गई जिसने अभियोक्त्री की आयु लगभग 18 वर्ष सुनिश्चित करने के लिए एक्सरे कराया था और अपनी रिपोर्ट (प्रदर्श पी-4) प्रस्तुत की थी । अभियोक्त्री की परीक्षा अभि. सा. 1 के रूप में कराई गई थी जिसने सम्पूर्ण घटना का वर्णन किया और उसने यह भी बताया कि उसके साथ किस प्रकार दुष्कर्म किया गया । अभियोक्त्री ने अपने साक्ष्य में स्पष्ट रूप से यह कथन किया है कि वह नेत्रहीन है किंतु वह किसी भी व्यक्ति को उसकी आवाज से पहचान सकती है । उसने यह भी कथन किया है कि अभियुक्त-अपीलार्थी ने उसे यह बताया था कि वह उसे अपने साथ रखेगा । उसने यह भी कथन किया है कि अभियुक्त ने उसके साथ बलात्संग किया है और इसके पश्चात्, जब कभी वह अपने घर पर अकेली होती थी अभियुक्त-अपीलार्थी विवाह करने के बहाने से उसके साथ संभोग करने के लिए आया करता था । साक्ष्य में यह भी कहा गया है कि जब अभियोक्त्री गर्भवती हो गई, अभियुक्त ने उसके घर पर आना बंद कर दिया । अभियोक्त्री ने यह भी कथन किया है कि जब उसने इस घटना के बारे में लोगों को बताया, तब अभियुक्त को पंचायत में बुलाया गया ।

5. चिकित्सक और पंचायत में उपस्थित व्यक्तियों के साक्ष्य तथा चिकित्सीय रिपोर्टों सहित सम्पूर्ण साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात्, विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला और अभिनिर्धारित किया कि अभियोजन पक्ष ने अभियुक्त-अपीलार्थी का दोष साबित कर दिया है । तद्नुसार, अभियुक्त को दंड संहिता की धारा 376 के अधीन दोषसिद्ध किया और 7 वर्ष का कठोर कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया ।

6. विचारण न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध, अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के समक्ष 1997 की दांडिक अपील सं. 2554 फाइल की । उच्च न्यायालय ने तथ्यों का परिशीलन किया और अभियोजन पक्ष की ओर से प्रस्तुत किए गए सम्पूर्ण साक्ष्य का पुनर्मूल्यांकन किया और स्वतंत्र रूप से निष्कर्ष अभिलिखित किया तथा विचारण न्यायालय द्वारा पारित किए गए दोषसिद्धि के निर्णय की पुष्टि की ।

7. हमने अपीलार्थी और राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान्

काउंसेलों को सुना है । हमने अभियोजन पक्ष की ओर से अभिलेख पर प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर दोनों न्यायालयों द्वारा अभिलिखित निष्कर्षों पर सूक्ष्मता से विचार किया है । इस मामले का अति सावधानी से परिशीलन करने के पश्चात् हमारा यह सुनिश्चित मत है कि अभियोजन पक्ष ने सभी युक्तियुक्त संदेहों के परे अपीलार्थी का दोष साबित कर दिया है । अतः हमें दोनों न्यायालयों द्वारा पारित किए गए निर्णयों में कोई भी कमी या अविधिकता दिखाई नहीं देती है । इस प्रकार, दोषसिद्धि का निर्णय विधि की दृष्टि से कायम रखा जाना चाहिए ।

8. अब विचार के लिए यह प्रश्न सामने आता है कि क्या मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में अभियोक्त्री, एक आहत को दिए जाने वाले प्रतिकर की हकदार है या नहीं, यदि वह हकदार है, तब उसकी कितनी सीमा होनी चाहिए ? सुनवाई के दौरान, इस न्यायालय ने तारीख 1 जुलाई, 2015 को पारित आदेश द्वारा प्रत्यर्थी राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल को यह निदेश दिया कि वह आहत को दिए जाने वाले प्रतिकर योजना की एक प्रति, जो छत्तीसगढ़ राज्य में लागू होती है, फाइल करे और आहत, उसके भाइयों और अभियुक्त-अपीलार्थी की वित्तीय हैसियत के संबंध में जांच करे । उपर्युक्त आदेश के अनुसरण में, राज्य के विद्वान् काउंसेल ने एक अतिरिक्त शपथपत्र फाइल किया है जिसमें आहत और अभियुक्त की वित्तीय हैसियत को सुनिश्चित करने के संबंध में की गई जांच के ब्यौरे दिए गए हैं और अभिलेख पर अधिसूचना/प्रतिकर योजना की एक प्रति भी प्रस्तुत की है ।

9. इस संबंध में की गई जांच से यह प्रकट होता है कि आहत, जिसकी अब आयु लगभग 37 वर्ष है, ग्राम नंदिनी कुंदिनी, जिला दुर्ग, छत्तीसगढ़ में अकेली रहती है । वह अविवाहित है और एक कच्चे मकान में रहती है । आहत के दो भाई हैं जो उससे अलग रहते हैं । आहत का एक भाई ईश्वरी साहू एक अलग ग्राम धौर (नंदिनी कुंदिनी से 12 किलोमीटर दूर) में रहता है । दूसरा भाई बलदऊ साहू जिला भीला (नंदिनी कुंदिनी से 22 किलोमीटर दूर) में रहता है और दैनिक मजदूर है । अभियोक्त्री को अशक्तता (विकलांग) होने के आधार पर 300/- रुपए प्रतिमास की राशि पेंशन के रूप में मिलती है । वह बीपीएल कार्ड धारक है जिसके आधार पर वह प्रतिमास 35 किलोग्राम चावल 1 रुपया किलोग्राम की दर से और निःशुल्क नमक पाने की हकदार है । आहत के भाइयों की आर्थिक अवस्था भी अच्छी नहीं है ।

10. अभियुक्त की वित्तीय/आर्थिक अवस्था के संबंध में की गई जांच से यह भी प्रकट होता है कि अभियुक्त उसी ग्राम अर्थात् नंदिनी कुंदिनी में रहता है जहां आहत रहती है । अपीलार्थी-अभियुक्त विवाहित है और उसके चार बच्चे हैं । अभियुक्त की माता भी उसके साथ रहती है । उसे पैतृक सम्पत्ति के रूप में लगभग 2 एकड़ भूमि विरासत में मिली है जो कि उसकी जीविका का स्रोत है । इसके अतिरिक्त अभियुक्त की पत्नी नीला कार्ड धारक है जिसके आधार पर वह अपने परिवार के लिए 2 रुपया प्रति किलोग्राम की दर से 35 किलोग्राम चावल प्रतिमास प्राप्त करने की हकदार है । अभियुक्त पक्के मकान में रहता है ।

11. राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि छत्तीसगढ़ राज्य ने दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 357 के अधीन आहत प्रतिकर योजना अधिसूचित की है जिसके अंतर्गत आहत या उसके उन आश्रितों को प्रतिकर दिए जाने के प्रयोजन के लिए निधि उपलब्ध कराने का उपबंध किया गया है जिन्हें अपराध के परिणामस्वरूप हानि या क्षति पहुंची है और जिनके लिए पुनर्वास अपेक्षित है । उपर्युक्त अधिसूचना से उपाबद्ध अनुसूची का सुसंगत भाग सुगमतापूर्वक निर्दिष्ट किए जाने के लिए निम्न प्रकार उद्धृत किया जा रहा है :–

अधिसूचना

क्रम सं.	**हानि या क्षति के ब्यौरे**	**प्रतिकर की अधिकतम सीमा**
4.	अप्राप्तवय के साथ बलात्संग	50,000
5.	बलात्संग	25,000
6.	पुनर्वास	20,000

12. वर्तमान मामले में कार्यवाही करने के पूर्व, बलात्संग के आहत को दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 357क के अधीन और अन्य राज्य सरकार और संघ शासित क्षेत्र द्वारा अधिसूचित आहत प्रतिकर योजना के अधीन संदेय की जाने वाली रकम का संक्षेप में उल्लेख करना महत्वपूर्ण होगा जो कि निम्न प्रकार है :–

क्रम सं.	राज्य/संघ शासित क्षेत्र	हानि या क्षति के ब्यौरे	प्रतिकर की अधिकतम सीमा
1.	अरुणाचल प्रदेश	बलात्संग	50,000
2.	असम	बलात्संग	75,000
		अप्राप्तवय के साथ बलात्संग/सामूहिक बलात्संग	1,00,000
3.	बिहार	बलात्संग	50,000
4.	दिल्ली	बलात्संग	3,00,000
		पुनर्वास	20,000
5.	गोवा	महिला और बालिका को कारित की गई क्षति, मानसिक पीड़ा (जैसे बलात्संग आदि के मामले)	10,00,000
6.	गुजरात	बलात्संग	1,00,000
		पुनर्वास	50,000
7.	हरियाणा	बलात्संग	3,00,000
		क्षति के लिए चिकित्सीय खर्चे	15,000
8.	हिमाचल प्रदेश	बलात्संग	50,000
9.	जम्मू-कश्मीर	अप्राप्तवय के साथ बलात्संग या पुलिस अभिरक्षा में बलात्संग	1,00,000
		बलात्संग	50,000

10.	कर्नाटक	अप्राप्तवय के साथ बलात्संग	3,00,000
		अप्राप्तवय से अन्यथा के साथ बलात्संग	1,50,000
11.	केरल (50% अधिक यदि आहत की आयु 14 वर्ष या उससे कम है)	बलात्संग	3,00,000
		पुनर्वास	1,00,000
12.	महाराष्ट्र	बलात्संग के अपराध के लिए कोई रकम नहीं	शून्य
13.	मणिपुर	अप्राप्तवय के साथ बलात्संग	30,000
		बलात्संग	20,000
		पुनर्वास	20,000
14.	नागालैंड	अप्राप्तवय के साथ बलात्संग	1,00,000
		बलात्संग	50,000
		पुनर्वास	50,000
15.	ओडिशा	महिला और बालिका को कारित की गई क्षति, मानसिक पीड़ा, बलात्संग और मानव दुर्व्यापार जैसे मामले	10,000
16.	राजस्थान	अप्राप्तवय के साथ बलात्संग	3,00,000
		बलात्संग	2,00,000
		पुनर्वास	1,00,000

17.	सिक्किम	बलात्संग	50,000
		पुनर्वास	30,000
18.	त्रिपुरा	बलात्संग	50,000 जिसमें से 5,000 रुपए का संदाय शिकायत का प्राथमिक सत्यापन किए जाने के पश्चात् और शेष राशि आरोप पत्र फाइल किए जाने के पश्चात् मंजूर की जाएगी
19.	उत्तर प्रदेश	बलात्संग	2,00,000
20.	उत्तराखंड	अप्राप्तवय के साथ बलात्संग	2,50,000
		बलात्संग	2,00,000
		बलात्संग की आहत का पुनर्वास	1,00,000
21.	पश्चिमी बंगाल	अप्राप्तवय के साथ बलात्संग	30,000
		बलात्संग	20,000
		पुनर्वास	20,000

22.	संघ शासित राज्य क्षेत्र, चंडीगढ़	बलात्संग	3,00,000
		पुनर्वास	20,000
23.	संघ शासित राज्य क्षेत्र, दादर नागर हवेली	बलात्संग	3,00,000
		पुनर्वास	20,000
24.	संघ शासित राज्य क्षेत्र, दमन	बलात्संग	3,00,000
		पुनर्वास	20,000
25.	संघ शासित राज्य क्षेत्र, पुडुचेरी	बलात्संग	3,00,000
		पुनर्वास	20,000

13. विभिन्न राज्यों और संघ शासित राज्य क्षेत्रों की उपर्युक्त आहत प्रतिकर योजना का परिशीलन करने पर यह स्पष्ट हो जाता है कि बलात्संग के आहत को बलात्संग और पुनर्वास के लिए प्रतिकर उपलब्ध कराने में एक जैसी रीति नहीं अपनाई गई है । धारा 357क के अधीन 20,000/- रुपए से 1,00,000/- रुपए प्रतिकर के रूप में भिन्न-भिन्न राशि दिए जाने की इस परिपाटी पर सभी राज्यों और संघ शासित राज्य क्षेत्रों द्वारा सावधानी से विचार किया जाना चाहिए । उन्हें गोवा राज्य में विरचित योजना के आधार पर विशेषकर बलात्संग की आहतों को एक समान राशि, अर्थात् 1,00,000/- रुपए, दिए जाने के लिए सूत्र विरचित करने चाहिए ।

14. बलात्संग के आहत को अनुतोष दिए जाने और उसका पुनर्वास किए जाने के लिए भिन्न-भिन्न योजनाओं का परिशीलन करते हुए हमने **दिल्ली डोमेस्टिक वर्किंग वोमेंस फोरम** बनाम **भारत संघ और अन्य** (दांडिक रिट याचिका सं. 362/93) वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा दिए

गए निदेश के आधार पर राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा बनाई गई योजना का भी परिशीलन किया है जिसके द्वारा इस न्यायालय ने अन्य बातों के साथ राष्ट्रीय महिला आयोग को ऐसी योजना बनाने का निदेश दिया था ताकि बलात्संग की आहत महिलाओं को राहत दी जा सके । महिला आयोग द्वारा इस योजना का परिशोधन तारीख 15 अप्रैल, 2010 को किया गया । इस योजना के अधीन जो आवेदन किया गया वह योजना के पैरा 22 में यथाउपबंधित दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 357, 357क के अधीन किए जाने वाले आवेदन के अतिरिक्त था । इस योजना के अधीन वर्तमान मामले जैसे विशेष मामलों में जिनमें अपराध किसी ऐसी विकलांग महिला के साथ कारित किया गया हो जिसे विशेष देख-रेख और उपचार की आवश्यकता है, आहत को अनुतोष और पुनर्वास के लिए अधिकतम 3,00,000/- (तीन लाख) रुपए दिए जा सकते हैं ।

15. वर्तमान मामले पर विचार करने पर यह पता चलता है कि आहत शारीरिक रूप से विकलांग है, वह इस घटना के पूर्व भी सामाजिक रूप से असुविधाजनक स्थिति से जूझ रही थी जो अभियुक्त द्वारा उसके साथ कपट किए जाने और विवाह करने का मिथ्या वचन देने जैसे दूषित आशय से उद्भूत हुई थी और इसके परिणामस्वरूप आहत को दोहरी असुविधाजनक स्थिति का सामना करना पड़ा और कई वर्षों की प्रतीक्षा के पश्चात् उसकी स्थिति और बिगड़ गई है । आहत के लिए यह संभव नहीं होगा कि वह राष्ट्रीय महिला आयोग के समक्ष आवेदन करे और अनुतोष तथा पुनर्वास के लिए प्रयास करे । आहत के अनुसार, उसने अपराध के दिन से लेकर अब तक अत्यधिक पीड़ा सहन की है, इसलिए उसे विशेष पुनर्वास दिया जाना आवश्यक है ।

16. प्रत्यर्थी राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल श्री अतुल झा ने पुलिस अधीक्षक, जिला दुर्ग से प्राप्त किए गए निर्देशों के आधार पर यह दलील दी है कि आहत के पुनर्वास के लिए गृह विभाग के गृह सचिव ने आहत को नारी निकेतन में रखने, उसे भोजन, वस्त्र और आवास की सुविधा तथा आजीवन 300/- रुपए प्रतिमास पेंशन उपलब्ध कराने का विनिश्चय किया है । उक्त पुनर्वास योजना के लिए, राज्य ने लगभग 8,000/- रुपए से 10,000/- रुपए प्रतिमास उपगत किए हैं ।

17. निर्विवादित रूप से अभियुक्त ने आहत की जिस गरिमा और सम्मान का विनाश किया है उसकी भरपाई किसी भी धन से नहीं की जा सकती । जो मानसिक पीड़ा आहत ने सहन की है वह किसी भी धन से

दूर नहीं की सकती । इस सहायता से अपराध के दुष्परिणामों को मुश्किल से ही दूर किया जा सकता है ।

18. आहत की दयनीय स्थिति है और किसी भी व्यक्ति द्वारा उसकी देख-रेख नहीं की जा रही है और उसे भावनात्मक या आर्थिक रूप से परिवार से कोई सहायता नहीं मिल रही है, ऐसी स्थिति में हम प्रत्यर्थी राज्य को यह आदेश नहीं दे रहे हैं कि आहत को उसके पुनर्वास के लिए प्रतिकर के रूप में एकमुश्त राशि दी जाए क्योंकि आहत उस एकमुश्त राशि का सही प्रयोग करने की स्थिति में नहीं है । अभिलेख से यह स्पष्ट है कि आहत की देखभाल कोई भी नहीं कर रहा है और वह अपने ग्राम में अकेली रहती है । तद्नुसार, हम मामले के विशेष तथ्यों के आधार पर प्रत्यर्थी राज्य को यह निदेश देते हैं कि वह आहत को आजीवन प्रतिमास 8,000/- रुपए का संदाय करे जो कि 1,00,000/- रुपए की सावधि जमा राशि का ब्याज समझा जाएगा । इस प्रकार राज्य को आहत को कोई भी एकमुश्त राशि देने की आवश्यकता नहीं होगी और ऐसा किया जाना आहत के हित में ही होगा ।

19. परिणामतः, अपील में कोई सार न होने के कारण हम इसे खारिज करते हैं और निम्न निदेश जारी करते हैं :–

(1) बलात्संग की आहत महिलाओं के लिए गोवा राज्य द्वारा विरचित योजना पर विचार करते हुए, सभी राज्य और संघ शासित राज्य क्षेत्र शारीरिक रूप से विकलांग महिलाओं के साथ बलात्संग किए जाने के मामले में प्रतिकर उपलब्ध कराने के लिए एक समान योजना विरचित करने का प्रयास करेंगे जैसाकि विधि के अधीन अपेक्षित है ;

(2) जहां तक इस मामले का संबंध है, प्रत्यर्थी राज्य इस आहत को, जो कि शारीरिक रूप से विकलांग है अर्थात् नेत्रहीन है, 8,000/- रुपए प्रतिमास प्रतिकर के रूप में आजीवन संदाय करेगा ।

अपील खारिज की गई ।

अस.

मध्य प्रदेश राज्य

बनाम

गोलू राइकवार और एक अन्य

2 मार्च, 2016

न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर और न्यायमूर्ति सी. नागप्पन

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 302 – हत्या – मृतक को कारित अनेक क्षतियां – किसी भी एक क्षति का पृथक् रूप से गंभीर न होना – कारित क्षतियों का संचयी प्रभाव – मृतक को कारित क्षतियां संचयी रूप से प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित किए जाने के लिए पर्याप्त हैं भले ही कारित क्षतियों में से कोई भी एक क्षति प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त न हो, ऐसी स्थिति में अपराध धारा 304 भाग I के अंतर्गत नहीं अपितु धारा 300 के तीसरे खंड के अंतर्गत आएगा ।

इस मामले में पांच अभियुक्तों अर्थात् गोलू, भूरा, पुट्टू, गब्बर और बेदीलाल ने हरि चौधरी और उसके भतीजे कल्लू पर हमला किया जिसके परिणामस्वरूप हरि चौधरी की मृत्यु हो गई । इन पांचों अभियुक्तों में से दो अभियुक्त अर्थात् गब्बर और बेदीलाल फरार हो गए इसलिए केवल शेष तीन अभियुक्तों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 और अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के अधीन आक्षेप विरचित किए । विचारण न्यायालय ने अभियुक्त पुट्टू को सभी आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । अभियुक्त गोलू और भूरा को अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 के अधीन आरोप से दोषमुक्त करते हुए दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध का दोषी पाया और आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया । इन दोनों अभियुक्तों ने विचारण न्यायालय के आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने अपील भागतः मंजूर और अपीलार्थियों को धारा 302 के बजाय धारा 304 भाग I के अधीन दोषी पाया और आजीवन कारावास को 7 वर्ष के कारावास में परिवर्तित कर दिया । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर, राज्य ने उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम

न्यायालय ने विचारण न्यायालय के निर्णय को मान्य ठहराते हुए उच्च न्यायालय के निर्णय को अपास्त कर दिया । अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – बहुत सी क्षतियों में से कोई भी क्षति पृथक् रूप से ऐसी क्षति नहीं है जो प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित किए जाने के लिए पर्याप्त हों, ऐसी स्थिति में दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे खंड को अपवर्जित नहीं किया जाएगा । इस धारा के तीसरे भाग में उल्लिखित "शारीरिक क्षति" अभिव्यक्ति के अंतर्गत बहुत सी क्षतियां भी सम्मिलित हैं ताकि इस खंड के अंतर्गत वह मामला भी आ सके जिसमें अभियुक्तों द्वारा साशय बहुत सी क्षतियां कारित की गई हों और वे संचयी रूप से प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित किए जाने के लिए पर्याप्त हों, भले ही कारित हुई उन क्षतियों में से कोई भी एक क्षति प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त न हों । धारा के इस खंड में जो आवश्यक है जैसाकि पहले ही विचार किया जा चुका है, प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित किए जाने की संभाव्यता का अत्यधिक होना है और यदि संभाव्यता की ऐसी पर्याप्तता विद्यमान हो और मृत्यु कारित हो जाती है और कारित की गई क्षति आशयित साबित होती है, तब ऐसी स्थिति में मामला दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे खंड के अधीन आएगा । इस खंड के लागू किए जाने के लिए आवश्यक जितनी भी शर्तें हैं वे सभी सिद्ध की जा चुकी हैं और वर्तमान मामले में अभियुक्त द्वारा कारित किया गया अपराध हत्या है । वर्तमान मामले में, यह तथ्य कि अभियुक्तों ने देशी बम फैंके थे, सिद्ध हो गया है । यदि यह नहीं कहा जा सके कि हरि की मृत्यु आशयित थी फिर भी उसे कारित हुई छिन्न क्षतियां प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं । इतना साक्ष्य मामले को दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे खंड के अधीन लाने के लिए पर्याप्त है । पूर्वगामी कारणों के आधार पर, हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी/अभियुक्तों की दोषसिद्धि को दंड संहिता की धारा 302 से धारा 304 भाग I में परिवर्तित करके त्रुटि की है । (पैरा 9, 10 और 11)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[1976]	(1976) 4 एस. सी. सी. 382 : **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **रायावरपु पुन्नय्या और एक अन्य** ।	9

अपीली दांडिक अधिकारिता : 2016 की दांडिक अपील सं. 185.

2004 की दांडिक अपील सं. 1797 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर की प्रधान न्यायपीठ द्वारा तारीख 26 सितंबर, 2012 को पारित निर्णय के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री अंकित कुमार लाल और सौरव मिश्रा

प्रत्यर्थियों की ओर से श्री अक्षत श्रीवास्तव

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति सी. नागप्पन ने दिया ।

न्या. नागप्पन – इजाजत प्रदान की जाती है ।

2. यह अपील 2004 की दांडिक अपील सं. 1797 में मध्य प्रदेश उच्च न्यायालय, जबलपुर की प्रधान न्यायपीठ द्वारा तारीख 26 सितंबर, 2012 को पारित उस निर्णय के विरुद्ध प्रस्तुत की गई है जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने भारतीय दंड संहिता, 1860 (जिसे संक्षेप में "दंड संहिता" कहा गया है) की धारा 302 के अधीन प्रत्यर्थियों/अभियुक्तों की दोषसिद्धि अपास्त करते हुए उनके द्वारा फाइल की गई अपील भागतः मंजूर की और उन्हें दंड संहिता की धारा 304 भाग I के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और इस आदेश द्वारा प्रत्यर्थियों का दंडादेश कम करके आजीवन कारावास से 10 वर्ष के कठोर कारावास में परिवर्तित कर दिया ।

3. संक्षेप में तथ्य इस प्रकार हैं – मृतक हरि चौधरी, कल्लू चौधरी (अभि. सा. 1) का चाचा था । तारीख 15 अगस्त, 2000 को लगभग 3.30 बजे अपराह्न में दोनों पान खाने जा रहे थे और रास्ते में, उन्होंने अभियुक्त गोलू (प्रत्यर्थी सं. 1), अभियुक्त भूरा (प्रत्यर्थी सं. 2) और तीन अन्य अभियुक्तों अर्थात् पुट्टू **उर्फ** राम चरन, गब्बर और बेदीलाल को हथियारों से लैस अपनी ओर आते हुए देखा और अभियुक्त भूरा ने उनकी ओर देशी बम फैंका । बम के फटने पर वे नीचे गिर गए और अभियुक्त भूरा ने कल्लू (अभि. सा. 1) पर तलवार से वार किया और अन्य अभियुक्तों ने अपने-अपने आयुधों से उस पर हमला किया । अभि. सा. 1 ने देखा कि अभियुक्त अपने आयुधों से हरि चौधरी पर हमला कर रहे हैं । वह दौड़ा और उसने अपने भाई रामनिवास (अभि. सा. 3) को बताया और वे आहत हरि को विक्टोरिया अस्पताल, जबलपुर ले गए जहां पर उसे मृत लाया गया घोषित कर दिया गया । टेलीफोन द्वारा सूचना प्राप्त होने पर पुलिस

उप-निरीक्षक आर. बी. सोनी (अभि. सा. 10) अस्पताल पहुंचा और उसने कल्लू (अभि. सा. 1) द्वारा दी गई शिकायत (प्रदर्श पी-1) अभिलिखित की तथा मर्ग रिपोर्ट (प्रदर्श पी-2) तैयार की । उप-निरीक्षक ने मृत्यु समीक्षा की और मृत्यु समीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श पी-3) तैयार की और शव का शवपरीक्षण कराने के लिए अध्यपेक्षा जारी की । उप-निरीक्षक ने आहत कल्लू (अभि. सा. 1) को भी चिकित्सा परीक्षा के लिए भेजा ।

4. डा. अशोक कुमार जैन ने मृतक हरि के शव का शवपरीक्षण किया और निम्न क्षतियां पाईं :–

> "(i) दाएं गाल पर 3 इंच × 0.5 इंच माप का छिन्न घाव है जो मांसपेशी तक गहरा है ।
>
> (ii) बाएं गाल पर 4 इंच × 0.5 इंच का छिन्न घाव है जो अस्थि तक गहरा है और उसका विस्तार कान तक है । बाह्य कान में कटाव है ।
>
> (iii) दाएं घुटने के जोड़ पर पश्च से पार्श्व की ओर छिन्न घाव है । जो अपने स्थान से हटा हुआ है । जानुफलक मांसरज्जू से लटका हुआ है । वाहनियां, तंत्रिकाएं और अन्य मृदु ऊतक क्षतिग्रस्त हैं ।
>
> (iv) अनुकपालीय भाग में 3 इंच × 0.75 इंच माप का छिन्न घाव है जिसकी गहराई अस्थि तक है और दिशा तिरछी है । खोपड़ी के बालों में रक्त जमा हुआ है ।
>
> (v) दाएं कंधे के पीछे की ओर 6 इंच लंबी नीले रंग की सूजन है ।
>
> (vi) वक्ष के दाईं ओर रेखीय खरोंच है जिसकी दिशा पार्श्व में है और इसका आकार 4 इंच है तथा रंग नीला है ।
>
> क्षति सं. 1, 2, 3 और 4 किसी कठोर और धारदार आयुध से कारित की गई हैं । क्षति सं. 5 और 6, संभवतः, किसी कठोर और कुंद वस्तु से कारित की गई हैं । सभी क्षतियां मृत्यु-पूर्व प्रकृति की हैं और मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं । डा. जैन की राय के अनुसार मृत्यु का कारण क्षति सं. 3 से होने वाला अत्यधिक रक्तस्राव है । मृतक की मृत्यु मानव वध है ।"

5. पुलिस उप-निरीक्षक सोनी (अभि. सा. 10) ने अभियुक्तों के विरुद्ध दंड संहिता की धारा 302 और अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v)के

अधीन मामला दर्ज करने और अन्वेषण करने के पश्चात् आरोप पत्र फाइल किया । मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किए जाने के पश्चात्, सेशन न्यायालय ने इस मामले के दोनों प्रत्यर्थियों और अभियुक्त पुट्टू **उर्फ** राम चरन के विरुद्ध आरोप विरचित किए । अभियुक्त गब्बर और बेदीलाल फरार हो गए थे । विचारण न्यायालय ने इस मामले में के प्रत्यर्थियों को दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया और अनुसूचित जातियां और अनुसूचित जनजातियां (अत्याचार निवारण) अधिनियम, 1989 की धारा 3(2)(v) के अधीन अपराध से दोषमुक्त कर दिया और प्रत्येक अभियुक्त को आजीवन कारावास और 1,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर 1 मास का साधारण कारावास भोगने के लिए दंडादिष्ट किया । साथ ही विचारण न्यायालय ने अभियुक्त पुट्टू **उर्फ** राम चरन को आरोपों से दोषमुक्त कर दिया । इस आदेश को चुनौती देते हुए इस मामले के दोनों प्रत्यर्थियों ने अपील फाइल की और उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि और दंडादेश को उपरोक्त रूप में परिवर्तित कर दिया । उच्च न्यायालय के इस आदेश से व्यथित होकर राज्य ने वर्तमान अपील फाइल की है ।

6. अपीलार्थी राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी है कि उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किया गया मत पूर्णतया विधि की दृष्टि से त्रुटिपूर्ण है क्योंकि दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध स्पष्ट रूप से बनता है । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी है कि उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करने में गलती की है कि क्षति सं. 3 शरीर के नाजुक अंग पर कारित नहीं की गई थी और अन्य क्षतियां घातक प्रकृति की नहीं थीं, अतः यह सिद्ध नहीं किया जा सकता है कि मृतक की हत्या करने का आशय था । विद्वान् काउंसेल के अनुसार अभियुक्तों ने मृतक पर कठोर और धारदार आयुधों से घटना के दौरान हमला किया था जिसके परिणामस्वरूप उसकी मृत्यु हुई और इस प्रकार हत्या का अपराध स्पष्ट रूप से बनता है । इसके प्रतिकूल प्रत्यर्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त किए गए मत का समर्थन किया है और यह दलील दी है कि आक्षेपित निर्णय विधि की दृष्टि से कायम रखे जाने योग्य है ।

7. प्रत्यर्थियों ने अपनी दोषसिद्धि को चुनौती नहीं दी है । जैसाकि पहले ही विचार किया गया है, विचारण न्यायालय ने प्रत्यर्थियों को हत्या के अपराध के लिए दोषसिद्ध किया था । उच्च न्यायालय ने विचारण न्यायालय

के मत से असहमति प्रकट की है और यह अभिनिर्धारित किया कि अपराध हत्या का नहीं अपितु दंड संहिता की धारा 304, भाग I के अधीन बनता है । उच्च न्यायालय ने निम्न कारणों के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है :–

> "17. डा. अशोक कुमार जैन (अभि. सा. 6) के साक्ष्य का परिशीलन करने पर यह प्रतीत होता है कि क्षति सं. 1 और 2, जो मृतक के दाएं और बाएं गाल पर धारदार आयुध से कारित की गई थीं, गंभीर प्रकृति की नहीं थीं । इसी प्रकार, क्षति सं. 4 जो कि खोपड़ी के अनुकपालीय भाग में छिन्न घाव था और अस्थि तक गहरा था, वह गंभीर प्रकृति का नहीं था । यद्यपि इस घाव से रक्त बह रहा था, फिर भी अस्थि में कटाव नहीं पाया गया था । क्षति सं. 5 और 6 क्रमशः कंधे और वक्ष पर सूजन और खरोंचें थीं । शरीर के निचले भाग में कोई भी अंग क्षतिग्रस्त नहीं पाया गया । निःसंदेह, डा. जैन ने यह कथन किया है कि मृतक के शरीर पर पाई गई क्षतियां उसकी मृत्यु कारित किए जाने के लिए पर्याप्त थीं, फिर भी चिकित्सक ने अपनी शव-परीक्षा रिपोर्ट (प्रदर्श पी-10) में इस तथ्य का उल्लेख नहीं किया है । प्रदर्श पी-10 तथा न्यायालय में दिए गए कथन से स्पष्ट रूप से यह सामने आता है कि मृतक की मृत्यु का कारण क्षति सं. 3 से होने वाला अत्यधिक रक्तस्राव है जो उसके घुटने पर कारित हुई थी ।
>
> 18. उपर्युक्त चिकित्सीय साक्ष्य को दृष्टिगत करते हुए हमारी राय में यह सुनिश्चित रूप से अभिनिर्धारित नहीं किया जा सकता है कि अपीलार्थियों ने मृतक की हत्या करने का आशय किया था, किंतु चूंकि उन्होंने धारदार आयुधों से मृतक को कई क्षतियां कारित की थीं और क्षति सं. 3 घातक साबित हुई, इसलिए यह अभिनिर्धारित किया जा सकता है कि अपीलार्थियों ने मृतक को ऐसी शारीरिक क्षति कारित करने का आशय था जिससे उसकी मृत्यु संभावित हो जाए और इस तथ्य से दंड संहिता की धारा 304, भाग I के अधीन दंडनीय अपराध बनता है ।"

8. हम इस दलील को स्वीकार नहीं कर सकते । जब मृतक कल्लू चौधरी (अभि. सा. 1) के साथ पान खाने जा रहा था, तब प्रत्यर्थी/अभियुक्त सामने की ओर से आए और द्वितीय प्रत्यर्थी भूरा ने उन पर देशी बम फैंका और हरि पर तलवार से वार किया और अन्य अभियुक्तों ने हरि पर तलवार, गुप्ती और कंकड़ से हमला किया और उन्होंने कल्लू चौधरी पर भी आयुधों से हमला किया । हरि रक्त से लथपथ हो गया और करहाने

लगा और जब उसे अस्पताल ले जाया गया, वहां उसे मृत घोषित कर दिया गया । हरि के शरीर पर पाई गई क्षति सं. 1 से 4 छिन्न घाव थीं और क्षति सं. 3 और 4 दाएं घुटने और सिर पर क्रमशः कारित की गई थी । शवपरीक्षण करने वाले डा. अशोक कुमार जैन ने यह कथन किया है कि ये क्षतियां मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त हैं । यह भी दलील दी गई कि मृत्यु का कारण घुटने पर कारित की गई क्षति सं. 3 से होने वाला अत्यधिक रक्तस्राव है ।

9. **आंध्र प्रदेश राज्य** बनाम **रायावरपु पुन्नय्या और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने ऐसी ही स्थिति पर विचार किया है । उस मामले में, अभियुक्तों ने जो संख्या में 5 थे, मृतक की टांगों पर डंडों से पिटाई की और जब उसे अस्पताल में भर्ती कराया गया, मृतक की क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई । शवपरीक्षण करने वाले चिकित्सा अधिकारी ने यह राय व्यक्त की कि मृत्यु का कारण आघात और रक्तस्राव है जो बहुत सी क्षतियों के कारण हुआ है और उक्त क्षतियां प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए संचयी रूप से पर्याप्त हैं । अब प्रश्न यह उठता है कि ऐसी स्थिति में जब शरीर के किसी भी नाजुक अंग पर कोई स्पष्ट क्षति कारित न हुई हो, अपराध में प्रयोग किए गए आयुध डंडे हों और अभियुक्तों के बारे में यह कहा जा सकता हो कि उनका मृत्यु कारित करने का आशय नहीं था, तब ऐसी स्थिति में अपराध, हत्या कहलाएगा या हत्या की कोटि में न आने वाला मानव वध कहलाएगा । इस न्यायालय ने इस प्रश्न का उत्तर निम्न प्रकार दिया है :–

> "39. ..... अभियुक्तों के ये सभी कृत्य पूर्व नियोजित और साशय थे, जिससे चिकित्सीय साक्ष्य के आधार पर यह अर्थ निकलता है कि क्षतियां प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं । मात्र यह तथ्य कि पिटाई में डंडों का प्रयोग मात्र टांगों और बांहों पर किया गया था या यह कि बहुत सी क्षतियों में से कोई भी क्षति पृथक् रूप से ऐसी क्षति नहीं है जो प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित किए जाने के लिए पर्याप्त हों, ऐसी स्थिति में दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे खंड को अपवर्जित नहीं किया जाएगा । इस धारा के तीसरे भाग में उल्लिखित 'शारीरिक क्षति' अभिव्यक्ति के अंतर्गत बहुत सी क्षतियां भी सम्मिलित हैं ताकि इस खंड के अंतर्गत वह मामला भी आ सके जिसमें

---

[1] (1976) 4 एस. सी. सी. 382.

अभियुक्तों द्वारा साशय बहुत सी क्षतियां कारित की गई हों और वे संचयी रूप से प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित किए जाने के लिए पर्याप्त हों, भले ही कारित हुई उन क्षतियों में से कोई भी एक क्षति प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त न हों । धारा के इस खंड में जो आवश्यक है जैसाकि पहले ही विचार किया जा चुका है, प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित किए जाने की संभाव्यता का अत्यधिक होना है और यदि संभाव्यता की ऐसी पर्याप्तता विद्यमान हो और मृत्यु कारित हो जाती है और कारित की गई क्षति आशयित साबित होती है, तब ऐसी स्थिति में मामला दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे खंड के अधीन आएगा । इस खंड के लागू किए जाने के लिए आवश्यक जितनी भी शर्तें हैं वे सभी सिद्ध की जा चुकी हैं और वर्तमान मामले में अभियुक्त द्वारा कारित किया गया अपराध हत्या है ।"

10. वर्तमान मामले में, यह तथ्य कि अभियुक्तों ने देशी बम फैंके थे, सिद्ध हो गया है । यदि यह नहीं कहा जा सके कि हरि की मृत्यु आशयित थी फिर भी उसे कारित हुई छिन्न क्षतियां प्रकृति के सामान्य अनुक्रम में मृत्यु कारित करने के लिए पर्याप्त थीं । इतना साक्ष्य मामले को दंड संहिता की धारा 300 के तीसरे खंड के अधीन लाने के लिए पर्याप्त है ।

11. पूर्वगामी कारणों के आधार पर, हमारी यह राय है कि उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी/अभियुक्तों की दोषसिद्धि को दंड संहिता की धारा 302 से धारा 304 भाग I में परिवर्तित करके त्रुटि की है । तद्नुसार, हम यह अपील मंजूर करते हैं और आक्षेपित निर्णय अपास्त करते हैं और विचारण न्यायालय के उस निर्णय को प्रतिस्थापित करते हैं जिसके द्वारा प्रत्यर्थियों/अभियुक्तों को हत्या के अपराध के लिए दोषसिद्ध किया था और आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया था । प्रत्यर्थी/अभियुक्तों को यह निदेश दिया जाता है कि वे शेष दंडादेश भोगने के लिए विचारण न्यायालय के समक्ष अभ्यर्पण करेंगे जिसका व्यतिक्रम किए जाने पर विचारण न्यायालय उन्हें गिरफ्तार करने के लिए तत्काल वारंट जारी करेगा और उन्हें जेल भेजेगा ।

अपील मंजूर की गई ।

अस.

नारायण

बनाम

बाबासाहेब और अन्य

5 अप्रैल, 2016

न्यायमूर्ति मदन बी. लोकुर और न्यायमूर्ति एन. वी. रमण

परिसीमा अधिनियम, 1963 (1963 का 36) – धारा 7, अनुच्छेद 60, 109, 110 और 113 [सपठित हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 11] – हिंदू अप्राप्तवय की स्थावर संपत्ति का अंतरण – हिंदू अप्राप्तवय की पैतृक संपत्ति का अंतरण मिताक्षरा विधि द्वारा शासित है और अप्राप्तवय द्वारा प्राप्तवयता पाने के पश्चात् परिसीमा अधिनियम की धारा 7 के अधीन नहीं बल्कि अधिनियम के अनुच्छेद 60 के अंतर्गत यथापरिकल्पित वाद फाइल किया जाना उचित और न्यायसंगत है ।

वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 से 5 ने प्रथम प्रतिवादी (यहां अपीलार्थी) और द्वितीय प्रतिवादी (प्रत्यर्थी सं. 6) के विरुद्ध 1989 का रजिस्ट्रीकृत सिविल वाद सं. 12 फाइल किया । वाद विभाजन के अनुतोष और इस घोषणा की मांग करते हुए फाइल किया गया था कि प्रतिवादी सं. 2 द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के पक्ष में निष्पादित तारीख 20 जनवरी, 1982 और तारीख 28 नवंबर, 1988 का विक्रय-विलेख आबद्धकर नहीं है और इसे अपास्त किया जाए तथा वादगत अनुसूची संपत्ति के कब्जे और अंतःकालीन लाभ की प्राप्ति के लिए भी ईप्सा की । वादियों का यह विनिर्दिष्ट पक्षकथन है कि उनके पिता वादगत अनुसूची संपत्ति के मूल स्वामी हैं जो एक पैतृक संपत्ति है । उनकी मृत्यु अपने दो पुत्र, चार पुत्रियां और विधवा अर्थात् दूसरे प्रतिवादी को छोड़कर वर्ष 1972 में हो गई । अपने पिता के मृत्यु के पश्चात् दूसरा प्रतिवादी जिसके बारे में बुरा चरित्र का होने का अभिकथन है, ससुराल छोड़ दिया और बेगाजी नाम के व्यक्ति के साथ विवाह कर लिया । वादियों के पिता ने अपने जीवनकाल के दौरान वादी सं. 3 और 4 का विवाह कर दिया था और पांचवें वादी का विवाह प्रथम वादी द्वारा किया गया । दूसरे प्रतिवादी को किसी विधिक आवश्यकता के बिना 6,000/- रुपए की थोड़ी रकम पर संपत्ति से अन्यसंक्रमित कर दिया जब कि परिवर्ती भूमि

15,000/- रुपए के मूल्य की थी । दूसरे विक्रय-विलेख के निष्पादन के समय, यद्यपि पहला वादी वयस्क था फिर भी उसे अवयस्क दर्शाया गया । यह कहा गया है कि क्योंकि दूसरा प्रतिवादी किसी भी समय कभी भी उनकी देखभाल नहीं करती थी और किसी दूसरे व्यक्ति के साथ रहती थी इसलिए उसे संरक्षक नहीं कहा जा सकता । पहला प्रतिवादी किसी प्रतिफल के संदाय के बिना, दूसरे प्रतिवादी की सक्रिय मौनानुकूलता से अवयस्कों के हित से प्रवंचित करने के आशय से विक्रय-विलेख को रजिस्ट्रीकृत कराया । आगे यह अभिवचित किया गया है कि दूसरे विक्रय-विलेख के निष्पादन की तारीख को भूमि का विक्रय प्रति एकड़ 20,000/- रुपए की रकम पर हो सकता है, यह कि प्रथम प्रतिवादी का संपत्ति पर कब्जा है वे प्रथम प्रतिवादी द्वारा कब्जा पाने की तारीख से कब्जे की प्राप्ति की तारीख तक 2,000/- रुपए प्रतिवर्ष की दर से अंतःकालीन लाभ पाने के हकदार हैं । पूर्ण विचारण के पश्चात् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 (संक्षेप में "1956 अधिनियम") की धारा 11 के अधीन, अप्राप्तवय के वास्तविक संरक्षक द्वारा किया गया विक्रय आरंभतः शून्य है और यह दर्शित करने के साक्ष्य के अभाव में पश्चात्वर्ती स्पष्टीकरण हेतु असमर्थ है कि अंतरण विधिक आवश्यकता के लिए किया गया है । अतः, विक्रय-विलेख वादियों पर आबद्धकर नहीं है और तदनुसार यह अभिनिर्धारित करते हुए वाद में डिक्री की कि वादी विभाजन और अपने-अपने अंश का पृथक् कब्जा पाने के हकदार हैं । वादी सं. 1 और 2, 7/12वां अंश के हकदार हैं और वादी सं. 3 से 5 प्रत्येक 1/24वां अंश पाने के हकदार हैं तथा दूसरा प्रत्यर्थी 7/24वां अंश की हकदार है और वादी अंतःकालीन लाभ के लिए हकदार है । असफल और असंतुष्ट प्रथम प्रतिवादी ने द्वितीय अपील सं. 223/2004 द्वारा बम्बई उच्च न्यायालय की औरंगाबाद न्यायपीठ के समक्ष आवेदन किया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अपील खारिज कर दी कि अधिनियम का अनुच्छेद 109 माता द्वारा किए गए अन्य संक्रामण को लागू होता है और अधिनियम का अनुच्छेद 60 मामले के तथ्यों को लागू नहीं होता और कुल मिलाकर इसका उपयोजन भिन्न घटना के संदर्भ में है तथा अधिनियम का अनुच्छेद 109 मामले के तथ्यों को लागू होता है और वाद परिसीमा के भीतर है । उक्त आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष यह अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – हिन्दू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 की धारा 8(1) के पढ़ने मात्र से यह उपदर्शित होता है कि यह नैसर्गिक संरक्षक को ऐसे सभी कार्य करने के लिए सशक्त करती है जो अप्राप्तवय के फायदे के लिए आवश्यक या युक्तियुक्त या उचित हैं । 1956 अधिनियम की धारा 8(2)(क) यह विहित करती है कि क्रेता या विक्रेता को विक्रय द्वारा संपत्ति के अंतरण के लिए जिला न्यायालय से अनुज्ञा अभिप्राप्त करनी चाहिए । जब एक बार संव्यवहार अप्राप्तवय के नाम पर होता है जो 1956 अधिनियम के उल्लंघन में है और जो विधिक आवश्यकता के लिए नहीं की गई है तो ऐसा संव्यवहार शून्यकरणीय है और जब तक ऐसे संव्यवहार को चुनौती दिए जाने या अपास्त किए जाने की ईप्सा नहीं की जाती तब तक उस संपत्ति के कब्जे की पुनःप्राप्ति का प्रश्न ही नहीं उठता । अनुच्छेद 60 की भाषा के गहन विश्लेषण से यह उपदर्शित होता है कि यह ऐसे अप्राप्तवय जिसने प्राप्तवयता प्राप्त कर ली है द्वारा फाइल किए गए वादों पर लागू होता है और उसके पश्चात् उसके विधिक प्रतिनिधियों द्वारा जब वह प्राप्तवयता अभिप्राप्त करने के पश्चात् मृत्यु हो जाता है या अप्राप्तवय की मृत्यु से । वाद की प्रकृति का व्यापक परिप्रेक्ष्य संरक्षक द्वारा किए गए स्थावर संपत्ति के अंतरण को अपास्त करने के लिए है और परिणामतः 1956 अधिनियम की धारा 8(2) के अतिक्रमण में संरक्षक द्वारा अंतरण को बचाकर कब्जे के लिए है । सारतः यह अंतरण को अपास्त करने और कब्जे के पारिणामिक अनुतोष प्राप्त करने से अधिक कुछ नहीं है । अतः न्यायालय की यह विचारित राय है कि 1956 अधिनियम की धारा 8(1)(2) के उल्लंघन में अपने संरक्षक द्वारा किए गए किसी स्थावर संपत्ति के अंतरण को चुनौती देने वाला भूतपूर्व अप्राप्तवय वादी और जो संपत्ति का कब्जा चाहता है, अधिनियम के अनुच्छेद 60 के अधीन विहित परिसीमा के भीतर ही वाद फाइल कर सकता है और अधिनियम के अनुच्छेद 109, 110 या 113 मामले के तथ्यों को लागू नहीं होते । उच्च न्यायालय और विचारण न्यायालय ने अधिनियम का अनुच्छेद 109 लागू कर गलती की है, जहां अधिनियम का अनुच्छेद 109 स्पष्टतः मिताक्षरा विधि द्वारा शासित पिता द्वारा किए गए अन्यसंक्रामण के बारे में है और आगे निचले न्यायालयों ने अधिनियम के अनुच्छेद 109 के अधीन दी गई लंबी लड़ी और तुलनात्मकतः अधिनियम के अनुच्छेद 60 के अधीन विहित कम समय पर आगे चर्चा की । निर्वचन का यह सुस्थिर सिद्धांत है कि उपबंध का निर्वचन

करते समय व्यक्ति की असुविधा और कठिनाई निर्णायक कारक नहीं होंगे । जब उपबंध के पढ़ने मात्र से ही यह काफी स्पष्ट हो जाता है और सुस्पष्टतः यह अर्थ प्रदान करता है तो इसका निर्वचन उसी आशय से किया जाना चाहिए जैसा लैटिन सूक्ति "डुलो लेक्स सेड लेक्स" जिसका यह अर्थ है कि विधि कठोर है किंतु यह विधि ही है और विधि के शब्दों से कोई विपथन नहीं किया जा सकता । अतः यह वाद फाइल करने की परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 60 द्वारा शासित है और परिसीमा प्राप्तवयता अभिप्राप्त करने की तारीख से 3 वर्ष है । जब एक बार न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि अधिनियम का अनुच्छेद 60 लागू होता है और परिसीमा 3 वर्ष है तो निर्णायक प्रश्न यह है कि जब कई वादी हों तो परिसीमा की गणना करने की तारीख क्या हो ? धारा 7 के पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि जब कई व्यक्तियों में से एक जो संयुक्ततः वाद संस्थित करने के हकदार हैं या डिक्री की निष्पादन के लिए आवेदन करते हैं और ऐसे व्यक्ति की सहमति के बिना उन्मोचन दिया जा सकता है तो समय उन सभी के विरुद्ध चालू होगा किंतु जब ऐसा कोई उन्मोचन नहीं दिया जा सकता हो तो उन सब के विरुद्ध समय चालू होगा जब तक उनमें से एक उन्मोचन देने के लिए सक्षम नहीं हो जाता । इस मामले में पहले वादी की आयु 20 वर्ष थी, दूसरा प्रतिवादी अब भी अप्राप्तवय था और वादी सं. 3, 4 और 5 जो विवाहित पुत्रियां हैं की आयु, वर्ष 1989 में वाद संस्थित किए जाने की तारीख को क्रमशः 29, 27 और 25 वर्ष थी । धारा 7 के स्पष्टीकरण 2 के अनुसार मिताक्षरा विधि द्वारा शासित हिंदू अविभक्त कुटुम्ब के कर्ता को कुटुम्ब के अन्य सदस्यों की सहमति के बिना उन्मोचन देने का सक्षम समझा जाएगा यदि वह संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति का प्रबंधक है । इस मामले में, वादी सं. 3 से 5 यद्यपि वाद के संस्थित करने की तारीख को प्राप्तवय थे फिर भी परिसीमा अधिनियम की धारा 7 के स्पष्टीकरण 2 के अधीन नहीं आएंगे क्योंकि वे संयुक्त कुटुम्ब के प्रबंधक या कर्ता नहीं हैं । पहले वादी की आयु वाद के संस्थित किए जाने की तारीख को 20 वर्ष थी और पहले वादी की आयु के बारे में भिन्न निष्कर्ष निकालने का कोई साक्ष्य नहीं है । मामले के उस दृष्टिकोण से, वाद अधिनियम के अनुच्छेद 60 के अधीन यथापरिकल्पित प्राप्तवयता अभिप्राप्त करने की तारीख से परिसीमा के तीन वर्षों के भीतर संस्थित किया गया है । (पैरा 23, 25, 26, 29, 30, 31 और 32)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की सिविल अपील सं. 3486.

2004 की द्वितीय अपील सं. 223 में बम्बई उच्च न्यायालय की औरंगाबाद न्यायपीठ के तारीख 5 अक्तूबर, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से श्री उदय बी. दूबे

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री विवेक सी. सोल्शे और सी. जी. सोल्शे

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति एन. वी. रमण ने दिया ।

न्या. रमण – इजाजत दी गई ।

2. अपीलार्थी 2004 की द्वितीय अपील सं. 213 में तारीख 5 अक्तूबर, 2011 को बम्बई उच्च न्यायालय की औरंगाबाद न्यायपीठ द्वारा पारित निर्णय और डिक्री जिसमें उच्च न्यायालय ने निचले न्यायालयों के निर्णय और डिक्री की पुष्टि की, द्वारा हमारे समक्ष व्यथित है ।

3. इस न्यायालय ने 27 अप्रैल, 2012 को नोटिस जारी करते हुए निम्नलिखित आदेश पारित किए :–

> "विलंब माफ किया गया ।
>
> इस प्रश्न पर कि क्या तारीख 20 जनवरी, 1982 के विक्रय-विलेख के संबंध में वर्ष 1989 में फाइल किया गया वाद परिसीमा के भीतर था, दस सप्ताह के भीतर उत्तर की मांग करते हुए नोटिस जारी करें ।
>
> सामान्य प्रक्रिया के साथ-साथ दस्ती भेजें ।
>
> इस बीच पक्षकार ऐसी संपत्ति के बारे में यथास्थिति बनाए रखेंगे जो तारीख 20 जनवरी, 1982 के विक्रय-विलेख की विषयवस्तु है ।"

4. तारीख 27 अप्रैल, 2012 को इस न्यायालय द्वारा पारित आदेश के आलोक में, हम केवल इस प्रश्न तक ही अपने को सीमित रखते हैं कि क्या विक्रय-विलेख तारीख 20 जनवरी, 1982 की बाबत वर्ष 1989 में फाइल किया गया वाद परिसीमा के भीतर है या परिसीमा द्वारा वर्जित है ।

5. हमारे समक्ष अपीलार्थी वाद का प्रथम प्रत्यर्थी है । प्रत्यर्थी सं. 1 से

5 वादी हैं और छठा प्रत्यर्थी प्रतिवादी सं. 2 है । सुविधा की दृष्टि से, पक्षकारों को वैसे ही निर्दिष्ट किया गया है जैसे वे विचारण न्यायालय के समक्ष हैं ।

6. संक्षिप्त तथ्य जो पक्षकारों के बीच विवाद के उचित मूल्यांकन के लिए आवश्यक हैं, संक्षेप में इस प्रकार हैं :–

> "वादी/प्रत्यर्थी सं. 1 से 5 ने प्रथम प्रतिवादी (यहां अपीलार्थी) और द्वितीय प्रतिवादी (प्रत्यर्थी सं. 6) के विरुद्ध 1989 का रजिस्ट्रीकृत सिविल वाद सं. 12 फाइल किया । वाद विभाजन के अनुतोष और इस घोषणा की मांग करते हुए फाइल किया गया था कि प्रतिवादी सं. 2 द्वारा प्रतिवादी सं. 1 के पक्ष में निष्पादित तारीख 20 जनवरी, 1982 और तारीख 28 नवंबर, 1988 का विक्रय-विलेख आबद्धकर नहीं है और इसे अपास्त किया जाए तथा वादगत अनुसूची संपत्ति के कब्जे और अंतःकालीन लाभ की प्राप्ति के लिए भी ईप्सा की ।"

7. वाद का संक्षिप्त कथन इस प्रकार है कि वादी सं. 1 और 2 सगे भाई हैं और दूसरा प्रत्यर्थी अप्राप्तवय होते हुए वादी सं. 1 की संरक्षकता में है । वादी सं. 3 से 5 सभी बहनें हैं जबकि प्रतिवादी सं. 2 उनकी माता है और प्रतिवादी सं. 1 ऐसा क्रेता है जिसके पक्ष में प्रतिवादी सं. 2 द्वारा विक्रय-विलेख तारीख 20 जनवरी, 1982 और 28 नवंबर, 1988 का विक्रय-विलेख निष्पादित किया गया अभिकथित है जिन्हें अपास्त किए जाने की ईप्सा की गई है तथा प्रतिवादी सं. 2 ऐसी दूसरी बहन है जिसका विवाह लगभग 12 वर्ष पहले हो चुका है और जिसके पता ठिकाने के बारे में वादी को ज्ञात नहीं है । तीसरे प्रतिवादी को बाद में पक्षकार बनाया गया ।

8. वादियों का यह विनिर्दिष्ट पक्षकथन है कि उनके पिता वादगत अनुसूची संपत्ति के मूल स्वामी हैं जो एक पैतृक संपत्ति है । उनकी मृत्यु अपने दो पुत्र, चार पुत्रियां और विधवा अर्थात् दूसरे प्रतिवादी को छोड़कर वर्ष 1972 में हो गई । अपने पिता के मृत्यु के पश्चात् दूसरा प्रतिवादी जिसके बारे में बुरा चरित्र का होने का अभिकथन है, ससुराल छोड़ दिया और बेगाजी नाम के व्यक्ति के साथ विवाह कर लिया । वादियों के पिता ने अपने जीवनकाल के दौरान वादी सं. 3 और 4 का विवाह कर दिया था और पांचवें वादी का विवाह प्रथम वादी द्वारा किया गया । दूसरे प्रतिवादी को किसी विधिक आवश्यकता के बिना 6,000/- रुपए की थोड़ी रकम पर संपत्ति से अन्यसंक्रमित कर दिया जब कि परिवर्ती भूमि 15,000/- रुपए के

मूल्य की थी । दूसरे विक्रय-विलेख के निष्पादन के समय, यद्यपि पहला वादी वयस्क था फिर भी उसे अवयस्क दर्शाया गया । यह कहा गया है कि क्योंकि दूसरा प्रतिवादी किसी भी समय कभी भी उनकी देखभाल नहीं करती थी और किसी दूसरे व्यक्ति के साथ रहती थी इसलिए उसे संरक्षक नहीं कहा जा सकता । पहला प्रतिवादी किसी प्रतिफल के संदाय के बिना, दूसरे प्रतिवादी की सक्रिय मौनानुकूलता से अवयस्कों के हित से प्रवंचित करने के आशय से विक्रय-विलेख को रजिस्ट्रीकृत कराया । आगे यह अभिवचित किया गया है कि दूसरे विक्रय-विलेख के निष्पादन की तारीख को भूमि का विक्रय प्रति एकड़ 20,000/- रुपए की रकम पर हो सकता है, यह कि प्रथम प्रतिवादी का संपत्ति पर कब्जा है वे प्रथम प्रतिवादी द्वारा कब्जा पाने की तारीख से कब्जे की प्राप्ति की तारीख तक 2,000/- रुपए प्रतिवर्ष की दर से अंतःकालीन लाभ पाने के हकदार हैं ।

9. प्रतिवादियों ने वाद के प्रकथन का खंडन करते हुए वादियों के दावे का विरोध करते हुए लिखित कथन फाइल किया और यह कहते हुए अपने-अपने पक्षकथन प्रस्तुत किए कि दूसरे प्रतिवादी ने विधिक आवश्यकता के प्रयोजन के लिए वादगत अनुसूची संपत्ति का विक्रय किया । उसे अपनी पुत्रियों की शादी करने, बड़े कुटुम्ब का भरणपोषण करने का दायित्व था और उन परिस्थितियों में वह संपत्ति को बेचने के लिए मजबूर हुई और यह कि प्राप्त प्रतिफल भी पर्याप्त था और इस प्रकार विक्रय-विलेख वादियों पर आबद्धकर है । दूसरे प्रतिवादी ने यह आक्षेप किया कि उनकी एक पुत्री को वाद का पक्षकार नहीं बनाया गया है इस प्रकार वाद उचित और आवश्यक पक्षकार के असंयोजन के कारण खारिज किए जाने योग्य है और तदनुसार वाद को खारिज करने की ईप्सा की ।

10. बाद में तीसरे प्रतिवादी को वाद का पक्षकार बनाया गया और वादियों द्वारा सर्वोत्तम प्रयास के बावजूद, नोटिस तामील नहीं की जा सकती और यह बताया गया कि उसका पता ठिकाना 10 वर्ष से अधिक समय से ज्ञात नहीं है । उसकी ओर से कोई लिखित कथन फाइल नहीं किया गया ।

11. पूर्ण विचारण के पश्चात् विचारण न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि हिंदू अप्राप्तवयता और संरक्षकता अधिनियम, 1956 (संक्षेप में "1956 अधिनियम") की धारा 11 के अधीन, अप्राप्तवय के वास्तविक संरक्षक द्वारा किया गया विक्रय आरंभतः शून्य है और यह दर्शित करने के

साक्ष्य के अभाव में पश्चात्वर्ती स्पष्टीकरण हेतु असमर्थ है कि अंतरण विधिक आवश्यकता के लिए किया गया है । अतः, विक्रय-विलेख वादियों पर आबद्धकर नहीं है और तद्नुसार यह अभिनिर्धारित करते हुए वाद में डिक्री की कि वादी विभाजन और अपने-अपने अंश का पृथक् कब्जा पाने के हकदार हैं । वादी सं. 1 और 2, 7/12वां अंश के हकदार हैं और वादी सं. 3 से 5 प्रत्येक 1/24वां अंश पाने के हकदार हैं तथा दूसरा प्रत्यर्थी 7/24वां अंश की हकदार है और वादी अंतःकालीन लाभ के लिए हकदार है ।

12. उक्त निर्णय और डिक्री की चुनौती देते हुए पहले प्रतिवादी ने परभनी के जिला न्यायाधीश के यहां आर.सी.ए. सं. 120/1995 फाइल की । यह दलील देते हुए कि वाद परिसीमा अधिनियम, 1963 (संक्षेप में "अधिनियम") के अनुच्छेद 60 के अनुसार वाद परिसीमा द्वारा वर्जित है, प्रथम अपील न्यायालय के समक्ष प्रतिवादियों द्वारा परिसीमा का मुद्दा उठाया गया और वाद के फाइल करने की तारीख को दूसरे वादी (वामन) के सिवाय अन्य सभी वादी वयस्क हैं अतः, अधिनियम की धारा 60 के अनुसार वाद तीन वर्ष के भीतर संस्थित किया जाना चाहिए । आगे यह तर्क किया गया कि दूसरे वादी (वामन) की विधिक निर्योग्यता अधिनियम में विहित अवधि के पश्चात् वाद संस्थित करने के लिए अन्य वादियों को हकदार नहीं बनाता और अधिनियम की धारा 7 का अवलंब लिया । वाद में वाद शीर्षक के अनुसार, वाद के फाइल करने की तारीख को पहले वादी की उम्र 20 वर्ष थी, दूसरा वादी अवयस्क था और वादी सं. 3, 4 और 5 की उम्र क्रमशः 29, 27 और 25 थी । दलीलों के आधार पर, अपील न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि अधिनियम का अनुच्छेद मामले के तथ्यों को लागू नहीं होता है क्योंकि दूसरा प्रतिवादी न्यायालय द्वारा नियुक्त संरक्षक नहीं है। अतः, अधिनियम का अनुच्छेद 109 जो 12 वर्ष विहित करता है वहां लागू होता है जहां ऐसे हिंदू द्वारा पैतृक संपत्ति के पिता द्वारा अन्य संक्रामण किया गया है जो मिताक्षरा विधि द्वारा शासित हैं अतः, वर्ष 1989 में फाइल किया गया वाद परिसीमा के भीतर है । तथापि, अपील न्यायालय ने इस विस्तार तक डिक्री को उपांतरित किया कि प्रथम प्रतिवादी दूसरे प्रतिवादी का अंश पाने का हकदार है ।

13. असफल और असंतुष्ट प्रथम प्रतिवादी ने द्वितीय अपील सं. 223/2004 द्वारा बम्बई उच्च न्यायालय की औरंगाबाद न्यायपीठ के समक्ष

आवेदन किया । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित करते हुए अपील खारिज कर दी कि अधिनियम का अनुच्छेद 109 माता द्वारा किए गए अन्य-संक्रामण को लागू होता है और अधिनियम का अनुच्छेद 60 मामले के तथ्यों को लागू नहीं होता और कुल मिलाकर इसका उपयोजन भिन्न घटना के संदर्भ में है तथा अधिनियम का अनुच्छेद 109 मामले के तथ्यों को लागू होता है और वाद परिसीमा के भीतर है । उक्त आदेश के विरुद्ध इस न्यायालय के समक्ष यह अपील फाइल की गई ।

14. हम किसी तथ्यात्मक मुद्दे या अन्यथा पर विचार नहीं करना चाहते जिसने अंतिमता प्राप्त कर ली है और हम स्वयं को इस सीमित प्रश्न तक निर्बंधित रखते हैं कि क्या तारीख 20 जनवरी, 1982 के विक्रय-विलेख को अपास्त करने के लिए वर्ष 1989 में फाइल किया गया वाद परिसीमा अधिनियम के किस अनुच्छेद से शासित है और क्या यह परिसीमा के भीतर है या नहीं ?

15. हमने दोनों पक्षों के विद्वान् काउंसेलों को सुना और उनके निवेदनों को अधिनियम के सुसंगत उपबंधों और हमारे समक्ष प्रस्तुत सामग्री के संदर्भ में सावधानीपूर्वक विचार किया ।

16. अपीलार्थी/प्रथम प्रतिवादी की ओर से यह तर्क किया गया कि विक्रय-विलेख तारीख 20 जनवरी, 1982 की चुनौती परिसीमा द्वारा वर्जित है क्योंकि अधिनियम का अनुच्छेद 60 मामले के तथ्यों को लागू होता है और परिसीमा तीन वर्ष है । उनके द्वारा यह दलील दी गई कि निचले न्यायालयों ने गलत ढंग से अनुच्छेद 109 को लागू किया और आगे अनुच्छेद 109 को ऐसे मामलों को लागू होता है जहां अन्यसंक्रामण पिता द्वारा किया गया हो किंतु इस मामले में अन्यसंक्रामण माता द्वारा किया गया था । उन्होंने आगे यह दलील दी कि अधिनियम के अधीन अनुच्छेदों का निर्वचन कानूनों के निर्वचन के स्थिर सिद्धांतों के विरुद्ध है और जब कोई उपबंध अनन्यततः उस बारे में है जो पिता द्वारा अन्यसंक्रामण के बारे में है तो निचले न्यायालयों द्वारा उस उपबंध को माता द्वारा किए गए अन्यसंक्रामण को लागू करना उचित नहीं था । न्यायालय के समक्ष पहली बार यह दलील दी गई कि अधिनियम का अनुच्छेद 110 लागू होता है किंतु उपबंध विक्रय-विलेख तारीख 20 जनवरी, 1982 के अपास्त हो जाने के पश्चात् लागू होगा और अपील मंजूर किए जाने की ईप्सा की ।

17. दूसरी ओर प्रत्यर्थियों/वादियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह तर्क किया कि अनुच्छेद 60 ऐसे मामलों को लागू होता है जहां संरक्षक अवयस्क की अनन्य संपत्ति का विक्रय करता है न कि संयुक्त कुटुम्ब की संपत्ति को । इसके अतिरिक्त अवशिष्ट खंड का कोई उपयोजन नहीं है क्योंकि यह तभी लागू होगा जब अधिनियम के अधीन उपबंधित कोई अन्य अनुच्छेद लागू न हो और उन्होंने आगे यह कहा कि वादियों का मामला पूर्णतः अधिनियम के अनुच्छेद 110 के अधीन आता है और इस प्रकार वादियों द्वारा फाइल किया गया वाद परिसीमा के भीतर है और अपील खारिज किए जाने की मांग की ।

18. मुख्य मुद्दे पर हमारे द्वारा आगे कार्यवाही किए जाने के पूर्व, काउंसेल द्वारा किए गए निवेदनों के आलोक में अधिनियम की धारा 7, अनुच्छेद 60, 109, 110 और 113 पर विचार करना उचित है जो इस प्रकार है :–

धारा 7 : कई व्यक्तियों में से एक की निर्योग्यता :

जहां कि वाद संस्थित करने या डिक्री के लिए आवेदन करने के लिए संयुक्ततः हकदार व्यक्तियों में से कोई एक ऐसी किसी निर्योग्यता के अधीन हो और उस व्यक्ति की सहमति के बिना उन्मोचन दिया जा सकता हो, वहां उन सबके विरुद्ध समय का चलना आरंभ हो जाएगा, किंतु जहां कि ऐसा उन्मोचन न दिया जा सकता हो वहां उनमें से किसी के भी विरुद्ध तब तक समय का चलना आरंभ न होगा जब तक उनमें से कोई एक अन्यों की सहमति के बिना ऐसा उन्मोचन देने के लिए समर्थ न हो जाए या उस निर्योग्यता का अंत न हो जाए ।

स्पष्टीकरण 1 : यह धारा हर प्रकार के दायित्व से, जिसके अंतर्गत स्थावर संपत्ति संबंधी दायित्व आता है, उन्मोचन को लागू होती है ।

स्पष्टीकरण 2 : मिताक्षरा विधि द्वारा शासित हिंदू अविभक्त कुटुम्ब का कर्ता कुटुम्ब के अन्य सदस्यों की सहमति के बिना इस धारा के प्रयोजनों के लिए उन्मोचन देने के लिए समर्थ केवल तब समझा जाएगा जबकि वह अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति का प्रबंध करता हो ।

अधिनियम के अनुच्छेद 60, 109, 110, 113

60. प्रतिपाल्य के संरक्षक द्वारा किए गए संपत्ति के अंतरण को अपास्त करने के लिए-		
(क) प्रतिपाल्य द्वारा जो प्राप्तवय हो गया है :	तीन वर्ष	जब प्रतिपाल्य वय प्राप्त करे।
(ख) प्रतिपाल्य के विधिक प्रतिनिधि द्वारा -		
(i) जब कि प्रतिपाल्य प्राप्त व्यय होने के तीन वर्ष के भीतर मर जाता है ;	तीन वर्ष	जब प्रतिपाल्य प्राप्तवय हो जाए ।
(ii) जबकि प्रतिपाल्य प्राप्तवय होने के पूर्व मर जाता है ।	तीन वर्ष	जब प्रतिपाल्य मर जाए ।
109. मिताक्षरा विधि से शासित हिंदू द्वारा उस अन्य संक्रामण को जो उसके पिता ने पैतृक संपत्ति का किया है अपास्त कराने के लिए ।	बारह वर्ष	जब अन्य संक्रामित संपत्ति का कब्जा ले ले ।
110. उस व्यक्ति द्वारा जो अविभक्त कुटुम्ब की संपत्ति से अपवर्जित किया गया हो, उसमें अंश के किसी अधिकार को प्रवर्तित कराने के लिए ।	बारह वर्ष	जब उपवर्जन वादी को ज्ञात हो जाए ।
113. कोई भी वाद जिसके लिए कोई परिसीमाकाल इस अनुसूची में अन्यत्र उपबंधित नहीं है ।	तीन वर्ष	जब वाद लाने का अधिकार प्रोद्भूत हो ।

19. अधिनियम की धारा 7 जो कई व्यक्तियों में से एक की निर्योग्यता के बारे में है, की उपयोज्यता पर चर्चा करने के पूर्व हम उन अनुच्छेदों की ओर अपना ध्यान आकृष्ट करते हैं जो मामले के तथ्यों को लागू होते हैं ।

20. इस मामले में इस तथ्य के बारे में कोई विवाद नहीं हो सकता है कि दूसरे प्रतिवादी के पति की मृत्यु के पश्चात् दूसरा प्रतिवादी स्वतः अपने बच्चों का प्राकृतिक संरक्षक हो जाता है । इस पर, निचले अपील न्यायालय का यह निष्कर्ष, कि क्योंकि वह वादांतर्गत अनुसूची संपत्ति के अन्य संक्रामण के दिन नियुक्त संरक्षक नहीं थी अतः अधिनियम का अनुच्छेद 109 लागू होता है जो संक्रामणग्राही के कब्जा लेने के दिन से 12 वर्ष की परिसीमा का उपबंध करता है और हिंदू के पैतृक संपत्ति के पिता द्वारा किया गया अन्यसंक्रामण जो मिताक्षरा विधि द्वारा शासित है, अतः यह कि वाद परिसीमा के भीतर है, कायम नहीं रखा जा सकता ।

21. उच्च न्यायालय ने भी उसी धारणा के साथ आगे कार्यवाही की कि अधिनियम का अनुच्छेद 60 वहां लागू होता है जहां प्रतिपाल्य अपने संरक्षक जब वह अप्राप्तवय था, द्वारा किए गए संपत्ति के अंतरण को अपास्त करने के लिए, प्राप्तवयता पाने के पश्चात् वाद फाइल करता है ।

22. उच्च न्यायालय ने आगे यह मत व्यक्त किया कि अधिनियम के अनुच्छेद 109 के अधीन अधिनियम की धारा 60 के अधीन वादी द्वारा फाइल किए गए वाद से भिन्न वादी के वाद को फाइल करने के लिए लंबी लड़ी प्रदान की गई है और वादी का मामला नियमनिष्ठतः अधिनियम के अनुच्छेद 109 के अधीन आता है ।

23. 1956 अधिनियम की धारा 8(1) के पढ़ने मात्र से यह उपदर्शित होता है कि यह प्राकृतिक संरक्षक को ऐसे सभी कार्य करने के लिए सशक्त करती है जो अप्राप्तवय के फायदे के लिए आवश्यक या युक्तियुक्त या उचित हैं । 1956 अधिनियम की धारा 8(2)(क) यह विहित करती है कि क्रेता या विक्रेता को विक्रय द्वारा संपत्ति के अंतरण के लिए जिला न्यायालय से अनुज्ञा अभिप्राप्त करनी चाहिए ।

24. अतः वर्तमान संव्यवहार देखने से ही 1956 अधिनियम द्वारा अधिकथित आज्ञापक उपबंधों के उल्लंघन में है ।

25. जब एक बार संव्यवहार अप्राप्तवय के नाम पर होता है जो 1956

अधिनियम के उल्लंघन में है और जो विधिक आवश्यकता के लिए नहीं की गई है तो ऐसा संव्यवहार शून्यकरणीय है और जब तक ऐसे संव्यवहार को चुनौती दिए जाने या अपास्त किए जाने की ईप्सा नहीं की जाती तब तक उस संपत्ति के कब्जे की पुनःप्राप्ति का प्रश्न ही नहीं उठता ।

26. अनुच्छेद 60 की भाषा के गहन विश्लेषण से यह उपदर्शित होता है कि यह ऐसे अप्राप्तवय जिसने प्राप्तवयता प्राप्त कर ली है द्वारा फाइल किए गए वादों पर लागू होता है और उसके पश्चात् उसके विधिक प्रतिनिधियों द्वारा जब वह प्राप्तवयता अभिप्राप्त करने के पश्चात् मृत्यु हो जाता है या अप्राप्तवय की मृत्यु से । वाद की प्रकृति का व्यापक परिप्रेक्ष्य संरक्षक द्वारा किए गए स्थावर संपत्ति के अंतरण को अपास्त करने के लिए है और परिणामतः 1956 अधिनियम की धारा 8(2) के अतिक्रमण में संरक्षक द्वारा अंतरण को बचाकर कब्जे के लिए है । सारतः यह अंतरण को अपास्त करने और कब्जे के पारिणामिक अनुतोष प्राप्त करने से अधिक कुछ नहीं है ।

27. ऐसा कोई संदेह नहीं हो सकता है कि भूतपूर्व अप्राप्तवय द्वारा अपने संरक्षक द्वारा उसकी संपत्ति के अन्यसंक्रामण को अपास्त करने के लिए फाइल किया गया वाद अनुच्छेद 60 द्वारा शासित है । संरक्षक द्वारा स्थावर संपत्ति के अंतरण को चुनौती देने के लिए, अप्राप्तवय को प्राप्तवयता अभिप्राप्त करने के पश्चात् तीन वर्ष की विहित अवधि के भीतर वाद फाइल करना चाहिए ।

28. परिसीमा अधिनियम वाद फाइल करने का न तो अधिकार और न ही बाध्यता प्रदान करता है, यदि ऐसा कोई अधिकार अधिष्ठायी विधि के अधीन विद्यमान नहीं है । यह केवल वाद फाइल करने के लिए परिसीमा की अवधि विहित करता है ।

29. अतः हमारी यह विचारित राय है कि 1956 अधिनियम की धारा 8(1)(2) के उल्लंघन में अपने संरक्षक द्वारा किए गए किसी स्थावर संपत्ति के अंतरण को चुनौती देने वाला भूतपूर्व अप्राप्तवय वादी और जो संपत्ति का कर्जा चाहता है, अधिनियम के अनुच्छेद 60 के अधीन विहित परिसीमा के भीतर ही वाद फाइल कर सकता है और अधिनियम के अनुच्छेद 109, 110 या 113 मामले के तथ्यों को लागू नहीं होते ।

30. उच्च न्यायालय और विचारण न्यायालय ने अधिनियम का

अनुच्छेद 109 लागू कर गलती की है, जहां अधिनियम का अनुच्छेद 109 स्पष्टतः मिताक्षरा विधि द्वारा शासित पिता द्वारा किए गए अन्यसंक्रामण के बारे में है और आगे निचले न्यायालयों ने अधिनियम के अनुच्छेद 109 के अधीन दी गई लंबी लड़ी और तुलनात्मकतः अधिनियम के अनुच्छेद 60 के अधीन विहित कम समय पर आगे चर्चा की । निर्वचन का यह सुस्थिर सिद्धांत है कि उपबंध का निर्वचन करते समय व्यक्ति की असुविधा और कठिनाई निर्णायक कारक नहीं होंगे । जब उपबंध के पढ़ने मात्र से ही यह काफी स्पष्ट हो जाता है और सुस्पष्टतः यह अर्थ प्रदान करता है तो इसका निर्वचन उसी आशय से किया जाना चाहिए जैसा लैटिन सूक्ति ''डुलो लेक्स सेड लेक्स'' जिसका यह अर्थ है कि विधि कठोर है किंतु यह विधि ही है और विधि के शब्दों से कोई विपथन नहीं किया जा सकता ।

31. अतः हमारी उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए, यह वाद फाइल करने की परिसीमा अधिनियम के अनुच्छेद 60 द्वारा शासित है और परिसीमा प्राप्तवयता अभिप्राप्त करने की तारीख से 3 वर्ष है । जब एक बार हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि अधिनियम का अनुच्छेद 60 लागू होता है और परिसीमा 3 वर्ष है तो निर्णायक प्रश्न यह है कि जब कई वादी हों तो परिसीमा की गणना करने की तारीख क्या हो ? धारा 7 के पढ़ने से यह स्पष्ट होता है कि जब कई व्यक्तियों में से एक जो संयुक्ततः वाद संस्थित करने के हकदार हैं या डिक्री की निष्पादन के लिए आवेदन करते हैं और ऐसे व्यक्ति की सहमति के बिना उन्मोचन दिया जा सकता है तो समय उन सभी के विरुद्ध चालू होगा किंतु जब ऐसा कोई उन्मोचन नहीं दिया जा सकता हो तो उन सब के विरुद्ध समय चालू होगा जब तक उनमें से एक उन्मोचन देने के लिए सक्षम नहीं हो जाता ।

32. इस मामले में पहले वादी की आयु 20 वर्ष थी, दूसरा प्रतिवादी अब भी अप्राप्तवय था और वादी सं. 3, 4 और 5 जो विवाहित पुत्रियां हैं की आयु, वर्ष 1989 में वाद संस्थित किए जाने की तारीख को क्रमशः 29, 27 और 25 वर्ष थी । धारा 7 के स्पष्टीकरण 2 के अनुसार मिताक्षरा विधि द्वारा शासित हिंदू अविभक्त कुटुम्ब के कर्ता को कुटुम्ब के अन्य सदस्यों की सहमति के बिना उन्मोचन देने का सक्षम समझा जाएगा यदि वह संयुक्त कुटुम्ब संपत्ति का प्रबंधक है । इस मामले में, वादी सं. 3 से 5 यद्यपि वाद के संस्थित करने की तारीख को प्राप्तवय थे फिर भी परिसीमा अधिनियम की धारा 7 के स्पष्टीकरण 2 के अधीन नहीं आएंगे क्योंकि वे संयुक्त कुटुम्ब

के प्रबंधक या कर्ता नहीं हैं । पहले वादी की आयु वाद के संस्थित किए जाने की तारीख को 20 वर्ष थी और पहले वादी की आयु के बारे में भिन्न निष्कर्ष निकालने का कोई साक्ष्य नहीं है । मामले के उस दृष्टिकोण से, वाद अधिनियम के अनुच्छेद 60 के अधीन यथा परिकल्पित प्राप्तवयता अभिप्राप्त करने की तारीख से परिसीमा के तीन वर्षों के भीतर संस्थित किया गया है ।

33. अतः उपरोक्त चर्चा को ध्यान में रखते हुए अपील सारहीन है और हम अपील को खारिज करना उचित समझते हैं । तद्नुसार अपील खारिज की जाती है किंतु परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए खर्चे के संबंध में कोई आदेश नहीं दिया गया ।

अपील खारिज की गई ।

पा.

[2016] 4 उम. नि. प. 38

स्टैंडर्ड चार्टर्ड बैंक

बनाम

महाराष्ट्र राज्य

6 अप्रैल, 2016

न्यायमूर्ति दीपक मिश्र और न्यायमूर्ति शिव कीर्ति सिंह

परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (1881 का 26) – धारा 141(2) [सपठित दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 482] – चेक का अनादरण – समन आदेश के विरुद्ध अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग – जहां परिवाद में कंपनी, अध्यक्ष, प्रबंध निदेशक और पूर्णकालिक निदेशक और कार्यपालक निदेशक के विरुद्ध सक्रिय मौनानुकूलता, रिष्टि और प्रश्नगत चेक जारी करने में साशय का प्राख्यान किया गया हो, वहां उच्च न्यायालय द्वारा अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध समन जारी करने के लिए परिवाद में किसी विनिर्दिष्ट प्रकथन के न होने का निष्कर्ष निकालना बिल्कुल गलत है और विधि के प्रतिकूल है ।

संक्षेप में तथ्य इस प्रकार है कि मैसर्स ए. बी. जी. शिपयार्ड लिमिटेड कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन एक रजिस्ट्रीकृत कंपनी है । कंपनी के प्राधिकारियों द्वारा आवेदन किए जाने पर तारीख 28 अप्रैल, 2012 को अपीलार्थी बैंक द्वारा कंपनी को 200 करोड़ रुपए की रकम की संक्षिप्त अवधि ऋण सुविधा दी गई । परिवाद में किए गए कथन के अनुसार, कंपनी ने अपीलार्थी बैंक के पक्ष में एक प्रतिभूति निष्पादित की और तीन किस्तों में अर्थात् पहली 15 दिसंबर, 2012 को, दूसरी 15 जनवरी, 2013 को और आखिरी 15 फरवरी, 2013 को रकम वापस करने की सहमति व्यक्त की । कंपनी ने तीन चेक क्रमशः 66,67,00,000/- रुपए का 15 दिसंबर, 2012 को और दो अन्य 66,67,00,000/- रुपए और 66,66,00,000/- रुपए का तारीख 15 जनवरी, 2013 और 15 फरवरी, 2013 का दायित्व के पुनः भुगतान के लिए जारी किया । चेकों में वर्णित तारीखों के अनुसार, उन्हें बैंक के समक्ष पेश किया गया किंतु "अपर्याप्त निधि" और "खाता रोक दिया गया" के कारण चेक अनादृत हो गए । अपीलार्थी बैंक ने प्रत्येक चेक के लिए अपेक्षित कानूनी नोटिस जारी की । प्रत्यर्थियों द्वारा कोई उत्तर न मिलने के कारण अपीलार्थी ने मुंबई के इस्प्लानडे के 23वें महानगर मजिस्ट्रेट न्यायालय के समक्ष 2013 की सी.सी. सं. 451/एस.एस., 2013 की सी.सी. सं. 843/एस.एस. और 2013 की सी.सी. सं. 1145/एस.एस. के तीन परिवाद फाइल किए जिसमें मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और सभी अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध समन जारी किए । इसमें प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 में समन जारी करने के आदेशों से व्यथित होकर, मुंबई के सिटी सिविल और सेशन न्यायालय के समक्ष 2014 का पुनरीक्षण आवेदन सं. 1123 से 1125, तीन पुनरीक्षण याचिकाएं फाइल कीं और पुनरीक्षण न्यायालय ने सम्यक् विचार-विमर्श के पश्चात् उक्त चुनौती में कोई सार नहीं पाया और पुनरीक्षण याचिकाएं खारिज कर दीं । खारिजी आदेश ने प्रत्यर्थियों को बम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष 2015 की दांडिक रिट याचिका सं. 1482 से 1484 फाइल करने के लिए मजबूर किया और विद्वान् एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए अभियुक्त सं. 4 और 5 द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाओं को मंजूर किया कि परिवादी ने उक्त प्रत्यर्थी से परिवाद में उनकी भूमिका के बारे में कोई विनिर्दिष्ट प्राख्यान किए बिना उत्तरदायी होने का प्रकथन किया था । पूर्वोक्त कथनानुसार, उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा फाइल की गई रिट याचिका खारिज की । उच्च न्यायालय के पूर्वोक्त आदेश के विरुद्ध अपीलार्थी ने इस न्यायालय के समक्ष अपील की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपीलें मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि परिवाद के प्रकथन स्पष्टतः अपेक्षित कसौटी को पूरा करते हैं । यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि यहां 7 अभियुक्त हैं । अभियुक्त सं. 1 कंपनी, अभियुक्त सं. 2 और 3 क्रमशः अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक और अभियुक्त सं. 6 और 7 चेक के हस्ताक्षरकर्ता थे । जहां तक अभियुक्त सं. 4 और 5 का संबंध है वे पूर्णकालिक निदेशक थे और प्राख्यान यह है कि वे कंपनी के दैनिक कारबार के प्रभारी थे और सभी लोगों ने सक्रिय मौनानुकूलता, रिष्टि और साशय प्रश्नगत चेक जारी किए । इस प्रकार, परिवाद में किए गए संपूर्ण प्राख्यानों पर विचार करते हुए और इसमें प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 से संबंधित प्रकथनों पर ध्यान देते हुए भी कि वे पूर्णकालिक निदेशक और कार्यपालक निदेशक हैं और वे कंपनी के दैनिक क्रियाकलाप के प्रभारी थे, न्यायालय की यह विचारित राय है कि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालते हुए घोर त्रुटि की कि उक्त अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध समन जारी करने के लिए परिवाद में कोई विनिर्दिष्ट प्रकथन नहीं है । न्यायालय बिना हिचकिचाहट के यह अभिनिर्धारित करता है कि गुनमाला सेल्स प्रा. लि. वाले मामले में अधिकथित कसौटी को पूरा करने के लिए परिवाद में पर्याप्त दृढ़ कथन है । परिणामतः, अपीलें मंजूर की जाती हैं और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश अपास्त किया जाता है । विद्वान् मजिस्ट्रेट से विधि के अनुसार परिवाद मामलों में आगे कार्यवाही करने का निदेश दिया जाता है । (पैरा 33, 34 और 35)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 1 एस. सी. सी. 103 : **गुनमाला सेल्स प्रा. लि.** बनाम **अनू मेहता और अन्य** ।	8

निर्दिष्ट निर्णय

[2015]	(2015) 8 स्केल 733 : **तमिलनाडु न्यूज प्रिन्ट एंड पेपर्स लि.** बनाम **डी. करुणाकर और अन्य** ;	8, 30

[2013]	(2013) 16 एस. सी. सी. 630 : **ए. के. सिंहानिया** बनाम **गुजरात स्टेट फर्टिलाइजर कंपनी लि. और अन्य** ;	8
[2012]	(2012) 5 एस. सी. सी. 661 : **अनीता हडा** बनाम **गार्डफादर ट्रेवल्स एंड टूर्स प्रा. लि.** ;	13
[2010]	(2010) 3 एस. सी. सी. 330 : **नेशनल स्माल इंडस्ट्रीज कारपोरेशन लि.** बनाम **हरमीत सिंह पैनटल और अन्य** ;	8
[2009]	(2009) 10 एस. सी. सी. 48 : **के. के. आहूजा** बनाम **वी. के. बोरा और एक अन्य** ;	24
[2007]	(2007) 3 एस. सी. सी. 693 : **सरोज कुमार पोद्दार** बनाम **राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र) और एक अन्य** ;	20
[2007]	(2007) 4 एस. सी. सी. 70 : **एस. एम. एस. फार्मास्यूटिकल्स लि.** बनाम **नीता भल्ला और अन्य** ;	19
[2007]	(2007) 5 एस. सी. सी. 54 : **एवरेस्ट एडवरटाइजिंग (प्रा.) लि.** बनाम **राज्य, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र सरकार और अन्य** ;	22
[2006]	(2006) 10 एस. सी. सी. 581 : **सबिता राममूर्ति** बनाम **आर. बी. एस. चन्नाबसवराध्या** ;	19
[2005]	(2005) 8 एस. सी. सी. 89 : **एस. एम. एस. फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड** बनाम **नीता भल्ला और अन्य** ;	8
[2003]	(2003) 115 कंपनी केस 957 (दिल्ली) : **लोक हाउसिंग एंड कंस्ट्रक्शन्स लि.** बनाम **वी. रघुपति लिजिंग एंड फाइनेंस लि.** ;	17

[2003]	(2003) 115 कंपनी केस 321 (मद्रास) : **आर. कानन** बनाम **कोटक महिन्द्रा फाइनेंस लि.** ;	17
[2002]	(2002) 108 कंपनी केस 687 (आंध्र प्रदेश) : **सुनील कुमार छपरिया** बनाम **डक्का ईश्वरय्या** ;	17
[2002]	(2002) 7 एस. सी. सी. 655 : **कट्टा सुजाता** बनाम **फर्टिलाइजर एंड केमिकल्स त्रावणकोर लि.** ;	17
[2001]	(2001) 10 एस. सी. सी. 218 : **के. पी. जी. नायर** बनाम **जिंदल मेंथॉल इंडिया लि.** ;	17
[2000]	(2000) 107 कंपनी केस 107 (आंध्र प्रदेश) : **वी. सुधीर रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	17
[1999]	(1999) 96 कंपनी केस 106 (आंध्र प्रदेश) : **सिकंदराबाद हेल्थ केयर लि.** बनाम **सिकंदराबाद होस्पिटल (प्रा.) लि.** ;	17
[1998]	(1998) 5 एस. सी. सी. 343 : **हरियाणा राज्य** बनाम **बृज लाल मित्तल** ।	17

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2016 की दांडिक अपील सं. 271-273.

2015 की दांडिक अपील सं. 1482, 1483 और 1484 में बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 13 अक्तूबर, 2015 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री श्याम दीवान, ज्येष्ठ अधिवक्ता, अतीव माथुर, अमोल शर्मा और गगन गुप्ता

प्रत्यर्थी की ओर से सुश्री इंदू मल्होत्रा, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सर्वश्री राजीव त्यागी और निशांत रामाकांतराव कटनेश्वरकर

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति दीपक मिश्र ने दिया ।

न्या. मिश्र – इजाजत दी गई ।

2. विशेष इजाजत द्वारा ये अपीलें 2015 की दांडिक रिट याचिका सं. 1482-1484 में बम्बई उच्च न्यायालय द्वारा पारित तारीख 13 अक्तूबर, 2015 के आदेश के विरुद्ध की गई है जिसके द्वारा विद्वान् एकल न्यायाधीश ने एक ही आक्षेपित आदेश द्वारा परक्राम्य लिखत अधिनियम, 1881 (संक्षेप में 'अधिनियम') की धारा 138 के अधीन मुम्बई के 23वें इस्प्लानडे के महानगर मजिस्ट्रेट द्वारा प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 (मूल अभियुक्त सं. 5 और 4) के विरुद्ध समन के आदेश को अभिखंडित किया है । यह उल्लेखनीय है कि उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 4 (मूल अभियुक्त सं. 2) के विरुद्ध जारी मजिस्ट्रेट के समन जारी करने के आदेश को अभिखंडित करने से इनकार किया किंतु उक्त अभियुक्त ने इस न्यायालय में समावेदन नहीं किया है ।

3. संक्षेप में तथ्य इस प्रकार है कि मैसर्स ए. बी. जी. शिपयार्ड लिमिटेड कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन एक रजिस्ट्रीकृत कंपनी है । कंपनी के प्राधिकारियों द्वारा आवेदन किए जाने पर तारीख 28 अप्रैल, 2012 को अपीलार्थी बैंक द्वारा कंपनी को 200 करोड़ रुपए की रकम की संक्षिप्त अवधि ऋण सुविधा दी गई । परिवाद में किए गए कथन के अनुसार, कंपनी ने अपीलार्थी बैंक के पक्ष में एक प्रतिभूति निष्पादित की और तीन किस्तों में अर्थात् पहली 15 दिसंबर, 2012 को, दूसरी 15 जनवरी, 2013 को और आखिरी 15 फरवरी, 2013 को रकम वापस करने की सहमति व्यक्त की । कंपनी ने तीन चेक क्रमशः 66,67,00,000/- रुपए का 15 दिसंबर, 2012 को और दो अन्य 66,67,00,000/- रुपए और 66,66,00,000/- रुपए का तारीख 15 जनवरी, 2013 और 15 फरवरी, 2013 का दायित्व के पुनः भुगतान के लिए जारी किया । चेकों में वर्णित तारीखों के अनुसार, उन्हें बैंक के समक्ष पेश किया गया किंतु "अपर्याप्त निधि" और "खाता रोक दिया गया" के कारण चेक अनादृत हो गए । अपीलार्थी बैंक ने प्रत्येक चेक के लिए अपेक्षित कानूनी नोटिस जारी की । प्रत्यर्थियों द्वारा कोई उत्तर न मिलने के कारण अपीलार्थी ने मुंबई के इस्प्लानडे के 23वें महानगर मजिस्ट्रेट न्यायालय के समक्ष 2013 की सी.सी. सं. 451/एस.एस., 2013 की सी.सी. सं. 843/एस.एस. और 2013 की सी.सी. सं. 1145/एस.एस. के तीन परिवाद फाइल किए जिसमें मजिस्ट्रेट ने संज्ञान लिया और सभी अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध समन जारी किए ।

4. इसमें प्रत्यर्थी सं. 2 से 4 में समन जारी करने के आदेशों से व्यथित होकर, मुंबई के सिटी सिविल और सेशन न्यायालय के समक्ष 2014 का पुनरीक्षण आवेदन सं. 1123 से 1125, तीन पुनरीक्षण याचिकाएं फाइल कीं और पुनरीक्षण न्यायालय ने सम्यक् विचार-विमर्श के पश्चात् उक्त चुनौती में कोई सार नहीं पाया और पुनरीक्षण याचिकाएं खारिज कर दीं ।

5. खारिजी आदेश ने प्रत्यर्थियों को बम्बई उच्च न्यायालय के समक्ष 2015 की दांडिक रिट याचिका सं. 1482 से 1484 फाइल करने के लिए मजबूर किया और विद्वान् एकल न्यायाधीश ने आक्षेपित आदेश द्वारा यह अभिनिर्धारित करते हुए अभियुक्त सं. 4 और 5 द्वारा फाइल की गई रिट याचिकाओं को मंजूर किया कि परिवादी ने उक्त प्रत्यर्थी से परिवाद में उनकी भूमिका के बारे में कोई विनिर्दिष्ट प्राख्यान किए बिना उत्तरदायी होने का प्रकथन किया था । पूर्वोक्त कथनानुसार, उच्च न्यायालय ने प्रत्यर्थी सं. 4 द्वारा फाइल की गई रिट याचिका खारिज की ।

6. आक्षेपित आदेश के परिशीलन से, यह प्रकट होता है कि उच्च न्यायालय के विद्वान् एकल न्यायाधीश ने अकेले ही इस आधार पर समन का अभिखंडन किया है कि कंपनी के क्रियाकलाप से उन्हें जोड़ते हुए सफल रिट याचिकाकर्ताओं के विरुद्ध कोई अभिकथन नहीं है ।

7. उच्च न्यायालय द्वारा पारित पूर्वोक्त आदेश की आलोचना करते हुए अपीलार्थी बैंक की ओर से उपस्थित ज्येष्ठ विद्वान् काउंसेल श्री दीवान का यह निवेदन है कि उच्च न्यायालय परिवाद में किए गए प्राख्यानों की संवीक्षा करने में असफल रहा, क्योंकि परिवाद में अभियुक्त व्यक्तियों की भूमिका के बारे में स्पष्टतः कथन किया गया है । विद्वान् काउंसेल का यह निवेदन है कि यह ऐसा मामला है जहां प्रत्यर्थियों ने 200 करोड़ रुपए का ऋण लिया और सम्यक् प्रस्तुतीकरण पर वे चेक जो जारी किए गए थे अनादृत हो गए, वहां उच्च न्यायालय को कार्यपालक निदेशक और पूर्णकालिक निदेशक जो वस्तुतः उत्तरदायी व्यक्ति हैं और कंपनी के दैनिक क्रियाकलापों के प्रभारी हैं के विरुद्ध जारी समन आदेश को अपास्त करने के लिए दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 482 के अधीन अंतर्निहित अधिकारिता का प्रयोग नहीं करना चाहिए ।

8. श्री दीवान द्वारा प्रस्तुत पूर्वोक्त निवेदनों का विरोध करते हुए

प्रत्यर्थियों की ओर से उपस्थित विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल सुश्री इंदू मल्होत्रा ने यह दलील दी कि विद्वान् मजिस्ट्रेट ने परिवार अर्जी में किए गए प्रकथनों का परिशीलन किए बिना यंत्रवत संज्ञान लिया अतः समन जारी करने के आदेश को अपास्त करने में उच्च न्यायालय की अधिकारिता के प्रयोग को गलत नहीं कहा जा सकता । उसने **एस. एम. एस. फार्मास्युटिकल्स लिमिटेड** बनाम **नीता भल्ला और अन्य**[1] (जिसे इसमें इसके पश्चात् "एस.एम.एस." फार्मा-I कहा गया है), **गुनमाला सेल्स प्रा. लि.** बनाम **अनू मेहता और अन्य**[2], **नेशनल स्माल इंडस्ट्रीज कारपोरेशन लि.** बनाम **हरमीत सिंह पैनटल और अन्य**[3], **तमिलनाडु न्यूज प्रिन्ट एंड पेपर्स लि.** बनाम **डी. करुणाकर और अन्य**[4], **ए. के. सिंहानिया** बनाम **गुजरात स्टेट फर्टिलाइजर कंपनी लि. और अन्य**[5] वाले मामलों के विनिश्चयों को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया ।

9. संविवाद को उचित परिप्रेक्ष्य में मूल्यांकन करने के लिए अधिनियम की धारा 138 और 141 को निर्दिष्ट करना प्रासंगिक है । धारा 138 इस प्रकार है :–

> "138. **खाते में अपर्याप्त निधियों, आदि के कारण चेक का अनादरण** – जहां किसी व्यक्ति द्वारा किसी ऋण या अन्य दायित्व के पूर्णतः या भागतः उन्मोचन के लिए किसी बैंकर के पास अपने द्वारा रखे गए खाते में से किसी अन्य व्यक्ति को किसी धनराशि के संदाय के लिए लिखा गया कोई चेक बैंक द्वारा संदाय किए बिना या तो इस कारण लौटा दिया जाता है कि उस खाते में जमा धनराशि उस चेक का आदरण करने के लिए पर्याप्त है या वह उस रकम से अधिक है जिसका बैंक के साथ किए गए करार द्वारा उस खाते में से संदाय करने का ठहराव किया गया है, वहां ऐसे व्यक्ति के बारे में यह समझा जाएगा कि उसने अपराध किया है और वह, इस अधिनियम के किसी अन्य उपबंध पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, कारावास से, जिसकी अवधि दो वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो चेक की

---

[1] (2005) 8 एस. सी. सी. 89.
[2] (2015) 1 एस. सी. सी. 103.
[3] (2010) 3 एस. सी. सी. 330.
[4] (2015) 8 स्केल 733.
[5] (2013) 16 एस. सी. सी. 630.

रकम का दुगुना तक हो सकेगा, या दोनों से दंडनीय होगा :

परंतु इस धारा में अंतर्विष्ट कोई बात तब तक लागू नहीं होगी जब तक –

(क) वह चेक उसके लिखे जाने की तारीख से छह मास की अवधि के भीतर या उसकी विधिमान्यता की अवधि के भीतर जो भी पूर्वतर हो, बैंक को प्रस्तुत न किया गया हो ;

(ख) चेक का पाने वाला या धारक, सम्यक् अनुक्रम में चेक के लेखीवाल को, असंदत्त चेक के लौटाए जाने की बाबत बैंक से उसे सूचना की प्राप्ति के तीस दिन के भीतर, लिखित रूप से सूचना देकर उक्त धनराशि के संदाय के लिए मांग नहीं करता है ; और

(ग) ऐसे चेक का लेखीवाल, चेक के पाने वाले को यह धारक को उक्त सूचना की प्राप्ति के पंद्रह दिन के भीतर उक्त धनराशि का संदाय सम्यक् अनुक्रम में करने में असफल नहीं रहता है ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, 'ऋण या अन्य दायित्व' से विधितः प्रवर्तनीय ऋण या अन्य दायित्व अभिप्रेत है ।"

10. पूर्वोक्त उपबंध के सम्यक् संवीक्षा से यह बिल्कुल सुस्पष्ट है कि आपराधिक दायित्व गठित करने के लिए परिवादी से यह साबित करने की अपेक्षा है कि चेक जारी किया गया था ; यह कि यह प्रश्नगत बैंक में पेश किया गया था ; यह कि सम्यक् प्रस्तुतीकरण के पश्चात् यह अनादृत हो गया था ; यह कि उपबंध के वर्णनानुसार उस व्यक्ति पर अपेक्षित नोटिस तामील की गई थी जिसे आपराधिक दायित्व के लिए दायी ठहराए जाने की ईप्सा की गई थी ; और नोटिस की तामीली के बावजूद, उस व्यक्ति जिसे अभियुक्त के रूप में आरोपित किया गया है, ने विहित अवधि अर्थात् नोटिस की प्राप्ति की तारीख से 15 दिन के भीतर संदाय कर या अन्य बाध्यताओं को पूरा कर नोटिस का पालन करने में असफल रहा है ।

11. अधिनियम की धारा 141 कंपनियों द्वारा अपराध के बारे में है, वह इस प्रकार है :–

"**141. कंपनियों द्वारा अपराध** – (1) यदि धारा 138 के अधीन

अपराध करने वाला व्यक्ति कोई कंपनी है तो ऐसा प्रत्येक व्यक्ति जो उस अपराध के किए जाने के समय उस कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उस कंपनी का भारसाधक और उसके प्रति उत्तरदायी था और साथ ही वह कंपनी भी ऐसे अपराध के लिए दोषी समझे जाएंगे और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने पर दंडित किए जाने के भागी होंगे :

परंतु इस उपधारा की कोई बात किसी ऐसे व्यक्ति को दंड का भागी नहीं बनाएगी यदि वह यह साबित कर देता है कि अपराध की जानकारी के बिना किया गया था अथवा उसने ऐसे अपराध के निवारण के लिए सब सम्यक् तत्परता बरती थी :

परंतु यह और कि जहां किसी व्यक्ति का नामांकन केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार या यथास्थिति केंद्रीय सरकार या राज्य सरकार के स्वामित्वाधीन या नियंत्रित वित्तीय निगम में किसी पद या नियोजन धारित करने के कारण किसी कंपनी के निदेशक के रूप में किया गया है तो वह इस अध्याय के अधीन अभियोजन का दायी नहीं है ।

(2) उपधारा (1) में किसी बात के होते हुए भी, जहां इस अधिनियम के अधीन कोई अपराध किसी कंपनी द्वारा किया गया है और यह साबित हो जाता है कि वह अपराध कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी की सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या उस अपराध का किया जाना उसकी किसी उपेक्षा के कारण माना जा सकता है वहां ऐसा निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी भी, उस अपराध का दोषी समझा जाएगा और तद्नुसार अपने विरुद्ध कार्यवाही किए जाने और दंडित किए जाने का भागी होगा ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, –

(क) 'कंपनी' से कोई निगमित निकाय अभिप्रेत है और इसके अंतर्गत फर्म या व्यक्तियों का अन्य संगम है ; और

(ख) किसी फर्म के संबंध में, 'निदेशक' से उस फर्म का कोई भागीदार अभिप्रेत है ।"

12. पूर्वोक्त उपबंध के परिशीलन से, यह बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि

ऐसा कोई व्यक्ति जो अधिनियम की धारा 138 के अधीन अपराध करता है, कंपनी है, तो अपराध किए जाने के समय कंपनी के कारबार के संचालन के लिए कंपनी का प्रभारी या उत्तरदायी अन्य व्यक्ति और कंपनी को अपराध का दोषी समझा जाता है । इस प्रकार यह कंपनी के कारबार के संचालन के उत्तरदायी व्यक्तियों पर आन्वयिक दायित्व सृजित करता है ।

13. एक समय, इस न्यायालय के समक्ष यह मुद्दा उद्भूत हुआ था कि क्या कोई परिवाद कंपनी को पक्षकार बनाए बिना संधार्य किया जा सकता है । उक्त संविवाद को **अनीता हडा** बनाम **गार्डफादर ट्रेवल्स एंड टूर्स प्रा. लि.**[1] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा तय किया गया जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया कि जब कंपनी का अभियोजन किया जा सकता है तो अन्य प्रवर्गों में वर्णित व्यक्तियों को ही अर्जी में किए गए प्रकथनों और उसके सबूत के अधीन रहते हुए अपराध के लिए प्रतिनिधिक रूप से दायी ठहराया जा सकता है । उसमें आगे यह अभिनिर्धारित किया गया है कि तब तक कोई प्रतिनिधायी दायित्व नहीं हो सकता जब तक कंपनी के विरुद्ध अभियोजन न हो । इस मामले में कंपनी को अध्यक्ष और अन्य निदेशकों के साथ अभियुक्त सं. 1 के रूप में पक्षकार बनाया गया है ।

14. अब, हम **एस. एम. एस. फार्मा-I** (उपरोक्त) वाले मामले में व्यक्त कथन का मूल्यांकन करते हैं जिसमें तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने तीन मुद्दों पर निर्देश का उत्तर दिया था । ऐसे दो मुद्दों के उत्तर जो वर्तमान प्रयोजन के लिए सुसंगत हैं, इस प्रकार हैं :–

> "(क) .....
>
> (ख) क्या कंपनी के निदेशक को कंपनी के कारबार के संचालन के लिए कंपनी का प्रभारी या उत्तरदायी समझा जाएगा अतः अपराध का दोषी समझा जाए जब तक वह प्रतिकूल साबित नहीं करता ।
>
> (ग) यदि यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि विनिर्दिष्ट प्रकथन अनिवार्य हैं तो क्या ऐसे प्रकथनों के अभाव में चेक का हस्ताक्षरकर्ता या ऐसा प्रबंध निदेशक या संयुक्त प्रबंध निदेशक जो स्वीकार्यतः कंपनी का भारसाधक है या उसके कारबार के संचालन के लिए कंपनी का उत्तरदायी है के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ की जा सकती है ।"

---

[1] (2012) 5 एस. सी. सी. 661.

15. तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने अधिनियम की धारा 138 और 141, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 203 और 204 को निर्दिष्ट किया और यह मत व्यक्त किया कि परिवाद में आदेशिका जारी करने के लिए मजिस्ट्रेट को अपना विचार बनाने में समर्थ करने हेतु सामग्री होनी चाहिए और यदि यह अपेक्षा नहीं हो तो परिणाम दूरगामी होंगे । यदि किसी मजिस्ट्रेट को सभी मामलों में आदेशिका जारी करनी हो तो मजिस्ट्रेट के समक्ष कार्य का भार और ऐसे प्रत्यर्थी जिन्हें आदेशिका जारी की जानी है, को कारित प्रताड़ना के भयंकर परिणाम होंगे । उसमें यह मत व्यक्त किया गया है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 204 "यदि किसी अपराध का संज्ञान लेने वाले मजिस्ट्रेट की राय में कार्यवाही आरंभ करने का पर्याप्त आधार है" शब्दों से आरंभ होती है और उसके अलावा "कार्यवाही आरंभ करने के पर्याप्त आधार" शब्द पुनः इंगित करते हैं कि प्रत्यर्थी के विरुद्ध कार्यवाही आरंभ करने के परिवाद में आधार होने चाहिए । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह न्यादेश दिया कि यह स्थिर विधि है कि आदेशिका जारी करते समय, मजिस्ट्रेट से परिवाद के अभिकथनों को ही देखना अपेक्षित है और जहां परिवाद या आरोप पत्र के अभिकथनों से किसी व्यक्ति के विरुद्ध अपराध लिखित नहीं होता वहां परिवाद खारिज किए जाने योग्य है ।

16. ऐसा उल्लेख करते हुए न्यायालय ने अधिनियम की धारा 138 के अधीन फाइल परिवाद पर विचार किया और यह राय व्यक्त की कि परिवाद में आदेशिका जारी करने के लिए मामला बनना चाहिए । जहां तक कंपनी के क्रियाकलाप के संचालन के लिए उत्तरदायी अधिकारियों का संबंध है न्यायालय ने कंपनी अधिनियम, 1956 के विभिन्न उपबंधों को निर्दिष्ट किया और अधिनियम की धारा 148 का विश्लेषण करते हुए इस प्रकार अधिकथित किया :–

> "यह अपेक्षित है कि ऐसे व्यक्ति जिनके विरुद्ध धारा 141 के अधीन आपराधिक रूप से दायी बनाए जाने की ईप्सा की जाती है, को अपराध किए जाने के समय कंपनी के कारबार के संचालन के लिए कंपनी का प्रभारी या उत्तरदायी व्यक्ति होना चाहिए । कंपनी से जुड़ा प्रत्येक व्यक्ति उपबंध की परिधि के भीतर नहीं आएगा । केवल वे व्यक्ति ही जो अपराध के किए जाने के समय कंपनी के कारबार के संचालन के प्रभारी और उत्तरदायी थे, आपराधिक कार्रवाई के

दायी होंगे । इससे यह प्रतीत होता है कि यदि ऐसी कंपनी का निदेशक जो सुसंगत समय पर कंपनी के कारबार के संचालन का प्रभारी और उत्तरदायी नहीं था, उपबंध के अधीन दायी नहीं होगा । उत्तरदायित्व ऐसे सुसंगत समय पर कंपनी के कारबार के संचालन के लिए प्रभारी और उत्तरदायी होने के कारण ही उद्भूत होता है जब अपराध किया गया न कि मात्र कंपनी में पदनाम या पद धारित करने के आधार पर । प्रतिकूलतः कंपनी में किसी पद या पदनाम धारित न करने वाला व्यक्ति भी दायी हो सकता है यदि वह सुसंगत समय पर कंपनी के कारबार के संचालन के लिए प्रभारी और उत्तरदायी होने की मुख्य अपेक्षा पूरा करता है । दायित्व कंपनी के क्रियाकलापों में व्यक्ति द्वारा निभाई जाने वाली भूमिका पर निर्भर करता है न कि पदनाम या हैसियत पर । यदि निदेशक या प्रबंधक या सचिव होना ही आपराधिक दायित्व के लिए पर्याप्त होता तो धारा में इस प्रकार उल्लेख किया गया होता । 'प्रत्येक व्यक्ति' के बजाय धारा में 'कंपनी में प्रत्येक निदेशक, प्रबंधक या सचिव दायी है' ..... आदि कहा गया होता । विधायिका को यह ज्ञात है कि यह आपराधिक दायित्व का मामला है जिसका गंभीर परिणाम होता है जहां तक उत्तरदायी ठहराए जाने वाले व्यक्ति का संबंध है । अतः, केवल वे व्यक्ति जिन्हें सुसंगत समय पर अपराध के किए जाने से संबद्ध होना कहा जा सकता है के विरुद्ध ही कार्रवाई की जानी चाहिए ।"

17. ऐसा उल्लेख करते हुए, न्यायालय ने पूर्वोक्त तर्क का समर्थन प्राप्त करने के लिए अधिनियम की धारा 145 की उपधारा (2) का अवलंब लिया क्योंकि उक्त उपधारा अपराध के किए जाने में कंपनी के किसी निदेशक, प्रबंधक, सचिव या अन्य अधिकारी के सीधे अंतर्वलित होने की परिकल्पना करती है । न्यायालय ने आगे यह मत व्यक्त किया कि उक्त उपबंध तब प्रवर्तित होता है जब विचारण में यह साबित हो जाता है कि अपराध सहमति या मौनानुकूलता से किया गया है या कंपनी के किसी पदधारक की ओर से उपेक्षा किया गया समझा जाता है । यह भी मत व्यक्त किया गया है कि उपबंध निदेशक, प्रबंधक, सचिव या कंपनी के अन्य अधिकारियों को उनके साबित अंतर्वलन के मामलों में उन्हें बचाने के लिए किया गया है । यह इसलिए है क्योंकि ऐसा व्यक्ति जो कंपनी के कारबार के संचालन के लिए प्रभारी और उत्तरदायी है, स्वाभाविकतः यह

जानता है कि क्योंकि प्रश्नगत चेक जारी किया गया था और यह क्यों अनादृत हो गया और साथ ही साथ इसका यह अभिप्राय है कि कंपनी से जुड़े किसी अन्य व्यक्ति को अधिनियम की धारा 141 के अधीन दायी नहीं बनाया गया है । तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ की राय के अनुसार दायित्व किसी अधिकारी की ओर से आचरण कार्य या लोप के कारण उद्भूत होता है न कि कंपनी में कोई पद या हैसियत धारित करने मात्र से अतः, अधिनियम की धारा 141 के अधीन कोई मामला लाने के लिए परिवाद में आवश्यक तथ्य होने चाहिए जो व्यक्ति को दायी बनाते हों । उक्त मामले में न्यायालय ने **सिकंदराबाद हेल्थ केयर लि.** बनाम **सिकंदराबाद होस्पिटल (प्रा.) लि.**[1], **वी. सुधीर रेड्डी** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[2], **आर. कानन** बनाम **कोटक महिन्द्रा फाइनेंस लि.**[3], **लोक हाउसिंग एंड कंस्ट्रक्शन्स लि.** बनाम **वी. रघुपति लिजिंग एंड फाइनेंस लि.**[4], **सुनील कुमार छपरिया** बनाम **डक्का ईश्वरय्या**[5], **हरियाणा राज्य** बनाम **बृज लाल मित्तल**[6], **के. पी. जी. नायर** बनाम **जिंदल मेंथॉल इंडिया लि.**[7], **कट्टा सुजाता** बनाम **फर्टिलाइजर एंड केमिकल्स त्रावणकोर लि.**[8] वाले मामलों के विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया और अंततः इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "अधिनियम की धारा 141 के अधीन दायित्व स्वयं कंपनी मुख्य अभियुक्त होते हुए कंपनी से जुड़े व्यक्ति पर प्रतिनिधायी रूप से दृढ़ किया जाना ईप्सित है । यह प्रतिनिधिक दायित्व के विरुद्ध दंड विधि के नियम से विपथन है । दायित्वाधीन ठहराए जाने के ईप्सित व्यक्ति के विरुद्ध परिवाद में स्पष्ट मामले का उल्लेख होना चाहिए । अधिनियम की धारा 141 में उक्त उपबंध के अधीन दायी व्यक्ति बनाने के लिए अपेक्षाओं का उल्लेख है । यह कि प्रत्यर्थी धारा 141 के मापमान के भीतर आता है का वर्णन होना चाहिए । परिवाद में वर्णित प्रकथनों के आधार पर पहली नजर में ही मजिस्ट्रेट द्वारा

---

[1] (1999) 96 कंपनी केस 106 (आंध्र प्रदेश).
[2] (2000) 107 कंपनी केस 107 (आंध्र प्रदेश).
[3] (2003) 115 कंपनी केस 321 (मद्रास).
[4] (2003) 115 कंपनी केस 957 (दिल्ली).
[5] (2002) 108 कंपनी केस 687 (आंध्र प्रदेश).
[6] (1998) 5 एस. सी. सी. 343.
[7] (2001) 10 एस. सी. सी. 218.
[8] (2002) 7 एस. सी. सी. 655.

परिवाद की परीक्षा की जानी चाहिए । यदि मजिस्ट्रेट का यह समाधान हो जाता है कि ऐसे प्रकथन हैं जो मामले को धारा 141 के भीतर लाते हैं तो वह आदेशिका जारी करेगा । हमने यह पाया है कि मात्र कंपनी में निदेशक के रूप में उल्लेख होना धारा 141 की अपेक्षा को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं है । यहां तक कि गैर निदेशक भी अधिनियम की धारा 141 के अधीन दायी हो सकता है । परिवाद के प्रकथन उस प्रयोजन को पूरा करेंगे कि दायी ठहराए जाने के लिए ईप्सित व्यक्ति यह जानता है कि मामला क्या है जिसका अभिकथन उसके विरुद्ध किया गया है । यह विचारण में मामले का उत्तर देने के लिए उसे समर्थ बनाएगा ।"

18. पूर्वोक्त विश्लेषण के आधार पर न्यायालय ने इस संबंध में यह निष्कर्ष निकाला कि :–

"धारा 141 के अधीन परिवाद में विनिर्दिष्ट रूप से यह प्रकथन करना आवश्यक है कि उस समय जब अपराध किया गया था, अभियुक्त व्यक्ति कंपनी के कारबार के संचालन का प्रभारी और उत्तरदायी था । यह प्रकथन धारा 141 की आवश्यक अपेक्षा है और परिवाद में किया जाना चाहिए । परिवाद में ऐसा प्रकथन किए जाने के बिना, धारा 141 की अपेक्षाओं का पूरा होना नहीं कहा जा सकता ।"

19. तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा निर्देश का उत्तर दिए जाने के पश्चात्, मामला दो न्यायाधीशों के न्यायपीठ के समक्ष प्रस्तुत किया गया । दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **एस. एम. एस. फार्मास्यूटिकल्स लि.** बनाम **नीता भल्ला और अन्य**[1] (इसे इसमें इसके पश्चात् 'एस. एम. एस. फार्मा-II' कहा गया है) वाले मामले की सुनवाई करते हुए **सबिता राममूर्ति** बनाम **आर. बी. एस. चन्नाबसवराध्या**[2] वाले मामले के एक पैराग्राफ को दोहराया जो इस प्रकार है :–

"7. परिवाद अर्जियों के परिशीलन मात्र से यह प्रकट होता है कि परक्राम्य लिखत अधिनियम की धारा 141 की कानूनी अपेक्षाओं का पालन नहीं किया गया था । यह सत्य हो सकता है कि परिवादी के लिए धारा के शब्दों को विनिर्दिष्ट रूप से दोहराना आवश्यक नहीं

---

[1] (2007) 4 एस. सी. सी. 70.

[2] (2006) 10 एस. सी. सी. 581.

है किंतु जो अपेक्षित है वह यह है कि तथ्य का स्पष्ट कथन हो जिससे न्यायालय प्रथमदृष्ट्या यह राय बनाने में समर्थ हो कि अभियुक्त प्रतिनिधायी रूप से दायी है । धारा 141 एक विधिक कल्पना पैदा करती है । उक्त उपबंध के आधार पर, व्यक्ति यद्यपि ऐसे अपराध के किए जाने के लिए व्यक्तिगत रूप से दायी नहीं है किंतु वह उसके लिए प्रतिनिधायी रूप से दायी होगा । जहां तक कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन रजिस्ट्रीकृत या निगमित कंपनी का संबंध है ऐसे प्रतिनिधिक दायित्व का निष्कर्ष तभी निकाला जा सकता है जब अपेक्षित कथन जिनका परिवाद अर्जी में प्रकथन किया जाना अपेक्षित है, किए जाएं जिससे कि उसमें अभियुक्त को कंपनी द्वारा किए गए अपराध के लिए प्रतिनिधिक रूप से दायी बनाया जा सके । व्यक्ति को प्रतिनिधिक रूप से दायी बनाए जाने के पूर्व, कानूनी अपेक्षाओं के कठोर पालन पर बल दिया जाना चाहिए ।"

20. इसके पश्चात् न्यायालय ने **सरोज कुमार पोद्दार** बनाम **राज्य (दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र) और एक अन्य**[1] वाले मामले की नज़ीर को निर्दिष्ट किया और उन मताभिव्यक्तियों का उल्लेख किया जिसे हम दोहराना उचित समझते हैं :–

"14. यहां इसमें इसके पूर्व उल्लेख के अनुसार कंपनी और अपीलार्थी के अलावा, प्रबंध निदेशक और सभी अन्य निदेशकों को भी अभियुक्त बनाया गया है । अपीलार्थी ने कोई चेक जारी नहीं किया था । इसमें पूर्व उल्लेख के अनुसार, उसने कंपनी के निदेशक पद से पद त्याग कर दिया था । यह सही है कि ठीक किस तारीख को कंपनी द्वारा उक्त पद त्याग स्वीकार किया गया था ज्ञात नहीं है किंतु अन्यथा भी परिवाद अर्जियों में ऐसा कोई प्रकथन नहीं है कि कैसे और किस रीति से अपीलार्थी कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उत्तरदायी या अपने क्रियाकलाप के संबंध में उसके प्रति अन्यथा उत्तरदायी था । उसने कोई चेक जारी नहीं किया था । वह कैसे चेक के अनादरण के लिए उत्तरदायी है, का उल्लेख नहीं किया गया है । इस प्रकार, हमारी राय, में पैरा 3 में किए गए अभिकथन अधिनियम की धारा 141 की अपेक्षाओं को पूरा नहीं करते ।"

21. उक्त मताभिव्यक्तियों को यह उल्लेख करते हुए स्पष्ट किया

---

[1] (2007) 3 एस. सी. सी. 693.

गया था :–

> "26. एक कमजोर सुझाव दिया गया कि **सरोज कुमार पोद्दार** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह विधि अधिकथित की कि परिवाद अर्जी में न केवल अधिनियम की धारा 141 की अपेक्षाओं को पूरा करने वाले प्रकथन होने चाहिए बल्कि यह भी साबित किया जाना चाहिए कि कैसे और किस रीति से अपीलार्थी कंपनी के कारबार के संचालन के लिए उत्तरदायी या अन्यथा अपने कार्यक्रम के संबंध में उसके प्रति उत्तरदायी था । उक्त निर्णय के सामान्य पठन से यह दर्शित होता है कि उसमें ऐसी कोई सामान्य विधि अधिकथित नहीं की गई थी । मताभिव्यक्तियां उक्त मामले के संदर्भ में की गई थीं क्योंकि यह इस दलील के संबंध में था कि यद्यपि उक्त मामले के अपीलार्थी के विरुद्ध अधिनियम की धारा 141 की अपेक्षाओं को पूरा करते हुए कोई प्रत्यक्ष प्रकथन नहीं किया गया था किंतु ऐसे अन्य प्रकथन किए गए थे जो यह साबित करते थे कि इसमें अपीलार्थी उसके लिए दायी था ।"

22. उक्त स्पष्टीकरण को **एवरेस्ट एडवरटाइजिंग (प्रा.) लि.** बनाम **राज्य, दिल्ली राष्ट्रीय राजधानी राज्य क्षेत्र सरकार और अन्य**[1] वाले मामले में दोहराया गया ।

23. उक्त मामले में परिवाद के प्राख्यानों का उल्लेख करते हुए जो वस्तुतः अस्पष्ट थे, न्यायालय ने उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश में हस्तक्षेप करने से इनकार किया जिसकी यह राय थी कि परिवादी ने अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध अपराध के किए जाने का प्रकटन नहीं किया था ।

24. यह उल्लेखनीय है कि **सरोज कुमार पोद्दार** (उपरोक्त) में व्यक्त मताभिव्यक्तियों और **एस. एम. एस. फार्मा-II** (उपरोक्त) और **एवरेस्ट एडवरटाइजिंग (प्रा.) लि.** (उपरोक्त) में दिए गए स्पष्टीकरण का उल्लेख **के. के. आहूजा** बनाम **वी. के. बोरा और एक अन्य**[2] वाले मामले में किया गया था । उक्त मामले में, न्यायालय ने अधिनियम की धारा 141 के अधीन स्थिति को स्पष्ट करते हुए इस प्रकार कहा :–

> "अधिनियम की धारा 141 के अधीन स्थिति को संक्षेप में इस

---

[1] (2007) 5 एस. सी. सी. 54.

[2] (2009) 10 एस. सी. सी. 48.

प्रकार कहा जा सकता है :–

(i) यदि अभियुक्त प्रबंध निदेश या संयुक्त प्रबंध निदेशक है, तो परिवाद में यह प्रकथन करना आवश्यक नहीं है कि वह कंपनी के कारबार के संचालन के लिए प्रभारी है और कंपनी के प्रति उत्तरदायी है । यही पर्याप्त है यदि यह प्रकथन किया गया है कि अभियुक्त सुसंगत समय पर प्रबंध निदेशक या संयुक्त प्रबंध निदेशक था । यह इस कारण है क्योंकि 'निदेशक' शब्द के पूर्व 'प्रबंध' उपसर्ग यह स्पष्ट करता है कि वे कंपनी के कारबार के संचालन के लिए प्रभारी और कंपनी के प्रति उत्तरदायी हैं ।

(ii) निदेशक या कंपनी के ऐसे अधिकारी की दशा में जिसने कंपनी की ओर से चेक पर हस्ताक्षर किए थे, यह विनिर्दिष्ट कथन करना आवश्यक नहीं है कि वह कंपनी के कारबार के संचालन के लिए प्रभारी था और कंपनी के प्रति उत्तरदायी था या सहमति, मौनानुकूलता या उपेक्षा से कार्य किया था । यह तथ्य ही कि अनादृत चेक पर कंपनी की ओर से उसके द्वारा हस्ताक्षर किया गया था, धारा 141 की उपधारा (2) के अधीन उसे उत्तरदायी बनाता है ।

(iii) निदेशक, सचिव या प्रबंधक [कंपनी अधिनियम की धारा 2(24) में यथा परिभाषित] या कंपनी अधिनियम की धारा 5 के खंड (ङ) और (च) में निर्दिष्ट व्यक्ति की दशा में परिवाद का यह प्रकथन कि वह कंपनी के कारबार के संचालन के लिए प्रभारी था और कंपनी के प्रति उत्तरदायी था, मामले को अधिनियम की धारा 141(1) के अधीन लाने के लिए आवश्यक है । परिवाद में किसी अतिरिक्त प्रकथन की आवश्यकता नहीं होगी यद्यपि कुछ विशिष्टियां वांछनीय होंगी । परिवाद में उस उपधारा के अधीन मामले को लाने के लिए सहमति और मौनानुकूलता या उपेक्षा से संबंधित आवश्यक प्रकथन कर धारा 141(2) के अधीन उन्हें भी दायी बनाया जा सकता है ।

(iv) कंपनी के अन्य अधिकारियों को धारा 141 की उपधारा (1) के अधीन दायी बनाया जा सकता है । कंपनी के

अन्य अधिकारियों को परिवाद में कंपनी में उनकी हैसियत और कर्तव्य तथा सहमति, मौनानुकूलता या उपेक्षा को प्रकट करते हुए चेक के जारी किए जाने और अनादरण के संबंध में उनकी भूमिका का उल्लेख करते हुए धारा 141(2) के अधीन ही दायी बनाया जा सकता है ।"

25. **हरमीत सिंह पेंटल** (उपरोक्त) वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ अपीलार्थी के आधार से सहमत नहीं हुई और प्रकथनों पर बल दिया तथा यह पाया कि परिवाद अर्जी में कोई विनिर्दिष्ट प्रकथन नहीं किए गए थे और तद्नुसार उसमें अपीलार्थी-निगम द्वारा फाइल अपील को खारिज कर दिया । न्यायालय ने निर्णय के पैराग्राफ 17 और 18 में परिवाद के भाग को दोहराया । हमने सावधानीपूर्वक दावा अर्जी के उक्त प्रकथनों का परिशीलन किया और हमारी यह राय है कि इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि उसमें किए गए प्राख्यान अधिनियम की धारा 141 की अपेक्षाओं को पूरा नहीं करते ।

26. **ए. के. सिंघानिया** (उपरोक्त) वाले मामले में, पूर्व निर्णयों को निर्दिष्ट करते हुए न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकाला कि यह अनुमान लगाना कठिन था कि ऐसा कोई प्रकथन था कि ऐसे दो अभियुक्त व्यक्ति जो इस न्यायालय के समक्ष आए थे, अपराध किए जाने के समय कंपनी के कारबार के संचालन के लिए प्रभारी और उत्तरदायी थे । संक्षेपतः परिवादों में यह अभिकथन था कि कंपनी के कारबार और वित्तीय क्रियाकलापों का विनिश्चय, व्यवस्थापन और प्रशासन अन्य निदेशकों के साथ-साथ अभियुक्त व्यक्तियों द्वारा किया जाया करता था ।

27. **गुनमाला सेल्स प्रा. लि.** (उपरोक्त) वाले मामले में न्यायालय को उन निदेशकों के संबंध में विचार करना था जिन्होंने चेक जारी किए थे । जैसाकि हमने उल्लेख किया है, इस नज़ीर को ठीक ढंग से समझा जाना चाहिए । दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने **एस. एम. एस फार्मा-II** (उपरोक्त) और अन्य पूर्व विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया और यह अभिनिर्धारित किया कि :–

"30. इस मामले में जब कोई अर्जी आदेशिका को अभिखंडित करने के लिए फाइल की जाती है तो परिवाद को समग्र रूप से पढ़कर उच्च न्यायालय यह निष्कर्ष निकाल सकता है कि आधारभूत प्रकथन पर्याप्त है और निदेशक के विरुद्ध मामला बनता है ; यह कि

यह इंगित करने के लिए कोई बात नहीं है कि निदेशक के विरुद्ध अभिकथन का तत्व नष्ट हो गया है जो आधारभूत प्रकथन को पर्याप्त बनाता है और यह कि चूंकि उसके विरुद्ध अपराध बनता है इसलिए उसकी आगे की भूमिका को विचारण में लाया जा सकता है । एक अन्य मामले में उच्च न्यायालय आधारभूत प्रकथन के बावजूद परिवाद को अभिखंडित कर सकता है । कुछ ऐसे अकाट्य साक्ष्य या स्वीकार्य परिस्थितियां हो सकती हैं जो उसकी राय में यह निष्कर्ष निकालती हों कि निदेशक सुसंगत समय पर कंपनी के कारबार के संचालन के लिए कभी प्रभारी या उत्तरदायी नहीं हो सकता है अतः उसके विरुद्ध विचारण किया जाना न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा क्योंकि उसके विरुद्ध कोई अपराध नहीं बनता है ।

31. जब आधारभूत प्रकथन के कारण आदेशिका जारी की जाती है तो निदेशकों के विरुद्ध परिवाद में आगे कार्यवाही की जानी चाहिए । किंतु यदि कोई निदेशक इस आधार पर संहिता की धारा 482 के अधीन अर्जी फाइल कर आदेशिका को अभिखंडित कराना चाहता है कि परिवाद में केवल सारहीन प्रकथन किए गए हैं और वस्तुतः उसका चेक के जारी किए जाने से कुछ लेना-देना नहीं है तो उसे अपनी दलील को सिद्ध करने के लिए कुछ विश्वस्त अकाट्य सामग्री या स्वीकार्य परिस्थितियां प्रस्तुत कर आदेशिका को अभिखंडित करने के लिए उच्च न्यायालय को अवगत कराना चाहिए । उसे ऐसा पक्षकथन प्रस्तुत करना चाहिए कि उसका विचारण करने से न्यायालय की प्रक्रिया का दुरुपयोग होगा । वह मात्र इस आधार पर परिवाद को अभिखंडित नहीं करा सकता है कि मूलभूत प्रकथन के अलावा उसकी भूमिका के बारे में परिवाद में कोई विशिष्टियां नहीं दी गई हैं क्योंकि सामान्यतः आधारभूत प्रकथन उसका विचारण करने के लिए पर्याप्त होते हैं और यह तर्क किया जा सकता है कि उसकी अगली भूमिका को विचारण में स्पष्ट किया जाए । परिवाद का अभिखंडित किया जाना एक गंभीर विषय है । परिवाद को याचना पर अभिखंडित नहीं किया जा सकता । किसी परिवाद को अभिखंडित करने के लिए यह दर्शित किया जाना चाहिए कि निदेशक के विरुद्ध कतई कोई अपराध नहीं बनता है ।

(बल देने के लिए रेखांकन किया गया ।)

28. ऐसा उल्लेख करते हुए, न्यायालय ने परिवाद अर्जी में किए गए प्रकथनों का मूल्यांकन करते हुए अपने निष्कर्षों को संक्षेप में लिखने के लिए आगे कार्यवाही की और इस प्रकार मत व्यक्त किया है :–

> ".....प्रासंगिकतः, प्रत्यर्थियों द्वारा फाइल किए गए आवेदन में कोई अकाट्य या अनिन्द्य साक्ष्य जो किसी संदेह से परे है या कोई बिल्कुल स्वीकार्य परिस्थिति है, को निर्दिष्ट कर या पेश कर कोई स्पष्ट मामला नहीं बनाया गया है कि तात्विक समय पर, निदेशक कंपनी के कारबार के संचालन के प्रभारी या उसके लिए उत्तरदायी नहीं थे । मात्र यह कहा गया है कि सिद्धार्थ मेहता ने तारीख 30 दिसंबर, 2010 को कंपनी के निदेशक पद से त्यागपत्र दे दिया था, किंतु कोई अकाट्य या अनिन्द्य साक्ष्य उच्च न्यायालय के समक्ष पेश नहीं किया गया जैसा कि **अनीता मल्होत्रा** [(2012) 1 एस. सी. सी. 520] वाले मामले में यह दर्शित करने के लिए किया गया था कि वस्तुतः उसने प्रश्नगत चेक जारी करने के काफी पहले पद त्याग कर दिया था । **कन्हैया लाल मेहता और अनु मेहता** का मामला भी एक जैसा है । इस दलील को सिद्ध करने के लिए कुछ पेश नहीं किया गया कि वे सुसंगत समय पर कंपनी के कारबार के संचालन के लिए प्रभारी या उत्तरदायी नहीं थे । इन परिस्थितियों में, हमारी यह राय है कि मामला नए सिरे से सुनवाई किए जाने के लिए उच्च न्यायालय को प्रतिप्रेषित किए जाने योग्य है । तथापि, हम शोभा मेहता के विरुद्ध आदेशिका अभिखंडित करते हुए उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश की पुष्टि करते हैं । यह बताया गया है कि शोभा मेहता एक वृद्ध महिला है जिनकी आयु 70 वर्ष से अधिक है । इस तथ्य पर विचार करने और मामले के विशिष्ट तथ्यों और परिस्थितियों में परिवाद का समग्र परिशीलन करने के पश्चात् हम यह महसूस करते हैं कि उसके विरुद्ध विचारण जारी रखना न्यायालय की आदेशिका का दुरुपयोग होगा । तथापि, उच्च न्यायालय के लिए हमारे द्वारा विचार किए गए निर्णयों और इस निर्णय में हमारे द्वारा निकाले गए निष्कर्षों के आलोक में अन्य निदेशकों के मामलों पर विचार करना आवश्यक है ।"

29. हमने पूर्वोक्त विनिश्चय को विस्तार से निर्दिष्ट किया क्योंकि हमारी यह विचारित राय है कि उसमें किया गया विश्लेषण हूबहू प्रस्तुत

मामले को लागू होता है और यह तब स्पष्ट होगा जब हम परिवाद के कुछ पैराग्राफों को दोहराएंगे ।

30. इसके पूर्व, हमारे लिए **तमिलनाडु न्यूज प्रिंट एंड पेपर्स लि.** बनाम **डी. करुणाकर और अन्य**[1] वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय को निर्दिष्ट करना लाभप्रद होगा । उक्त मामले में, न्यायालय ने **एस. एम. एस. फार्मा-II** (उपरोक्त) वाले मामले में दिए गए विनिश्चय को विनिर्दिष्ट किया और इसके पश्चात् परिवाद में किए गए प्रकथनों पर ध्यान दिया । यह उल्लेखनीय है कि उक्त मामले में परिवाद अर्जी में यह प्रकथन किया गया था कि अभियुक्त सं. 2 से 9 निदेशक थे और अभियुक्त कंपनी के दैनिक प्रबंधन से जुड़े थे और उस संदर्भ में न्यायालय ने इस प्रकार मत व्यक्त किया :–

> "परिवाद के परिशीलन के पश्चात्, हम यह पाते हैं कि इस आशय का प्रकथन किया गया है कि अभियुक्त सं. 3 से 10 वस्तुतः अभियुक्त सं. 1-कंपनी के दैनिक कारबार के प्रभारी थे ।"

31. हमने इन विनिश्चयों को निर्दिष्ट किया क्योंकि वे सुस्पष्टतः विधि के विकास का उल्लेख करते हैं और अधिनियम की धारा 141 के अधीन उत्तरदायी व्यक्तियों के प्रतिनिधिक दायित्व से संबंधित परिवाद अर्जी में किए गए प्रकथनों पर विचार करते हुए अभिखंडित करने की शक्ति का प्रयोग करते समय उच्च न्यायालय के कर्तव्य का भी अभिकथन करते हैं ।

32. अब परिवाद की बारीकी से जांच करने का समय आ गया है । अपीलार्थी बैंक की ओर से उपस्थित विद्वान् वरिष्ठ काउंसेल श्री दीवान ने हमारा ध्यान परिवाद अर्जी के पैराग्राफ 2, 4 और 10 की ओर आकृष्ट किया । यह इस प्रकार है :–

> "2. मेरा आगे यह कहना है कि मैं उपरोक्त नामित अभियुक्त को जानता हूं । अभियुक्त सं. 1 कंपनी अधिनियम, 1956 के अधीन एक निगमित कंपनी है और इसका रजिस्ट्रीकृत पता है जो वाद में वर्णित है । अभियुक्त सं. 2 से 7 अध्यक्ष, प्रबंध निदेशक, कार्यपालक निदेशक और पूर्णकालिक निदेशक हैं और क्रमशः अभियुक्त सं. 1 के प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ता हैं । इस प्रकार, अध्यक्ष, प्रबंध निदेशक,

---

[1] (2015) 8 स्केल 733.

कार्यपालक निदेशक और पूर्णकालिक निदेशक अभियुक्त सं. 1 के दैनिक कारबार के लिए व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी और प्रभारी थे जब अपराध किया गया । अभियुक्त सं. 6 और 7 चेक के हस्ताक्षरकर्ता होने के कारण संव्यवहार से भिज्ञ हैं अतः अभियुक्त सं. 2 से 7 अध्यक्ष, प्रबंध निदेशक, कार्यपालक निदेशक, पूर्णकालिक निदेशक और अभियुक्त सं. 1 के प्राधिकृत हस्ताक्षरकर्ता के रूप में अपनी हैसियत में वर्तमान अपराध के किए जाने में सहमति देने और/या मौनानुकूलता देने के लिए संयुक्ततः या पृथक्तः अभियोजित किए जाने के दायी हैं । इसके अतिरिक्त अपराध अभियुक्त सं. 1 द्वारा जारी चेक के भुगतान किए जाने को सुनिश्चित करने और पर्याप्त व्यवस्था करने की अपनी उपेक्षा के कारण अभियुक्त सं. 2 से 7 द्वारा अपराध किया गया समझा गया है और इसके आगे नियत अवधि के भीतर परक्राम्य लिखित अधिनियम की धारा 138(क) के उपबंधों के अधीन जारी मांग नोटिस में की गई अपेक्षा का पालन करने में अभियुक्त सं. 1 से 7 अपनी उपेक्षा के कारण अपराध करने के दायी हैं । अतः, अभियुक्त कार्यवाही आरंभ किए जाने के दायी हैं ।

* * * * *

4. मेरा यह कथन है कि अभियुक्त सं. 1 ने अभियुक्त सं. 2 और 3 के माध्यम से शिकायतकर्ता बैंक की मुंबई स्थित शाखा में ए.पी.जी. शिपयार्ड में बने चार ओ.आर.बी. यान के खर्च को पूरा करने के लिए 200 करोड़ रुपए की रकम के लिए अल्प अवधि ऋण सुविधा के लिए संपर्क किया । प्रस्तुत दस्तावेजों के सत्यापन के पश्चात् परिवादी बैंक ने 28 अप्रैल, 2012 के अपनी मंजूरी पत्र द्वारा उसमें वर्णित प्रयोजन के लिए उक्त सुविधा की मंजूरी दी । 28 अप्रैल, 2012 की मंजूरी पत्र में वर्णित उक्त निबंधनों और शर्तों को उस पर हस्ताक्षर कर अभियुक्त सं. 1 द्वारा सम्यक् रूप से स्वीकार किया गया । अभियुक्त सं. 1 ने भी परिवादी बैंक द्वारा समझौता किए गए दर पर ब्याज देने की सहमति दी । 28 अप्रैल, 2012 की उक्त मंजूरी पत्र की प्रति प्रदर्श 'ख' के रूप में चिन्हित होते हुए इसके साथ उपाबद्ध है ।

* * * * *

10. मेरा यह कहना है कि अभियुक्त सं. 1 से 7 यह जानते थे कि पूर्वोक्त चेक 'खाता बंद कर दिया गया' होने के कारण अनादृत हो जाएंगे और सभी अभियुक्तों ने परिवादी बैंक के पक्ष में पूर्वोक्त चेक रिष्टिकर और साशय सक्रिय मौनानुकूलता से जारी की थी ।"

33. हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि पूर्वोक्त प्रकथन स्पष्टतः अपेक्षित कसौटी को पूरा करते हैं । यहां यह उल्लेख करना प्रासंगिक है कि यहां 7 अभियुक्त व्यक्ति हैं । अभियुक्त सं. 1 कंपनी, अभियुक्त सं. 2 और 3 क्रमशः अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक और अभियुक्त सं. 6 और 7 चेक के हस्ताक्षरकर्ता थे । जहां तक अभियुक्त सं. 4 और 5 का संबंध है वे पूर्णकालिक निदेशक थे और प्राख्यान यह है कि वे कंपनी के दैनिक कारबार के प्रभारी थे और सभी लोगों ने सक्रिय मौनानुकूलता, रिष्टि और साशय प्रश्नगत चेक जारी किए ।

34. इस प्रकार, परिवाद में किए गए संपूर्ण प्राख्यानों पर विचार करते हुए और इसमें प्रत्यर्थी सं. 2 और 3 से संबंधित प्रकथनों पर ध्यान देते हुए भी कि वे पूर्णकालिक निदेशक और कार्यपालक निदेशक हैं और वे कंपनी के दैनिक क्रियाकलाप के प्रभारी थे, हमारी यह विचारित राय है कि उच्च न्यायालय ने यह निष्कर्ष निकालते हुए घोर त्रुटि की कि उक्त अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध समन जारी करने के लिए परिवाद में कोई विनिर्दिष्ट प्रकथन नहीं है । हम बिना हिचकिचाहट के यह अभिनिर्धारित करते हैं कि **गुनमाला सेल्स प्रा. लि.** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित कसौटी को पूरा करने के लिए परिवाद में पर्याप्त दृढ़ कथन है ।

35. परिणामतः, अपीलें मंजूर की जाती हैं और उच्च न्यायालय द्वारा पारित आदेश अपास्त किया जाता है । विद्वान् मजिस्ट्रेट से विधि के अनुसार परिवाद मामलों में आगे कार्यवाही करने का निदेश दिया जाता है ।

अपीलें मंजूर की गईं ।

पा.

बलराम यादव

बनाम

फूलमनिया यादव

27 अप्रैल, 2016

न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ और न्यायमूर्ति रोहिंटन फाली नरीमन

कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (1984 का 66) – धारा 7, 8 और 20 – कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता – वैध रूप से विवाहित पत्नी न होने की घोषणा के लिए कुटुम्ब न्यायालय में वाद फाइल किया जाना – वाद डिक्री किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा कुटुम्ब न्यायालय को नकारात्मक घोषणा की अधिकारिता के अभाव के आधार पर अपील मंजूर किया जाना – यदि किसी व्यक्ति की वैवाहिक प्रास्थिति पर कोई विवाद है, तो उस बाबत घोषणा की ईप्सा केवल कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष की जानी चाहिए और इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह सकारात्मक अनुतोष के लिए है या नकारात्मक अनुतोष के लिए ।

अपीलार्थी ने कुटुम्ब न्यायालय, अम्बिकापुर, सरगुजा, छत्तीसगढ़ के समक्ष एक सिविल वाद इस आशय की घोषणा करने की ईप्सा करते हुए संस्थित किया कि प्रत्यर्थी उसकी वैध रूप से विवाहित पत्नी नहीं है । तारीख 28 दिसम्बर, 2013 के निर्णय द्वारा यह घोषणा करते हुए सिविल वाद डिक्री किया गया कि प्रत्यर्थी अपीलार्थी की वैद्य रूप से विवाहित पत्नी नहीं है । प्रत्यर्थी ने व्यथित होकर उच्च न्यायालय, छत्तीसगढ़ के समक्ष समावेदन किया । उच्च न्यायालय ने तारीख 14 जनवरी, 2015 के आक्षेपित आदेशानुसार यह अभिनिर्धारित करते हुए अपील मंजूर की कि कुटुम्ब न्यायालय को मामले पर विचार करने की अधिकारिता नहीं थी क्योंकि नकारात्मक घोषणा कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता के बाहर है । उच्च न्यायालय के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 की धारा 7(1) के स्पष्टीकरण (ख) के अधीन, किसी व्यक्ति के विवाह और उसकी वैवाहिक प्रास्थिति दोनों की विधिमान्यता की घोषणा के लिए कोई वाद या कार्यवाही संस्थित करना कुटुम्ब न्यायालय की अनन्य अधिकारिता के भीतर आते हैं

चूंकि धारा 8 के अधीन उन सभी अधिकारिताओं को, जो धारा 7 के अधीन आती हैं, सिविल न्यायालयों की अधिकारिता के कार्यक्षेत्र से अपवर्जित किया गया है । यदि किसी व्यक्ति की वैवाहिक प्रास्थिति पर कोई विवाद है, तो उस बाबत घोषणा की ईप्सा केवल कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष की जानी चाहिए । इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह सकारात्मक अनुतोष के लिए है या नकारात्मक अनुतोष के लिए । जो बात महत्वपूर्ण है वह है वैवाहिक प्रास्थिति के संबंध में घोषणा । जो मत न्यायालय ने अपनाया है, उसकी पुष्टि धारा 20 से भी होती है चूंकि कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 का अन्य विधियों पर अध्यारोही प्रभाव है । (पैरा 7)

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की सिविल अपील सं. 4500.

2014 की प्रथम अपील सं. 12 में छत्तीसगढ़ उच्च न्यायालय, बिलासपुर के तारीख 14 जनवरी, 2015 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री डा. राजेश पांडे, बी. एन. पटेल और नितिन भारद्वाज

प्रत्यर्थी की ओर से श्री अपूर्व त्रिपाठी और सुश्री मंजू शर्मा जेटली

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ ने दिया ।

न्या. जोसेफ – इजाजत दी गई ।

अपीलार्थी ने कुटुम्ब न्यायालय, अम्बिकापुर, सरगुजा, छत्तीसगढ़ के समक्ष एक सिविल वाद इस आशय की घोषणा करने की ईप्सा करते हुए संस्थित किया कि प्रत्यर्थी उसकी वैध रूप से विवाहित पत्नी नहीं है । तारीख 28 दिसम्बर, 2013 के निर्णय द्वारा यह घोषणा करते हुए सिविल वाद डिक्री किया गया कि प्रत्यर्थी अपीलार्थी की वैद्य रूप से विवाहित पत्नी नहीं है ।

2. प्रत्यर्थी ने व्यथित होकर उच्च न्यायालय, छत्तीसगढ़ के समक्ष समावेदन किया । उच्च न्यायालय ने तारीख 14 जनवरी, 2015 के आक्षेपित आदेशानुसार यह अभिनिर्धारित करते हुए अपील मंजूर की कि कुटुम्ब न्यायालय को मामले पर विचार करने की अधिकारिता नहीं थी । उच्च न्यायालय के अनुसार, नकारात्मक घोषणा कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता के बाहर है ।

3. पक्षकारों के विद्वान् काउंसेलों को सुना ।

4. कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 (जिसे आगे संक्षेप में "अधिनियम" कहा गया है) की धारा 7 कुटुम्ब न्यायालयों की अधिकारिता के संबंध में है, जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

"अधिकारिता – (1) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए,–

(क) कुटुम्ब न्यायालय को, स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट प्रकृति के वादों और कार्यवाहियों की बाबत, तत्समय प्रवृत्त किसी विधि के अधीन किसी जिला न्यायालय या किसी अधीनस्थ सिविल न्यायालय द्वारा प्रयोक्तव्य पूर्ण अधिकारिता होगी और वह उसका प्रयोग करेगा,

(ख) कुटुम्ब न्यायालय के बारे में, ऐसी विधि के अधीन ऐसी अधिकारिता का प्रयोग करने के प्रयोजनों के लिए, यह समझा जाएगा कि वह ऐसे क्षेत्र के लिए, जिस पर कुटुम्ब न्यायालय की अधिकारिता का विस्तार है, यथास्थिति, जिला न्यायालय या अधीनस्थ सिविल न्यायालय है ।

स्पष्टीकरण – इस उपधारा में निर्दिष्ट वाद और कार्यवाहियां निम्नलिखित प्रकृति के वाद और कार्यवाहियां हैं, अर्थात् –

(क) किसी विवाह के पक्षकारों के बीच (विवाह को, यथास्थिति, अकृत और शून्य घोषित करने के लिए या विवाह को बातिल करने के लिए) विवाह की अकृतता या दाम्पत्य अधिकारों के प्रत्यास्थापन या न्यायिक पृथक्करण या विवाह के विघटन की डिक्री के लिए कोई वाद या कार्यवाही ;

(ख) किसी व्यक्ति के विवाह की विधिमान्यता के बारे में या उसकी वैवाहिक प्रास्थिति के बारे में घोषणा के लिए कोई वाद या कार्यवाही ;

(ग) किसी विवाह के पक्षकारों के बीच ऐसे पक्षकारों की या उनमें से किसी की सम्पत्ति की बाबत कोई विवाद या कार्यवाही ;

(घ) किसी वैवाहिक संबंध से उत्पन्न परिस्थितियों के किसी आदेश या व्यादेश के लिए कोई वाद या कार्यवाही ;

(ङ) किसी व्यक्ति के धर्मजत्व के बारे में किसी घोषणा के लिए कोई वाद या कार्यवाही ;

(च भरणपोषण के लिए कोई वाद या कार्यवाही ;

(छ) किसी व्यक्ति की संरक्षकता अथवा किसी अवयस्क की अभिरक्षा या उस तक पहुंच के संबंध में कोई वाद या कार्यवाही ।

(2) इस अधिनियम के अन्य उपबंधों के अधीन रहते हुए किसी कुटुम्ब न्यायालय को –

(क) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन (जो पत्नी, संतान और माता-पिता के भरणपोषण के लिए आदेश के संबंध में है) कीस प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट को प्रयोक्तव्य अधिकारिता ; और

(ख) ऐसी अन्य अधिकारिता, जो किसी अन्य अधिनियमिति द्वारा उसको प्रदत्त की जाए,

भी होगी और वह उसका प्रयोग करेगा ।"

5. अधिनियम की धारा 8 अधिकारिता के अपवर्जन के संबंध में है, जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

"8. अधिकारिता का अपवर्जन और लंबित कार्यवाहियां – जहां कोई कुटुम्ब न्यायालय किसी क्षेत्र के लिए स्थापित किया गया है, वहां –

(क) धारा 7 की उपधारा (1) में निर्दिष्ट किसी जिला न्यायालय के अधीनस्थ सिविल न्यायालय को ऐसे क्षेत्र के संबंध में, उस उपधारा के स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट प्रकृति के किसी वाद या कार्यवाही की बाबत कोई अधिकारिता नहीं होगी या वह उसका प्रयोग नहीं करेगा ;

(ख) किसी मजिस्ट्रेट को, ऐसे क्षेत्र के संबंध में, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन कोई अधिकारिता या शक्तियां नहीं होंगी या वह उनका प्रयोग नहीं करेगा ;

(ग) धारा 7 की उपधारा (1) के स्पष्टीकरण में निर्दिष्ट प्रकृति के प्रत्येक ऐसे वाद या कार्यवाही का और दंड प्रक्रिया

संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 9 के अधीन ऐसी कार्यवाही का –

(i) जो ऐसे कुटुम्ब न्यायालय की स्थापना से ठीक पहले, यथास्थिति, उस उपधारा में निर्दिष्ट किसी जिला न्यायालय या अधीनस्थ सिविल न्यायालय के समक्ष अथवा उक्त संहिता के अधीन किसी मजिस्ट्रेट के समक्ष लंबित है ; और

(ii) जो ऐसे कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष या उसके द्वारा की जानी या संस्थित की जानी अपेक्षित होती यदि ऐसी तारीख से, जिसको वाद या कार्यवाही की गई थी, पहले यह अधिनियम प्रवृत्त हो गया होता और ऐसा कुटुम्ब न्यायालय स्थापित हो गया होता,

ऐसे कुटुम्ब न्यायालय को ऐसी तारीख को अंतरण हो जाएगा, जिसको वह स्थापित किया जाता है ।"

6. कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 में इस अधिनियम का अन्य विधियों या विधि का प्रभाव रखनी वाली लिखत पर अध्यारोही प्रभाव होने का उपबंध किया गया है । उक्त धारा निम्नलिखित है :–

"अधिनियम का अध्यारोही प्रभाव होना – इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में या इस अधिनियम से भिन्न किसी विधि के आधार पर प्रभाव रखने वाली किसी लिखत में तद्संगत किसी बात के होते हुए भी प्रभावी होंगे ।"

7. धारा 7(1) के स्पष्टीकरण (ख) के अधीन, किसी व्यक्ति के विवाह और उसकी वैवाहिक प्रास्थिति दोनों की विधिमान्यता की घोषणा के लिए कोई वाद या कार्यवाही संस्थित करना कुटुम्ब न्यायालय की अनन्य अधिकारिता के भीतर आते हैं चूंकि धारा 8 के अधीन उन सभी अधिकारिताओं को, जो धारा 7 के अधीन आती हैं, सिविल न्यायालयों की अधिकारिता के कार्यक्षेत्र से अपवर्जित किया गया है । यदि किसी व्यक्ति की वैवाहिक प्रास्थिति पर कोई विवाद है, तो उस बाबत घोषणा की ईप्सा केवल कुटुम्ब न्यायालय के समक्ष की जानी चाहिए । इस बात से कोई फर्क नहीं पड़ता कि यह सकारात्मक अनुतोष के लिए है या नकारात्मक अनुतोष के लिए । जो बात महत्वपूर्ण है वह है वैवाहिक प्रास्थिति के संबंध में घोषणा । जो मत हमने अपनाया है, उसकी पुष्टि धारा 20 से भी होती है चूंकि कुटुम्ब न्यायालय अधिनियम, 1984 का अन्य विधियों पर अध्यारोही प्रभाव है ।

8. उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, यह अपील मंजूर की जाती है । उच्च न्यायालय का आक्षेपित निर्णय अपास्त किया जाता है । मामला उच्च न्यायालय को गुणागुण के आधार पर विनिश्चय करने के लिए प्रतिप्रेषित किया जाता है । हम उच्च न्यायालय को नए सिरे से अपील की सुनवाई करने और तत्परता से, अधिमानतः छह माह की अवधि के भीतर, निपटारा करने के लिए अनुरोध करते हैं ।

खर्चे के लिए कोई आदेश नहीं किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

[2016] 4 उम. नि. प. 67

बलवीर सिंह और एक अन्य

बनाम

राजस्थान राज्य और एक अन्य

10 मई, 2016

न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी और न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 193 और 190 – शिकायतकर्ता द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अतिरिक्त धारा 498क और 304ख के अधीन भी अपराध का संज्ञान लेने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन – आवेदन खारिज करते हुए मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया जाना – शिकायतकर्ता द्वारा सेशन न्यायालय के समक्ष पुनः इसी प्रकार का आवेदन फाइल किया जाना – सेशन न्यायालय द्वारा आवेदन पर संज्ञान लिया जाना और उच्च न्यायालय द्वारा पुष्टि किया जाना – जब मजिस्ट्रेट द्वारा अभियुक्तों की सुनवाई करने के पश्चात् सम्यक् रूप से मस्तिष्क का प्रयोग करते हुए मामले में संज्ञान लिया गया हो, तब सेशन न्यायालय द्वारा मूल अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में मामले में दूसरी बार संज्ञान लेना अनुज्ञेय नहीं होगा क्योंकि संज्ञान केवल एक बार लिया जा सकता है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 193 और 190 – शिकायतकर्ता द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थियों के विरुद्ध पुलिस रिपोर्ट में वर्णित अपराध के साथ-साथ अन्य अपराधों के लिए भी संज्ञान करने के लिए मजिस्ट्रेट के समक्ष आवेदन – मजिस्ट्रेट द्वारा आवेदन पर सम्यक् रूप से विचार करने के पश्चात् इसे खारिज किया जाना – मामला विचारण के लिए सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया जाना – शिकायतकर्ता द्वारा सेशन न्यायालय के समक्ष पुनः इसी प्रकार का आवेदन फाइल किया जाना – सेशन न्यायालय द्वारा अभियुक्त-अपीलार्थियों की सुनवाई करने के पश्चात् आवेदन मंजूर किया जाना – सेशन न्यायालय मूल अधिकारिता का प्रयोग करते हुए मामले में दूसरी बार संज्ञान नहीं ले सकता था, किंतु मजिस्ट्रेट का आदेश उच्चतर न्यायालय द्वारा पुनरीक्षण योग्य था और चूंकि सेशन न्यायालय द्वारा अभियुक्तों को सुनवाई का अवसर देते हुए आदेश पारित किया था, इसलिए यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन ऐसे आदेश में हस्तक्षेप नहीं कर सकता है ।

इस मामले में अपीलार्थियों के पुत्र अभिमन्यु सिंह का विवाह तारीख 24 फरवरी, 2014 को रेणू के साथ हुआ था । वह विवाह के दस माह के भीतर मृत पाई गई थी । मृत्यु का कारण फांसी लगाने की वजह से श्वासोवरुद्ध होना था । इस मामले में प्रत्यर्थी (मृतका के पिता) द्वारा यह अभिकथन करते हुए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई कि रेणू की मृत्यु उसके पति अभिमन्यु सिंह तथा उसके माता-पिता (अपीलार्थियों) द्वारा उनकी दहेज की मांग की परितृप्ति न होने पर कारित की गई । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन रजिस्ट्रीकृत की गई । मामले का अन्वेषण किया गया और इसके परिणामस्वरूप केवल अभिमन्यु के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया और वह भी भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अधीन अर्थात् रेणू द्वारा कारित आत्महत्या के दुष्प्रेरण के लिए । पुलिस अन्वेषण के अनुसार, दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी और भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 304ख के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है । इस कारण इस मामले में अपीलार्थियों के विरुद्ध कोई चालान फाइल नहीं किया गया । पुलिस द्वारा आरोप पत्र फाइल करने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 2 (मृतका के पिता) ने अभिमन्यु और उसके माता-पिता के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन संज्ञान लेने के लिए विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी के समक्ष एक आवेदन फाइल किया । विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा यह आवेदन खारिज कर दिया गया । इसके उपरांत, विद्वान् मजिस्ट्रेट ने मामला सेशन न्यायालय के

समक्ष सुपुर्द कर दिया क्योंकि भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अधीन अपराध सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय था । प्रत्यर्थी सं. 2 ने एक बार पुनः इसी प्रकार का आवेदन सेशन न्यायालय के समक्ष फाइल किया । यहां प्रत्यर्थी सं. 2 अपने प्रयास में सफल रहा क्योंकि विद्वान् सेशन न्यायालय ने अपीलार्थियों और उनके पुत्र के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क और अनुकल्पतः धारा 306 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए संज्ञान लिया । इस प्रकार, विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने अपीलार्थियों के विरुद्ध जमानतीय वारंट जारी करने का निदेश दिया । उक्त आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थियों के साथ-साथ उनके पुत्र अभिमन्यु ने उच्च न्यायालय में समावेदन किया । जिस एकमात्र आधार पर इस आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई वह यह था कि जब मजिस्ट्रेट ने शिकायतकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया था और भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन संज्ञान लेने से इनकार कर दिया था और इस आदेश ने अंतिमता प्राप्त कर ली थी क्योंकि न तो शिकायतकर्ता और न ही लोक अभियोजक द्वारा कोई पुनरीक्षण अर्जी/दांडिक प्रकीर्ण अपील फाइल की गई थी, इसलिए उसी अनुतोष के लिए सेशन न्यायालय के समक्ष द्वितीय आवेदन कायम रखने योग्य नहीं था क्योंकि यह सेशन न्यायालय द्वारा दूसरी बार संज्ञान लेने की कोटि में आता है जो विधि में अननुज्ञेय है । उच्च न्यायालय के समक्ष यह दलील दी गई कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 190 के अधीन अपराध का संज्ञान केवल एक बार लिया जा सकता है । उच्च न्यायालय ने अपने आदेश द्वारा मामले को इस निदेश के साथ सेशन न्यायालय को वापस भेज दिया कि पक्षकारों की सुनवाई की जाए और धर्म पाल और अन्य बनाम हरियाणा राज्य और एक अन्य वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए आगामी आदेश पारित किया जाए । सेशन न्यायालय ने नए सिरे से सुनवाई की और उसके पश्चात् फिर से अपीलार्थियों और उनके पुत्र के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन, और अनुकल्पतः, धारा 306 के अधीन संज्ञान लेने की सीमा तक आवेदन मंजूर करते हुए आदेश पारित किया । अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण अर्जी फाइल करके इस आदेश को चुनौती दी, जो उच्च न्यायालय द्वारा खारिज कर दी गई । अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के आदेश को उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल करके चुनौती दी । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – यहां ऐसा मामला है जहां पुलिस रिपोर्ट में, जो मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत की गई थी, अन्वेषक अधिकारी ने अपीलार्थियों को अभियुक्त

व्यक्तियों के रूप में शामिल नहीं किया था । शिकायतकर्ता ने विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष अपीलार्थियों के विरुद्ध भी संज्ञान करने की प्रार्थना करते हुए आवेदन फाइल किया था । मजिस्ट्रेट द्वारा इस आवेदन पर सम्यक् रूप से विचार किया गया और नामंजूर कर दिया गया । इस प्रकार, इस मामले में यह स्थिति नहीं है कि जहां संहिता की धारा 173(8) के अधीन फाइल अन्वेषण रिपोर्ट/आरोप पत्र में अपीलार्थियों को आलिप्त किया गया हो और अपीलार्थियों की यह दलील हो कि उन्हें गलत रूप से आलिप्त किया गया है । इसके विपरीत, पुलिस ने स्वयं अपनी अंतिम रिपोर्ट में यह उल्लेख किया था कि अपीलार्थियों के विरुद्ध मामला नहीं बनता है । इस पर शिकायतकर्ता द्वारा आक्षेप किया गया, जो मजिस्ट्रेट से यह चाहता था कि अपीलार्थियों को भी समन किया जाए और शिकायतकर्ता द्वारा इस प्रयोजन के लिए संहिता की धारा 190 के अधीन परिवाद फाइल किया गया । अपीलार्थियों ने उक्त आवेदन का उत्तर दिया और मजिस्ट्रेट द्वारा दलीलें सुनने के पश्चात् आवेदन नामंजूर कर दिया गया । इससे यह दर्शित होता है कि मजिस्ट्रेट का आदेश सम्यक् रूप से मस्तिष्क का प्रयोग करके पारित किया गया था, जिसके द्वारा उसने अपीलार्थियों के विरुद्ध अभिकथित अपराध का संज्ञान करने से इनकार कर दिया तथा केवल अपीलार्थियों के पुत्र के विरुद्ध ही संज्ञान किया । इस आदेश को चुनौती नहीं दी गई । प्रसामान्यतः, ऐसे मामले में, यह नहीं कहा जा सकता है कि मजिस्ट्रेट ने सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करते समय "निष्क्रिय भूमिका" निभाई थी । इस प्रकार, उसने सम्यक् रूप से मस्तिष्क का प्रयोग करने के पश्चात् संज्ञान किया था और इस प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाई थी । स्थिति तब भिन्न होती यदि मजिस्ट्रेट ने परिवाद-आवेदन को सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करते समय केवल प्रेषित किया होता । इस पृष्ठभूमि में, इस न्यायालय की यह राय है कि यह एक ऐसा मामला है, जहां मजिस्ट्रेट ने अपराध का संज्ञान किया था । ऐसा होते हुए भी, सेशन न्यायालय ने परिवादी द्वारा उसके समक्ष किए गए उसी प्रकार के आवेदन पर उसके उपरांत संज्ञान लिया । प्रसामान्यतः, ऐसी कार्रवाई अनुज्ञेय नहीं होगी । (पैरा 21)

अगला प्रश्न यह है कि क्या यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करके ऐसे आदेश पर रोक लगा सकता है । इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि मजिस्ट्रेट का अपीलार्थियों के विरुद्ध संज्ञान लेने से इनकार करने वाला आदेश

पुनरीक्षण योग्य है । पुनरीक्षण की इस शक्ति का उच्चतर न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जा सकता है, जो कि इस मामले में स्वयं सेशन न्यायालय है और वह या तो पुनरीक्षण अर्जी पर, जो व्यथित पक्षकार द्वारा फाइल की जा सकती है, या स्वयं पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा, स्वप्रेरणा से प्रयोग की जा सकती है । अतः, सेशन न्यायालय अपनी पुनरीक्षण संबंधी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए आदेश पारित करने के लिए शक्ति-विहीन नहीं है । स्थिति तब भिन्न रही होती यदि उसने अपीलार्थियों के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लेते हुए, उन्हें कोई अवसर दिए बिना, आक्षेपित आदेश पारित किया होता, चूंकि उस आदेश से, जो विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया गया था, इन अपीलार्थियों के पक्ष में एक मूल्यवान अधिकार प्रोद्भूत हुआ था । तथापि, प्रस्तुत मामले में, इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थियों को एक उचित अवसर दिया गया था और उन्होंने परिवाद आवेदन का उत्तर फाइल किया था तथा सेशन न्यायालय ने भी उनकी दलीलें सुनी थीं । इस कारण से, यह न्यायालय आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए तैयार नहीं है और इस अपील को खारिज करता है । (पैरा 22)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2014]	(2014) 3 एस. सी. सी. 92 : **हरदीप सिंह** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य** ;	19
[2014]	[2014] 1 उम. नि. प. 201 = (2014) 3 एस. सी. सी. 306 : **धर्म पाल और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य** ;	2, 6, 11, 12, 19
[2012]	(2012) 12 एस. सी. सी. 406 : **अजय कुमार परमार** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	20
[2006]	(2006) 4 एस. सी. सी. 359 : **मीनू कुमारी और एक अन्य** बनाम **बिहार राज्य और अन्य** ;	8
[1995]	(1995) 2 एस. सी. सी. 23 : **निसार और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य** ;	6, 18

[1993] (1993) 2 एस. सी. सी. 16 :
किशन सिंह बनाम **बिहार राज्य** । 13, 17, 18

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2016 की दांडिक अपील सं. 253.

2015 की पुनरीक्षण अर्जी सं. 1591 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जयपुर की एकल न्यायपीठ के तारीख 18 दिसम्बर, 2015 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थियों की ओर से सर्वश्री राजू रामचन्द्रन, ज्येष्ठ अधिवक्ता, नीरज कुमार, विजय कुमार थल्लन और विक्रम आदित्य नारायण

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री डा. सुशील बलवाड़ा, जय नाधना, के. सिंह मान और अनीश महेश्वरी

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी ने दिया ।

न्या. सीकरी – अभिमन्यु सिंह, जिसका तारीख 24 फरवरी, 2014 को रेणू के साथ विवाह हुआ था, के माता-पिता इस अपील में अपीलार्थी हैं । रेणू तारीख 27 नवम्बर, 2014 को अर्थात् विवाह के दस माह के भीतर मृत पाई गई थी । मृत्यु का कारण फांसी लगाने की वजह से श्वासोवरुद्ध होना था । इस मामले में प्रत्यर्थी (मृतका के पिता) द्वारा यह अभिकथन करते हुए प्रथम इत्तिला रिपोर्ट दर्ज कराई गई कि रेणू की मृत्यु उसके पति अभिमन्यु सिंह तथा उसके माता-पिता (अपीलार्थियों) द्वारा उनकी दहेज की मांग की परितृप्ति न होने पर कारित की गई । प्रथम इत्तिला रिपोर्ट भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन रजिस्ट्रीकृत की गई । अपीलार्थियों ने यह दावा किया कि यह मामला रेणू द्वारा फांसी लगाकर आत्महत्या करने का है । मामले का अन्वेषण किया गया और इसके परिणामस्वरूप केवल अभिमन्यु के विरुद्ध आरोप पत्र फाइल किया गया और वह भी भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अधीन अर्थात् रेणू द्वारा कारित आत्महत्या के दुष्प्रेरण के लिए । पुलिस अन्वेषण के अनुसार, दहेज की कोई मांग नहीं की गई थी और भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 304ख के अधीन कोई अपराध नहीं बनता है । इसके बजाय, यह एक आत्महत्या का मामला है और अधिक से अधिक अभिमन्यु को रेणू द्वारा कारित आत्महत्या के दुष्प्रेरण के लिए आरोपित किया जा

सकता है । इस कारण इस मामले में अपीलार्थियों के विरुद्ध कोई चालान फाइल नहीं किया गया । पुलिस द्वारा तारीख 24 फरवरी, 2015 को पूर्वोक्त आरोप पत्र फाइल करने के पश्चात् प्रत्यर्थी सं. 2 ने अपीलार्थियों और अभिमन्यु के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन संज्ञान लेने के लिए विद्वान् न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी के समक्ष एक आवेदन फाइल किया । विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा तारीख 11 मार्च, 2015 के आदेश द्वारा यह आवेदन खारिज कर दिया गया । इसके उपरांत, विद्वान् मजिस्ट्रेट ने मामला सेशन न्यायालय के समक्ष सुपुर्द कर दिया क्योंकि भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अधीन अपराध सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय था । प्रत्यर्थी सं. 2 ने एक बार पुनः इसी प्रकार का आवेदन सेशन न्यायालय के समक्ष फाइल किया । यहां प्रत्यर्थी सं. 2 अपने प्रयास में सफल रहा क्योंकि विद्वान् सेशन न्यायालय ने तारीख 8 अक्तूबर, 2015 के आदेश द्वारा अपीलार्थियों और उनके पुत्र के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क और अनुकल्पतः धारा 306 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए संज्ञान लिया । इस प्रकार, विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने अपीलार्थियों के विरुद्ध जमानतीय वारंट जारी करने का निदेश दिया ।

2. उक्त आदेश से व्यथित होकर अपीलार्थियों के साथ-साथ उनके पुत्र अभिमन्यु ने उच्च न्यायालय में समावेदन किया । उच्च न्यायालय ने तारीख 4 नवम्बर, 2015 के अपने आदेश द्वारा मामले को इस निदेश के साथ सेशन न्यायालय को वापस भेज दिया कि पक्षकारों की सुनवाई की जाए और **धर्म पाल और अन्य** बनाम **हरियाणा राज्य और एक अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए आगामी आदेश पारित किया जाए । सेशन न्यायालय ने नए सिरे से सुनवाई की और उसके पश्चात् फिर से अपीलार्थियों और उनके पुत्र के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन, और अनुकल्पतः, धारा 306 के अधीन संज्ञान लेने की सीमा तक आवेदन मंजूर करते हुए तारीख 8 दिसम्बर, 2015 का आदेश पारित किया । अपीलार्थियों ने उच्च न्यायालय के समक्ष पुनरीक्षण अर्जी फाइल करके इस आदेश को चुनौती दी, जो उच्च न्यायालय द्वारा तारीख 18 दिसम्बर, 2015 को खारिज कर दी गई । यह आदेश वर्तमान कार्यवाहियों में आक्षेपित है ।

3. हम प्रारंभ में ही यह अभिलिखित करना चाहेंगे कि जिस एकमात्र आधार पर इस आदेश को उच्च न्यायालय के समक्ष चुनौती दी गई थी तथा

---

[1] [2014] 1 उम. नि. प. 201 = (2014) 3 एस. सी. सी. 306.

हमारे समक्ष चुनौती दी गई है, यह है कि जब मजिस्ट्रेट ने तारीख 11 मार्च, 2015 के आदेश द्वारा शिकायतकर्ता के आवेदन को खारिज कर दिया था और भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन संज्ञान लेने से इनकार कर दिया था और इस आदेश ने अंतिमता प्राप्त कर ली थी क्योंकि न तो शिकायतकर्ता और न ही लोक अभियोजक द्वारा कोई पुनरीक्षण अर्जी/दांडिक प्रकीर्ण अपील फाइल की गई थी, इसलिए उसी अनुतोष के लिए सेशन न्यायालय के समक्ष द्वितीय आवेदन बनाए रखने योग्य नहीं है । जोरदार रूप से यह दलील दी गई कि यह सेशन न्यायालय द्वारा दूसरी बार संज्ञान लेने की कोटि में आता है जो विधि में अननुज्ञेय है । यह दलील दी गई कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (जिसे इसमें आगे संक्षेप में "संहिता" कहा गया है) की धारा 190 के अधीन अपराध का संज्ञान केवल एक बार लिया जा सकता है ।

4. इस प्रकार, हमारे समक्ष विचार के लिए प्रश्न यह है कि क्या सेशन न्यायालय तब भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन अपराध का संज्ञान लेने के लिए सशक्त था जब न्यायिक मजिस्ट्रेट, प्रथम श्रेणी द्वारा इसी आशय का इसी प्रकार का आवेदन केवल भारतीय दंड संहिता की धारा 306 के अधीन अपराध का संज्ञान करते हुए और विशिष्ट रूप से भारतीय दंड संहिता की धारा 304ख और 498क के अधीन अपराध का संज्ञान लेने से इनकार करके मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करते हुए नामंजूर कर दिया गया था ।

5. अपीलार्थियों की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल श्री राजू रामचन्द्रन ने यह दलील दी कि जब मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय हो, न्यायिक मजिस्ट्रेट सुपुर्दगी कार्यवाहियां पूरी करने के पश्चात् मामले को विचारण के लिए सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर सकता है । वह ऐसा पुलिस रिपोर्ट से यह पाए जाने पर कि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मामले को केवल सुपुर्द करके कर सकता है । अनुकल्पतः, वह पुलिस रिपोर्ट के आधार पर अपराध का संज्ञान ले सकता है और फिर मामले का विचारण करने के लिए सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर सकता है । जब न्यायिक मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 190 के अधीन अपराध का संज्ञान न लेकर प्रथम दृष्टिकोण अपनाता है और मामला विचारण के लिए सेशन न्यायालय के समक्ष सुपुर्द कर देता है, तो सेशन न्यायालय संहिता की धारा 193 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करने और **धर्म पाल** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय को ध्यान में रखते हुए

अपराध का संज्ञान लेने के लिए सक्षम है । तथापि, यदि मजिस्ट्रेट आनुकल्पिक कार्यवाही करता है अर्थात् अपराध का संज्ञान लेता है और फिर मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करता है, तो सेशन न्यायालय को अपराध का नए सिरे से संज्ञान करने की शक्ति नहीं है क्योंकि अपराध का संज्ञान केवल एक बार किया जा सकता है । इस प्रतिपादना के समर्थन में, पुनः, **धर्म पाल** (उपरोक्त) वाले मामले में के निर्णय की सहायता ली गई ।

6. इसके अतिरिक्त, विद्वान् काउंसेल डा. सुशील बलवाड़ा जो प्रत्यर्थी सं. 2 की ओर से उपसंजात हुए और विद्वान् काउंसेल श्री अनीश महेश्वरी जो राज्य की ओर से उपसंजात हुए, ने यह दलील दी कि चूंकि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, इसलिए केवल सेशन न्यायालय ही संज्ञान लेने के लिए सक्षम है और इसलिए सेशन न्यायालय द्वारा तारीख 8 दिसम्बर, 2015 को पारित किए गए आदेश को संहिता की धारा 193 के निबंधनों के अनुसार प्रथम बार अपराध का संज्ञान करने के रूप में समझा जाना चाहिए । दिलचस्प बात यह है कि प्रत्यर्थियों ने भी अपनी दलीलों के समर्थन में **धर्म पाल** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अवलंब लिया है । इसके अतिरिक्त, उन्होंने **निसार और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का भी अवलंब लिया ।

7. उपर्युक्त वर्णन से असंदिग्ध रूप से यह अभिदर्शित होता है कि दोनों पक्ष **धर्म पाल** (उपरोक्त) वाले मामले में के निर्णय का समर्थन प्राप्त करने की कोशिश कर रहे हैं । अतः, उक्त निर्णय के विनिश्चयाधार पर विचार करना उचित होगा । तथापि, ऐसा करने से पूर्व हम संहिता की धारा 190 और 193 के उपबंधों को निर्दिष्ट करना चाहेंगे जो कि प्रस्तुत मामले में लागू हुए हैं क्योंकि, हमारी राय में, इन उपबंधों की सही समझ वर्तमान विवाद्यक का स्पष्ट उत्तर देने और उस मामले में अधिकथित अंतर्निहित विधिक सिद्धांत का पता लगाने में हमारी सहायता करेगी । ये उपबंध निम्नलिखित प्रकार से हैं :–

> "**190. मजिस्ट्रेटों द्वारा अपराधों का संज्ञान** – (1) इस अध्याय के उपबंधों के अधीन रहते हुए, कोई प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट और उपधारा (2) के अधीन विशेषतया सशक्त किया गया कोई द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट, किसी भी अपराध का संज्ञान निम्नलिखित दशाओं में कर सकता है –

---

[1] (1995) 2 एस. सी. सी. 23.

(क) उन तथ्यों का, जिनसे ऐसा अपराध बनता है परिवाद प्राप्त होने पर ;

(ख) ऐसे तथ्यों के बारे में पुलिस रिपोर्ट पर ;

(ग) पुलिस अधिकारी से भिन्न किसी व्यक्ति से प्राप्त इस इत्तिला पर या स्वयं अपनी इस जानकारी पर कि ऐसा अपराध किया गया है ।

(2) मुख्य न्यायिक मजिस्ट्रेट किसी द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट को ऐसे अपराधों का, जिनकी जांच या विचारण करना उसकी क्षमता के अंदर है, उपधारा (1) के अधीन संज्ञान करने के लिए सशक्त कर सकता है ।

* * * * *

193. **अपराधों का सेशन न्यायालयों द्वारा संज्ञान** – इस संहिता द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, कोई सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में किसी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं करेगा जब तक मामला इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा उसके सुपुर्द नहीं कर दिया गया है ।"

8. संहिता की धारा 190 और 193 अध्याय 14 में हैं । इस अध्याय में 'कार्यवाहियां शुरू करने के लिए अपेक्षित शर्तें' अंतर्विष्ट हैं । धारा 190 मजिस्ट्रेटों द्वारा अपराध का संज्ञान लेने के संबंध में है । इस धारा में किसी प्रथम वर्ग मजिस्ट्रेट और विशेषतया सशक्त किसी द्वितीय वर्ग मजिस्ट्रेट को इस धारा में वर्णित तीन परिस्थितियों में 'किसी भी अपराध' का संज्ञान लेने के लिए सशक्त किया गया है । इन तीन परिस्थितियों में ऐसे तथ्यों के बारे में पुलिस रिपोर्ट पर, जिनसे अपराध बनता है, संज्ञान करना सम्मिलित है । यह एक अतिसामान्य विधि है कि जब यह उल्लेख करते हुए भी कोई पुलिस रिपोर्ट फाइल की जाती है कि कोई अपराध नहीं बनता है, तब भी मजिस्ट्रेट अन्वेषक अधिकारी द्वारा निकाले गए निष्कर्ष की अनदेखी कर सकता है और अन्वेषण से प्रकट तथ्यों पर स्वतंत्र रूप से अपने मस्तिष्क का प्रयोग करने और मामले का संज्ञान करने के लिए सक्षम है यदि उसका यह विचार है कि अन्वेषण से प्रकट तथ्यों से प्रथमदृष्ट्या यह मत बनता है कि अपराध का कारित होना प्रकट होता है । ऐसी स्थिति में, मजिस्ट्रेट धारा 190(1)(क) के अधीन मामले का संज्ञान करने के लिए

संहिता की धारा 200 और 202 में अधिकथित प्रक्रिया का पालन करने के लिए आबद्ध नहीं है, यद्यपि वह धारा 200 या 202 के अधीन भी कार्यवाही करने के लिए स्वतंत्र है (**मीनू कुमारी और एक अन्य** बनाम **बिहार राज्य और अन्य**[1] वाला मामला देखें) । इस प्रकार, जब मजिस्ट्रेट को संहिता की धारा 190(1)(क) के अधीन कोई परिवाद प्राप्त होता है, तो मजिस्ट्रेट संहिता की धारा 200 या 202 में अधिकथित प्रक्रिया का आश्रय लेने और इसके पश्चात् संज्ञान करने के लिए सशक्त है । यदि पुलिस रिपोर्ट फाइल की जाती है, तो वह उस पुलिस रिपोर्ट पर संहिता की धारा 190(1)(क) के अधीन उपबंधित अनुसार ऊपर वर्णित रीति में, जैसा कि **मीनू कुमारी** (उपरोक्त) वाले मामले में उल्लेख किया गया है, संज्ञान करेगा ।

9. इसी प्रकार, संहिता की धारा 193 में सेशन न्यायालय को अपराधों का संज्ञान लेने के लिए सशक्त किया गया है और इस धारा में यह उपबंधित है कि सेशन न्यायालय किसी अपराध का आरंभिक अधिकारिता के न्यायालय के रूप में तब तक संज्ञान नहीं करेगा जब तक मजिस्ट्रेट द्वारा इस संहिता के अधीन उसे मामला सुपुर्द नहीं कर दिया गया है । इस धारा के अनुसार, सेशन न्यायालय मजिस्ट्रेट द्वारा उसे मामला सुपुर्द करने के पश्चात् ही संज्ञान कर सकता है । तथापि, जब एक बार मजिस्ट्रेट द्वारा उसे मामला सुपुर्द कर दिया गया है, तो सेशन न्यायालय 'आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में' कार्य करते हुए संज्ञान करने के लिए सशक्त है ।

10. उपरोक्त उपबंधों को ध्यान में रखते हुए, प्रश्न यह उद्भूत होता है कि क्या मजिस्ट्रेट ऐसे अपराध का संज्ञान कर सकता है जो सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है या वह सुपुर्दगी कार्यवाहियां पूर्ण करने के पश्चात् मामला केवल सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर देगा क्योंकि सेशन न्यायालय ही ऐसे मामलों का विचारण करने के लिए सक्षम है । एक ओर, संहिता की धारा 190 में मजिस्ट्रेट को 'किसी भी अपराध का संज्ञान करने के लिए' सशक्त किया गया है जिससे यह धारणा उत्पन्न होती है कि ऐसा मजिस्ट्रेट ऐसे अपराध का भी संज्ञान कर सकता है जो सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है । दूसरी ओर, जब मजिस्ट्रेट द्वारा मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया जाता है, तो संहिता की धारा 193 में यह अनुबंध है कि सेशन न्यायालय 'आरंभिक अधिकारिता के न्यायालय के रूप

---

[1] (2006) 4 एस. सी. सी. 359.

में' उस पर संज्ञान करेगा, जिससे यह दर्शित होता है कि सेशन न्यायालय द्वारा संज्ञान 'आरंभिक अधिकारिता के न्यायालय के रूप में' किया जाता है और इस प्रकार यह पहला अवसर है जब संज्ञान किया जाता है और मजिस्ट्रेट द्वारा सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करते हुए पारित किया गया कोई आदेश ऐसे अपराध का संज्ञान करने की कोटि में नहीं आता है जो सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय हैं ।

11. संहिता की धारा 190 जिसमें 'किसी भी अपराध का' अभिव्यक्ति प्रयुक्त की गई है, के पठन मात्र से स्पष्ट रूप से यह दर्शित होता है कि मजिस्ट्रेट पर ऐसा कोई निर्बंधन अधिरोपित नहीं किया गया है कि वह केवल मजिस्ट्रेट न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध का ही संज्ञान कर सकता है और सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध की बाबत नहीं । इस प्रकार, उसे उस अपराध का संज्ञान करने की शक्ति है, जो सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है । यदि ऐसा है, तो प्रश्न यह है कि जब सेशन न्यायालय किसी अपराध का संज्ञान करता है तो संहिता की धारा 193 में आने वाले 'आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में' शब्दों को क्या अर्थ दिया जाना चाहिए । इस बात को दूसरे रूप में लेते हैं, जब मजिस्ट्रेट ने संज्ञान कर लिया है और उसके पश्चात् मामले को मात्र सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया है, तब क्या सेशन न्यायालय संहिता की धारा 193 के अधीन पुनः अपराध का संज्ञान करने के लिए सशक्त नहीं है या उसे फिर भी आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में कार्य करते हुए संज्ञान करने की शक्ति है । इसका उत्तर ढूंढने के लिए अब हम **धर्मपाल** (उपरोक्त) वाले मामले के मूल्यांकन पर विचार करते हैं ।

12. **धर्मपाल** (उपरोक्त) वाले मामले में 'एन' नामक व्यक्ति और अपीलार्थियों के विरुद्ध भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 307 और 323 के अधीन अपराध कारित करने के लिए एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई थी । पुलिस ने अन्वेषण के पश्चात् केवल 'एन' का नाम विचारण के लिए भेजते हुए जबकि अपीलार्थियों के नाम रिपोर्ट के स्तंभ 2 में शामिल करते हुए संहिता की धारा 173(2) के अधीन अपनी रिपोर्ट मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत की । मजिस्ट्रेट ने उस पुलिस रिपोर्ट की प्राप्ति पर मामला सीधे तौर पर सेशन न्यायालय को सुपुर्द नहीं किया, अपितु शिकायतकर्ता द्वारा किए गए आक्षेप के आधार पर पुलिस रिपोर्ट में नामित अपीलार्थियों को अन्य अभियुक्त 'एन' के साथ-साथ विचारण का सामना करने के लिए समन जारी किए क्योंकि मजिस्ट्रेट इस

बात से आश्वस्त थे कि अपीलार्थियों के विरुद्ध भी विचारण चलाने के लिए प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है । इसके अतिरिक्त, मजिस्ट्रेट ने ऐसा करते हुए संहिता की धारा 190, 200 या यहां तक कि धारा 202 में अनुध्यात अनुसार कोई अतिरिक्त जांच नहीं कराई, अपितु केवल पुलिस रिपोर्ट के आधार पर समन जारी करने की कार्यवाही की । इस पृष्ठभूमि में, संविधान न्यायपीठ के विचार के लिए निम्नलिखित प्रश्न उद्भूत हुए :–

"7.1 क्या सुपुर्दगी मजिस्ट्रेट को पुलिस रिपोर्ट से यह पता चलने पर कि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करने के पश्चात् कोई अन्य भूमिका निभानी होती है ?

7.2 यदि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से असहमत है और उसे यह विश्वास हो जाता है कि उन व्यक्तियों के विरुद्ध भी मामला बनता है जिन्हें रिपोर्ट के स्तंभ 2 में रखा गया है, तो क्या उसे पुलिस रिपोर्ट में बनाए गए मामले के संबंध में विचारण में पेश होने के लिए नफे सिंह के साथ-साथ उनके नाम शामिल करने की दृष्टि से उनके विरुद्ध भी समन जारी करने की अधिकारिता है ?

7.3 क्या अपीलार्थियों के विरुद्ध समन जारी करने का विनिश्चय करने पर मजिस्ट्रेट से परिवाद मामले की प्रक्रिया का अनुसरण करना और उन्हें विचारण के लिए सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने से पूर्व साक्ष्य लेना अपेक्षित है या क्या उसका ऐसी प्रक्रिया का अनुसरण किए बिना उनके विरुद्ध समन जारी करना न्यायोचित था ?

7.4 क्या सेशन न्यायाधीश संहिता की धारा 193 के अधीन मूल अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में समन जारी कर सकता है ?

7.5 क्या मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिए जाने पर सेशन न्यायाधीश संहिता की धारा 193 के अधीन पृथक् रूप से समन जारी कर सकेगा या क्या उसे उसका अवलंब लेने के लिए तब तक प्रतीक्षा करनी होगी जब तक मामला संहिता की धारा 319 के अधीन वाले प्रक्रम तक नहीं पहुंच जाता ?

7.6 क्या रंजीत सिंह **बनाम** पंजाब राज्य [(1998) 7 एस. सी. सी. 149] वाले मामले का विनिश्चय, जिसके द्वारा किशन सिंह **बनाम** बिहार राज्य [(1993) 2 एस. सी. सी. 16] वाले मामले के

विनिश्चय को अपास्त कर दिया गया था, सही विनिश्चित किया गया है अथवा नहीं ?"

संविधान न्यायपीठ ने निर्देश का उत्तर देते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि :–

(क) मजिस्ट्रेट को पुलिस प्राधिकारियों द्वारा संहिता की धारा 173(2) के अधीन फाइल की गई अंतिम रिपोर्ट से असहमत होने और पुलिस रिपोर्ट में असंबद्ध अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की पर्याप्त शक्ति है । मजिस्ट्रेट के समक्ष संहिता की धारा 173(2) के अधीन प्रस्तुत की गई पुलिस रिपोर्ट पर संज्ञान लेने के उपरांत मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करते हुए उसके द्वारा भूमिका निभानी होती है । यदि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से असहमत होता है तो उसके पास दो विकल्प हैं । वह उस अभ्यापत्ति अर्जी के आधार पर, जो फाइल की जा सकती है, कार्रवाई कर सकता है या वह पुलिस रिपोर्ट से असहमति जताते हुए आदेशिका जारी कर सकता है और अभियुक्त को समन कर सकता है । इसके पश्चात्, यदि उसका प्रथमदृष्ट्या यह समाधान हो जाता है कि रिपोर्ट के स्तंभ 2 में नामित व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए मामला बनता है, तो वह उक्त व्यक्तियों के विरुद्ध विचारण करने की कार्यवाही कर सकेगा या यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि जो मामला बनता है वह सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, तो मामले में आगे कार्यवाही करने के लिए उसे अवश्य मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करना चाहिए । इसके अतिरिक्त, यदि मजिस्ट्रेट अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने का विनिश्चय करता है, तो उसे पुलिस रिपोर्ट के आधार पर ही कार्यवाही करनी होगी और या तो मामले में जांच कराएगा या यदि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय पाया जाता है तो उसे सेशन न्यायालय को सुपुर्द करेगा ।

(ख) सेशन न्यायाधीश मजिस्ट्रेट द्वारा उसे मामला सुपुर्द करने के पश्चात् संहिता की धारा 193 के अधीन समन जारी करने के लिए हकदार है । धारा 193 में अपराधों का सेशन न्यायालयों द्वारा संज्ञान लेने का उपबंध किया गया है । इस धारा में मुख्य शब्द यह हैं कि 'कोई सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में किसी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं करेगा जब तक मामला इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा उसके सुपुर्द नहीं कर दिया गया

है' । धारा 193 के उपबंध का अनुक्रम-बंधन यह है कि मजिस्ट्रेट द्वारा, सर्वप्रथम, मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया जाना चाहिए । दूसरी शर्त यह है कि मामला उसे सुपुर्द करने के पश्चात् ही सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अपराध का संज्ञान ले सकता है । यह दलील कि धारा 193 में उपदर्शित संज्ञान अपराध के संज्ञान से संबंधित न होकर मजिस्ट्रेट द्वारा पारित सुपुर्दगी आदेश पर संज्ञान के संबंध में है, धारा 193 के इन स्पष्ट शब्दों को देखते हुए विशिष्ट रूप से नामंजूर की जाती है कि सेशन न्यायालय उक्त धारा के अधीन अपराधों का संज्ञान ले सकता है ।

(ग) अपराध का संज्ञान केवल एक बार लिया जा सकता है । यदि मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान लेता है और फिर सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करता है, तो नए सिरे से अपराध का संज्ञान लेने का प्रश्न और उसके पश्चात् समन जारी करने की कार्यवाही विधि के अनुसार नहीं है । यदि अपराध का संज्ञान किया जाना है, तो वह या तो मजिस्ट्रेट द्वारा या सेशन न्यायालय द्वारा किया जा सकता है । संहिता की धारा 193 में अत्यंत स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित किया गया है कि जब मजिस्ट्रेट द्वारा मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिया जाता है, तो सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता ग्रहण कर लेता है और सब कुछ उस अधिकारिता के ग्रहण कर लेने के बाद होता है । अतः, संहिता की धारा 209 के उपबंधों का पठन इस रूप में करना होगा कि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से यह पता चलने पर कि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने की एक निष्क्रिय भूमिका निभाता है । मजिस्ट्रेट द्वारा अंशतः संज्ञान करने और अंशतः सेशन न्यायाधीश द्वारा संज्ञान करने का कोई प्रश्न ही नहीं हो सकता है ।

13. उपर्युक्त निष्कर्षों पर पहुंचने की प्रक्रिया में, इस न्यायालय ने **किशन सिंह** बनाम **बिहार राज्य**[1] वाले मामले में अभिव्यक्त इस मत को स्वीकार किया कि सेशन न्यायालय को उसे मामला सुपुर्द करने पर उन व्यक्तियों के विरुद्ध अपराधों का संज्ञान लेने की अधिकारिता होती है जिन्हें अपराधियों के रूप में नामित नहीं किया गया है किंतु जिनकी सह-अपराधिता अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से प्रकट होती है । इस न्यायालय

---

[1] (1993) 2 एस. सी. सी. 16.

ने विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित किया कि सेशन न्यायाधीश धारा 209 के अधीन सुपुर्दगी पर पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में दर्शाए गए व्यक्तियों को उन व्यक्तियों के साथ, जिन्हें पहले ही नामित किया गया है, विचारण में प्रस्तुत होने के लिए समन कर सकेगा ।

14. दिलचस्प बात यह है कि इस न्यायालय ने साथ-ही-साथ यह भी अभिनिर्धारित किया कि यह अभिनिर्धारित करना सही नहीं होगा कि पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने और यह देखने पर कि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मजिस्ट्रेट को मामला विचारण के लिए सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने के सिवाय कुछ नहीं करना है और सेशन न्यायाधीश को उन व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने से पूर्व, जिनके विरुद्ध मजिस्ट्रेट द्वारा मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करते समय भेजे गए मामले के कागजपत्रों में अंतर्विष्ट सामग्री से प्रथमदृष्ट्या मामला साबित होता है, तब तक प्रतीक्षा करनी होगी जब तक कि मामला संहिता की धारा 319 के अधीन प्रक्रम तक नहीं पहुंच जाता है । यह बात निम्नलिखित उद्धरण में प्रदर्शित होती है :–

> "23. जहां तक प्रथम प्रश्न का संबंध है, हम श्री चाहर और श्री दवे द्वारा दी गई इन दलीलों को स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि पुलिस रिपोर्ट प्राप्त होने पर, जिससे यह दर्शित हो रहा था कि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मजिस्ट्रेट को मामला विचारण के लिए सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने के सिवाय कोई अन्य कृत्य नहीं करना था और सेशन न्यायालय ही विचारण में किसी अन्य व्यक्ति को अभियुक्त के रूप में शामिल करने के लिए संहिता की धारा 319 का अवलंब ले सकता था । दूसरे शब्दों में, श्री दवे के अनुसार, धारा 190(1)(ख) के अधीन संज्ञान करने और संहिता की धारा 204 के अधीन अभियुक्तों को समन जारी करने के बीच कोई मध्यवर्ती प्रक्रम नहीं हो सकता था । ऐसे निर्वचन के प्रभाव के परिणामस्वरूप ऐसी स्थिति उत्पन्न होगी जहां पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में नामित व्यक्तियों पर न तो सुपुर्दगी मजिस्ट्रेट का और न ही सेशन न्यायालय का तब तक कोई नियंत्रण होगा जब तक विचारण धारा 309 के प्रक्रम तक नहीं पहुंच जाता है । इसके अलावा, यदि सेशन न्यायाधीश अंततोगत्वा पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में नामित व्यक्तियों के विरुद्ध सामग्री पाता है तो ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध विचारण नए सिरे से आरंभ करना होगा जिसके परिणामस्वरूप न

केवल विचारण दोहराया जाएगा बल्कि उसमें देरी भी होगी ।"

तथापि, जब हम चर्चा को समग्र रूप में देखें तो यह स्पष्ट हो जाता है कि संविधान न्यायपीठ द्वारा पूर्वोक्त मताभिव्यक्तियां पैरा 7.1, जिसे पहले ही ऊपर उद्धृत किया गया है, में बनाए गए प्रथम प्रश्न के संबंध में की गई थीं, जिसके अनुसार सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करते हुए मजिस्ट्रेट की शक्तियों का उत्तर दिया जाना था । यह बात निर्णय के अगले ही पैरा अर्थात् पैरा 24 से स्पष्ट होती है, जिसमें **किशन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अधिकथित मत का अनुमोदन करते हुए संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि 'मजिस्ट्रेट के पास उस अंतिम रिपोर्ट से, जो कि संहिता की धारा 173(3) के अधीन पुलिस प्राधिकारियों द्वारा फाइल की जा सकती है, असहमत होने और पुलिस रिपोर्ट में असंबद्ध अभियुक्त व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने की पर्याप्त शक्तियां हैं, जो शक्ति सेशन न्यायालय के पास तब तक नहीं है जब तक कि कार्यवाही धारा 319 के प्रक्रम तक नहीं पहुंच जाती' । यह बात निर्णय के पैरा 25 में किसी प्रकार के विवाद बिना कही गई है, जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

> "25. हमारी राय में, मजिस्ट्रेट को दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 173(3) के अधीन उसके समक्ष प्रस्तुत की गई पुलिस रिपोर्ट का संज्ञान लेने पर सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करते समय भूमिका निभानी होती है । यदि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से असहमत होता है तो उसके पास दो विकल्प हैं । वह उस अभ्यापत्ति अर्जी के आधार पर जो फाइल की जा सकती है, कार्यवाही कर सकता है या वह पुलिस रिपोर्ट से असहमति जताते हुए आदेशिका जारी कर सकता है और अभियुक्तों को समन कर सकता है । इसके पश्चात्, यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि रिपोर्ट के स्तंभ 2 में नामित व्यक्तियों के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए मामला बनता है तो उक्त व्यक्तियों के विरुद्ध विचारण करने की कार्यवाही कर सकेगा या यदि उसका यह समाधान हो जाता है कि ऐसा मामला साबित किया गया है जो कि सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, तो वह मामले पर आगे कार्यवाही करने के लिए उसे सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर सकेगा ।"

15. इस प्रक्रम तक की चर्चा में यह सिद्धांत अधिकथित करते हुए मजिस्ट्रेट की शक्तियों का उत्तर दिया गया है कि भले ही मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय हो, मजिस्ट्रेट का यह कार्य नहीं कि केवल डाकघर के रूप में कार्य करते हुए मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर

दे, अपितु वह संज्ञान लेने, आदेशिका जारी करने और अभियुक्तों को समन करने के लिए भी सशक्त है तथा उसके पश्चात् मामले को सेशन न्यायालय को सुपुर्द करे । इस विषय में स्थिति तब और स्पष्ट हो जाती है जब हम ऊपर उद्धृत संविधान न्यायपीठ द्वारा पैरा 7.4 से 7.6 में के प्रश्नों के उत्तर देखते हैं । हम इस संबंध में उक्त निर्णय के पैरा 27 से 31 को उद्धृत करना चाहेंगे, जो निम्नलिखित हैं :–

> "27. प्रश्न सं. 4, 5 और 6 लगभग एक-दूसरे से जुड़े हुए हैं । प्रश्न सं. 4 का उत्तर सकारात्मक होना चाहिए, अर्थात् सेशन न्यायाधीश विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा उसे मामला सुपुर्द किए जाने पर दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 193 के अधीन समन जारी करने का हकदार था ।
>
> 28. संहिता की धारा 193 सेशन न्यायालय द्वारा अपराधों का संज्ञान करने के बारे में है और उसमें निम्नलिखित उपबंध किया गया है –
>
> > '**193. अपराधों का सेशन न्यायालयों द्वारा संज्ञान** – इस संहिता द्वारा या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि द्वारा अभिव्यक्त रूप से जैसा उपबंधित है उसके सिवाय, कोई सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में किसी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं करेगा जब तक मामला इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा उसके सुपुर्द नहीं कर दिया गया है ।'
>
> इस धारा के मुख्य शब्द ये हैं कि 'कोई सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में किसी अपराध का संज्ञान तब तक नहीं करेगा जब तक मामला इस संहिता के अधीन मजिस्ट्रेट द्वारा उसके सुपुर्द नहीं कर दिया गया है' । उक्त उपबंध में यह आदिष्ट है कि प्रथमतः मामला मजिस्ट्रेट द्वारा सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया जाना चाहिए । दूसरी शर्त यह है कि मामला उसे सुपुर्द किए जाने के पश्चात् ही सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता का प्रयोग करते हुए अपराध का संज्ञान कर सकता है । यद्यपि श्री दवे द्वारा यह बताने का प्रयास किया गया है कि धारा 193 में उपदर्शित संज्ञान किसी अपराध के संज्ञान के संबंध में नहीं है बल्कि विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पारित सुपुर्दगी आदेश के संबंध में है, तथापि, धारा 193 के इन स्पष्ट शब्दों को ध्यान में रखते हुए कि सेशन न्यायालय उक्त

धारा के अधीन अपराधों का संज्ञान कर सकता है, हम इस दलील को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हैं ।

29. अब हम इस अगले प्रश्न पर विचार करते हैं कि क्या धारा 209 के अधीन मजिस्ट्रेट के लिए मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने से पूर्व अपराध का संज्ञान करना अपेक्षित है । यह सुस्थापित है कि किसी अपराध का संज्ञान केवल एक बार किया जा सकता है । यदि मजिस्ट्रेट अपराध का संज्ञान करता है और इसके बाद मामले को सेशन न्यायालय को सुपुर्द करता है तो अपराध का नए सिरे से संज्ञान करने और इसके पश्चात् समन जारी करने की कार्यवाही करने का प्रश्न विधि के अनुसार नहीं है । यदि अपराध का संज्ञान किया जाना है तो वह या तो मजिस्ट्रेट द्वारा या सेशन न्यायालय द्वारा किया जा सकेगा । संहिता की धारा 193 में अत्यंत स्पष्ट रूप से यह उपदर्शित किया गया है कि जब विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द कर दिया जाता है तब सेशन न्यायालय आरंभिक अधिकारिता ग्रहण कर लेता है और सब कुछ उस अधिकारिता के ग्रहण करने के बाद होता है । अतः, धारा 209 के उपबंधों का पठन इस रूप में करना होगा कि विद्वान् मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से यह पता चलने पर कि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने की निष्क्रिय भूमिका निभाता है । मजिस्ट्रेट द्वारा अंशतः संज्ञान करने और अंशतः विद्वान् सेशन न्यायाधीश द्वारा संज्ञान करने का कोई प्रश्न नहीं हो सकता है ।

30. मामले को उस दृष्टि से देखने पर हमें किशन सिंह वाले मामले में अभिव्यक्त इस दृष्टिकोण से सहमत होने में कोई हिचकिचाहट नहीं है कि सेशन न्यायालयों को उसे मामला सुपुर्द करने पर उन व्यक्तियों के विरुद्ध अपराधों का संज्ञान करने की अधिकारिता होती है जिन्हें अपराधियों के रूप में नामित नहीं किया गया है किंतु जिनकी सह-अपराधिता अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से प्रकट होती है । अतः, सेशन न्यायाधीश धारा 209 के अधीन सुपुर्दगी पर साक्ष्य लेखबद्ध किए बिना भी पुलिस रिपोर्ट के स्तंभ 2 में दर्शाए गए व्यक्तियों को उन व्यक्तियों के साथ, जिन्हें पहले ही नामित किया गया है, विचारण में प्रस्तुत होने के लिए समन कर सकेगा ।

31. हम श्री दवे की इस दलील को भी स्वीकार करने में असमर्थ हैं कि सेशन न्यायालय के पास उन व्यक्तियों के विरुद्ध

कार्यवाही करने से पूर्व जिनके विरुद्ध विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करते समय भेजे गए मामले के कागजपत्रों में अंतर्विष्ट सामग्री से प्रथमदृष्ट्या मामला बनता है, उस समय तक प्रतीक्षा करने के सिवाय कोई विकल्प नहीं होगा जब तक मामला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 319 के प्रक्रम तक नहीं पहुंच जाता है ।"

16. उपरोक्त से यह स्पष्ट है कि पैरा 7.4 में के प्रश्न का उत्तर विनिर्दिष्ट रूप से यह अभिनिर्धारित करते हुए सकारात्मक दिया गया था कि सेशन न्यायाधीश को 'आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में' संहिता की धारा 193 के अधीन समन जारी करने का हकदार है । यह इस तथ्य के होते हुए अभिनिर्धारित किया गया था कि मजिस्ट्रेट ने संज्ञान ले लिया था और केवल उसके पश्चात् मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया था, यह उक्त मामले के पहले ही ऊपर उल्लिखित तथ्यों से स्पष्ट है । यह बात विधि की अन्य सुस्थापित स्थिति के विरुद्ध प्रतीत होता है, अर्थात् अपराध का संज्ञान केवल एक बार किया जा सकता है और यदि मजिस्ट्रेट ने अपराध का संज्ञान कर लिया है और फिर मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करता है तो उसके पश्चात् प्रथम बार संज्ञान लेने का प्रश्न विधि के अनुसार नहीं होगा । इस स्पष्ट विरोधाभास को हल करने के लिए इस न्यायालय ने यह स्पष्ट करते हुए उत्तर दिया कि संहिता की धारा 209 के उपबंधों का पठन इस रूप में करना होगा कि मजिस्ट्रेट पुलिस रिपोर्ट से यह पता चलने पर कि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय है, मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने की निष्क्रिय भूमिका निभाता है ।

17. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, संविधान न्यायपीठ ने इस निर्णय में **किशन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण से सहमति व्यक्त की थी । उस निर्णय में इस न्यायालय ने विधिक स्थिति को निम्नलिखित रीति में स्पष्ट किया था :–

"16. हमने रघुबंस दूबे (1967)2 एस. सी. आर. 423 और हरेराम (1978) 4 एस. सी. सी. 58 वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों के इन विनिश्चयाधारों को पहले ही उपदर्शित किया है कि जब न्यायालय अपराध का (न कि अपराधी का) संज्ञान कर लेता है तो न्यायालय का यह कर्तव्य हो जाता है कि वास्तविक अपराधियों का पता लगाए और यदि वह इस निष्कर्ष पर पहुंचता है कि पुलिस द्वारा विचारण के लिए पेश किए गए व्यक्तियों के अतिरिक्त अपराध कारित करने में कुछ अन्य व्यक्ति भी अंतर्वलित हैं, तो न्यायालय का

यह कर्तव्य है कि पहले ही नामित व्यक्तियों के साथ-साथ विचारण का सामना करने के लिए उन्हें समन करे, चूंकि उन्हें समन करना संज्ञान करने की प्रक्रिया का ही एक भाग होगा । हमने दोनों संहिताओं की धारा 193 की भाषा के फर्क का भी उल्लेख किया है ; पुरानी संहिता के अधीन सेशन न्यायालय को आरंभिक अधिकारिता के न्यायालय के रूप में किसी अपराध का तब तक संज्ञान करने से अपवर्जित किया गया था जब तक अभियुक्त उसे सुपुर्द नहीं कर दिया जाता, जबकि वर्तमान संहिता के अधीन अभियुक्त शब्दों के स्थान पर मामला शब्द प्रतिस्थापित करके इस अधिरोध को कम कर दिया गया है । इस प्रकार, धारा 193, जिस रूप में यह वर्तमान में विद्यमान है, के पठन से यह स्पष्ट है कि जब मजिस्ट्रेट द्वारा संहिता के अधीन मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द कर दिया जाता है, तो आरंभिक अधिकारिता के रूप में अपराध का संज्ञान करने की सेशन न्यायालय की शक्ति पर लगा निर्बंधन हट जाता है । मजिस्ट्रेट द्वारा धारा 209 के अधीन मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने पर धारा 193 की रोक हट जाती है और तद्द्वारा सेशन न्यायालय में अपराध का संज्ञान करने की आरंभिक अधिकारिता के न्यायालय की पूर्ण और स्वतंत्र अधिकारिता निहित हो जाती है, जिसके अंतर्गत ऐसे व्यक्ति या व्यक्तियों को समन करने की अधिकारिता भी है जिसका अपराध कारित करने में सह-अपराधिता का निष्कर्ष प्रथमदृष्ट्या अभिलेख पर उपलब्ध सामग्री से निकाला जा सकता है .....।"

18. एक अन्य मामला, जिसमें **किशन सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में की विधिक स्थिति को दोहराया गया है, **निसार और एक अन्य** बनाम **उत्तर प्रदेश राज्य**[1] वाला मामला है ।

19. जहां तक **हरदीप सिंह** बनाम **पंजाब राज्य और अन्य**[2] वाले मामले में के निर्णय का संबंध है, वह संहिता की धारा 319 में यथा अंतर्विष्ट विचारण न्यायालय की शक्तियों के संबंध में है, जो विचारण न्यायालय को ऐसे व्यक्तियों के विरुद्ध भी कार्यवाही करने के लिए सशक्त करती है जो अभियुक्त के रूप में नामित नहीं हैं । उक्त मामले में संविधान न्यायपीठ ने उस प्रक्रम के बारे में विवाद्यक पर विचार किया था जिस पर

---

[1] (1995) 2 एस. सी. सी. 23.

[2] (2014) 3 एस. सी. सी. 92.

संहिता की धारा 319 के अधीन की ऐसी शक्ति का प्रयोग किया जाना चाहिए और इस संबद्ध विवाद्यक पर भी विचार किया था कि संहिता की धारा 319(1) में प्रयुक्त 'साक्ष्य' शब्द का क्या अर्थ है जिसके आधार पर उन व्यक्तियों को समन करने की शक्ति का प्रयोग किया जा सकता है जिन्हें पहले ही अभियुक्त के रूप में नामित नहीं किया गया है । इसलिए उस निर्णय की विस्तारपूर्वक चर्चा करना आवश्यक नहीं है क्योंकि जिस प्रश्न से हमारा सरोकार है उसका उत्तर संविधान न्यायपीठ द्वारा **धर्मपाल** (उपरोक्त) वाले मामले के निर्णय में ही दिया गया है और जिससे हम आबद्ध हैं । इस निर्णय के अनुसार, चूंकि सेशन न्यायालय संहिता की धारा 193 के अधीन आरंभिक अधिकारिता वाले न्यायालय के रूप में कार्यरत है, मजिस्ट्रेट द्वारा उसे कार्यवाहियों की सुपुर्दगी के पश्चात् वह संज्ञान करने और समन जारी करने के लिए सशक्त है और इसे एक ही अपराध का दूसरी बार संज्ञान करने के रूप में नहीं समझा जा सकता है ।

20. **अजय कुमार परमार** बनाम **राजस्थान राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के एक अन्य निर्णय से भी इस दृष्टिकोण की पुष्टि होती है । उस मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि जब अपराध अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय हो, मजिस्ट्रेट को अवश्य मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करना चाहिए और वह अपराध का संज्ञान लेने और उसके समक्ष प्रस्तुत सामग्री के आधार पर अभियुक्त को दोषमुक्त करने से इनकार नहीं कर सकता है । उक्त निर्णय में की गई निम्नलिखित चर्चा को उद्धृत करना उपयोगी होगा :–

> "14. संजय गांधी **बनाम** भारत संघ (1978) 2 एस. सी. सी. 39 वाले मामले में इस न्यायालय ने प्रस्तुत मामले जैसे मामले में अभियुक्त को उन्मोचित करने की मजिस्ट्रेट की सक्षमता पर विचार करते हुए यह अभिनिर्धारित किया –
>
> > '3. .....सुपुर्दगी न्यायालय को इस बात के बारे में अपना समाधान करने की प्रक्रिया शुरू करने की छूट नहीं है कि कोई प्रथमदृष्ट्या मामला गुणागुण के आधार पर बना लिया गया है । पूर्व संहिता के अधीन एक बार यह अधिकारिता उसमें निहित कर दी गई थी किंतु वर्तमान संहिता में अब इसे समाप्त कर दिया गया है । इसलिए यह अभिनिर्धारित करना कि प्रथमदृष्ट्या समाधान के लिए

---

[1] (2012) 12 एस. सी. सी. 406.

भी वह गुणागुण पर विचार कर सकता है, विद्यमान गैर-वैवेकिक स्वरूप में धारा 207क (पुरानी संहिता) के पुनर्निर्माण में संसद् के प्रयोजन को निष्फल करना होगा । इस परिवर्तन द्वारा एक अभियान आशयित था और यदि व्याख्यात्मक रूप में हम यह अभिनिर्धारित करें कि मजिस्ट्रेट के समक्ष विचारण का सपरिधान पूर्वाभ्यास सही है तो यह सफलतापूर्वक पराजित हो जाएगा । हमारे दृष्टिकोण से, निरीक्षण का संकुचित विवर, जिसके माध्यम से सुपुर्दगी मजिस्ट्रेट को मामले पर दृष्टिपात करना होता है, उसे केवल इस बात का अभिनिश्चय करने के लिए सीमित करता है कि क्या मामला, जैसा कि पुलिस रिपोर्ट से प्रकट किया गया है, मजिस्ट्रेट को केवल मात्र सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय प्रतीत होता है । मान लिया जाए कि यह तथ्य, जैसा कि पुलिस रिपोर्ट में कहा गया है, सही है.....तो मजिस्ट्रेट को केवल सेशन न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए सुपुर्द करना होता है । यदि गलती से दंड संहिता की कोई गलत धारा उद्धृत कर दी जाती है तो वह उस पहलू पर विचार कर सकेगा । ..... यदि किसी सामग्री द्वारा असमर्थित बनाए गए तथ्यों को पुलिस द्वारा रिपोर्ट किया गया है और यह सेशन अपराध दिखाई देने लगता है, तो सेशन न्यायालय के लिए पूर्ण रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 227 के अधीन अभियुक्त को उन्मोचित करने की छूट है । यह उपबंध अभियुक्त की अभिकथित व्यथा का ध्यान रखती है ।'

इस प्रकार, पूर्वोक्त निर्णय से यह स्पष्ट है कि जब अपराध सेशन न्यायालय द्वारा संज्ञान लिए जाने वाला हो, तो मजिस्ट्रेट मामले में जांच और अभियुक्त को उन्मोचित नहीं कर सकता है । उसके लिए अभिलेख पर के साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् भी ऐसा करना अनुज्ञेय नहीं है क्योंकि उसे मामले में जांच या विचार करने की कतई कोई अधिकारिता नहीं है । उसका सरोकार यह देखने तक होना चाहिए कि दंड संविधि के किन उपबंधों का उल्लेख किया गया है और यदि मामला सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय होना उल्लिखित किया गया है, तो उसे मामले को सेशन न्यायालय को सुपुर्द करना होगा और इसके अतिरिक्त कुछ नहीं करेगा ।

15. इस प्रकार, हमारी यह सुविचारित राय है कि मजिस्ट्रेट का अपीलार्थी को उन्मोचित करने से कोई लेना-देना नहीं था । वास्तव

में, पुरानी दंड प्रकिया संहिता में धारा 207क में मजिस्ट्रेट को ऐसी शक्ति का प्रयोग करने के लिए सशक्त किया गया था । तथापि, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 में उक्त धारा 207क के समरूप कोई उपबंध नहीं है । वह मामले को विधि के अधीन सेशन न्यायालय को सुपुर्द करने के लिए आबद्ध है, जहां पर उन्मोचन के ऐसे अनुप्रयोजन पर विचार किया जाएगा । इसलिए उन्मोचन का आदेश अधिकारिता रहित होने के कारण शून्य है ।

* * * * *

17. न्यायालय को वहां संज्ञान न लेने की प्रक्रिया का आश्रय लेकर दोषमुक्ति का आदेश पारित नहीं करना चाहिए जहां अन्वेषक अभिकरण द्वारा प्रथमदृष्ट्या मामला बनाया गया हो । इसके अलावा, न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह विपदग्रस्त के अधिकारों और हितों की रक्षा करे, जो उन्मोचन कार्यवाहियों में भाग नहीं ले पाता है । धारा 227 के लागू होने के प्रक्रम पर न्यायालय को यह पता लगाने के लिए साक्ष्य का विश्लेषण करना होता है कि क्या अभियुक्त के विरुद्ध कार्यवाही करने के लिए पर्याप्त आधार है या नहीं । अतः, इस प्रक्रम पर साक्ष्य का मूल्यांकन अनुज्ञेय नहीं है । {पी. विजयन **बनाम** केरल राज्य [(2010) 2 एस. सी. सी. 398] और आर. एस. मिश्रा **बनाम** उड़ीसा राज्य [(2011) 2 एस. सी. सी. 689] वाले मामले देखें}।

18. संहिता की स्कीम, विशिष्ट रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 207 से 209 में मजिस्ट्रेट के लिए यह आज्ञापक है कि जब आरोप पत्र फाइल किया जाता है तो मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द किया जाए । इन उपबंधों के संयुक्त पठन से यह बात भलीभांति स्पष्ट हो जाती है कि पुलिस द्वारा संस्थित मामले में अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय मामले की सुपुर्दगी आज्ञापक है । संहिता की स्कीम में केवल यह उपबंधित है कि मजिस्ट्रेट इस बात का अवधारण कर सकता है कि क्या रिपोर्ट में उल्लिखित तथ्यों से सेशन न्यायालय द्वारा अनन्य रूप से विचारणीय अपराध बनता है या नहीं । एक बार जब वह इस निष्कर्ष पर पहुंच जाता है कि रिपोर्ट में अभिकथित तथ्यों से अनन्य रूप से सेशन न्यायालय द्वारा विचारणीय अपराध बनता है, तो उसे मामला सेशन न्यायालय को सुपुर्द करना होगा ।

19. मजिस्ट्रेट दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 190 के अधीन

अपनी शक्ति का प्रयोग करते हुए संज्ञान करने से इनकार कर सकता है, यदि उसे अभिलेख की सामग्री से ऐसा उपयुक्त लगता हो । मजिस्ट्रेट का ऐसी स्थिति में यह समाधान होना आवश्यक है कि शिकायत, मामला डायरी, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 161 और 164 के अधीन अभिलिखित साक्षियों के कथनों, यदि कोई हों, से कोई अपराध नहीं बनता है । इस प्रक्रम पर, मजिस्ट्रेट एक न्यायिक कृत्य का निर्वहन करता है । तथापि, वह अभिलेख के साक्ष्य का मूल्यांकन नहीं कर सकता है और निष्कर्ष नहीं निकाल सकता है कि कौन सा साक्ष्य स्वीकार्य है, या किस का अवलंब लिया जा सकता है । इस प्रकार, इस प्रक्रम पर साक्ष्य का मूल्यांकन अननुज्ञेय है । मजिस्ट्रेट मामले में साक्ष्य और अधिसंभाव्यता के संतुलन का विवेचन करने के लिए सक्षम नहीं है ।"

21. उपर्युक्त विधिक स्थिति को दृष्टिगत करते हुए, अब हम उन परिस्थितियों की चर्चा करेंगे जिनके अधीन सेशन न्यायाधीश द्वारा संज्ञान किया गया था । यहां ऐसा मामला है जहां पुलिस रिपोर्ट में, जो मजिस्ट्रेट को प्रस्तुत की गई थी, अन्वेषक अधिकारी ने अपीलार्थियों को अभियुक्त व्यक्तियों के रूप में शामिल नहीं किया था । शिकायतकर्ता ने विद्वान् मजिस्ट्रेट के समक्ष अपीलार्थियों के विरुद्ध भी संज्ञान करने की प्रार्थना करते हुए आवेदन फाइल किया था । मजिस्ट्रेट द्वारा इस आवेदन पर सम्यक् रूप से विचार किया गया और नामंजूर कर दिया गया । इस प्रकार, इस मामले में यह स्थिति नहीं है कि जहां संहिता की धारा 173(8) के अधीन फाइल अन्वेषण रिपोर्ट/आरोप पत्र में अपीलार्थियों को आलिप्त किया गया हो और अपीलार्थियों की यह दलील हो कि उन्हें गलत रूप से आलिप्त किया गया है । इसके विपरीत, पुलिस ने स्वयं अपनी अंतिम रिपोर्ट में यह उल्लेख किया था कि अपीलार्थियों के विरुद्ध मामला नहीं बनता है । इस पर शिकायतकर्ता द्वारा आक्षेप किया गया, जो मजिस्ट्रेट से यह चाहता था कि अपीलार्थियों को भी समन किया जाए और शिकायतकर्ता द्वारा इस प्रयोजन के लिए संहिता की धारा 190 के अधीन परिवाद फाइल किया गया । अपीलार्थियों ने उक्त आवेदन का उत्तर दिया और मजिस्ट्रेट द्वारा दलीलें सुनने के पश्चात् आवेदन नामंजूर कर दिया गया । इससे यह दर्शित होता है कि मजिस्ट्रेट का आदेश सम्यक् रूप से मस्तिष्क का प्रयोग करके पारित किया गया था, जिसके द्वारा उसने अपीलार्थियों के विरुद्ध अभिकथित अपराध का संज्ञान करने से इनकार कर दिया तथा केवल अपीलार्थियों के पुत्र के विरुद्ध ही संज्ञान किया । इस आदेश को चुनौती नहीं दी गई । प्रसामान्यतः,

ऐसे मामले में, यह नहीं कहा जा सकता है कि मजिस्ट्रेट ने सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करते समय "निष्क्रिय भूमिका" निभाई थी । इस प्रकार, उसने सम्यक् रूप से मस्तिष्क का प्रयोग करने के पश्चात् संज्ञान किया था और इस प्रक्रिया में सक्रिय भूमिका निभाई थी । स्थिति तब भिन्न होती यदि मजिस्ट्रेट ने परिवाद-आवेदन को सेशन न्यायालय को मामला सुपुर्द करते समय केवल प्रेषित किया होता । इस पृष्ठभूमि में, हमारी यह राय है कि यह एक ऐसा मामला है, जहां मजिस्ट्रेट ने अपराध का संज्ञान किया था । ऐसा होते हुए भी, सेशन न्यायालय ने परिवादी द्वारा उसके समक्ष किए गए उसी प्रकार के आवेदन पर उसके उपरांत संज्ञान लिया । प्रसामान्यतः, ऐसी कार्रवाई अनुज्ञेय नहीं होगी ।

22. अगला प्रश्न यह है कि क्या यह न्यायालय संविधान के अनुच्छेद 136 के अधीन अपनी शक्ति का प्रयोग करके ऐसे आदेश पर रोक लगा सकता है । हमारा यह निष्कर्ष है कि मजिस्ट्रेट का अपीलार्थियों के विरुद्ध संज्ञान लेने से इनकार करने वाला आदेश पुनरीक्षण-योग्य है । पुनरीक्षण की इस शक्ति का उच्चतर न्यायालय द्वारा प्रयोग किया जा सकता है, जो कि इस मामले में स्वयं सेशन न्यायालय होगा और वह या तो पुनरीक्षण अर्जी पर, जो व्यथित पक्षकार द्वारा फाइल की जा सकती है, या स्वयं पुनरीक्षण न्यायालय द्वारा, स्वप्रेरणा से प्रयोग की जा सकती है । अतः, सेशन न्यायालय अपनी पुनरीक्षण-संबंधी अधिकारिता का प्रयोग करते हुए आदेश पारित करने के लिए शक्ति-विहीन नहीं है । स्थिति तब भिन्न रही होती यदि उसने अपीलार्थियों के विरुद्ध अपराध का संज्ञान लेते हुए, उन्हें कोई अवसर दिए बिना, आक्षेपित आदेश पारित किया होता, चूंकि उस आदेश से, जो विद्वान् मजिस्ट्रेट द्वारा पारित किया गया था, इन अपीलार्थियों के पक्ष में एक मूल्यवान अधिकार प्रोद्भूत हुआ था । तथापि, प्रस्तुत मामले में, हमारा यह निष्कर्ष है कि अपीलार्थियों को एक उचित अवसर दिया गया था और उन्होंने परिवाद-आवेदन का उत्तर फाइल किया था तथा सेशन न्यायालय ने भी उनकी दलीलें सुनी थी । इस कारण से, हम आक्षेपित आदेश में हस्तक्षेप करने के लिए तैयार नहीं हैं और इस अपील को खारिज करते हैं ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

राजस्थान राज्य

बनाम

जगराज सिंह उर्फ **हंसा**

29 जून, 2016

न्यायमूर्ति अभय मनोहर सप्रे और न्यायमूर्ति अशोक भूषण

स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (1985 का 61) – धारा 42(1) और 42(2) – तलाशी और अभिग्रहण – थाना अधिकारी द्वारा गुप्त इत्तिला प्राप्त होने पर उसे लेखबद्ध किया जाना – इत्तिला की प्रति अपने अव्यवहित ज्येष्ठ अधिकारी को भेजा जाना – थाना अधिकारी द्वारा इत्तिला की जो प्रति सर्किल आफिसर को भेजी गई थी, वह उसके द्वारा लेखबद्ध इत्तिला के अनुसार नहीं थी, अतः, उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई गलती नहीं की है कि धारा 42(2) का भंग हुआ था, इसलिए अभियुक्त की दोषमुक्ति उचित है ।

स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 – धारा 42(2) का परंतुक – वारंट के बिना सूर्यास्त के पश्चात् तलाशी – थाना अधिकारी द्वारा गुप्त इत्तिला प्राप्त होने पर तलाशी लेने के लिए अग्रसर होने से पूर्व धारा 42 की उपधारा (1) के परंतुक या धारा 42 की उपधारा (2) द्वारा यथापरिकल्पित विश्वास का कोई आधार लेखबद्ध न किए जाने के कारण धारा 42(2) के परंतुक का अतिक्रमण हुआ था क्योंकि तलाशी सूर्यास्त के पश्चात् ली गई थी, अतः उच्च न्यायालय द्वारा की गई अभियुक्त की दोषमुक्ति उचित है ।

मामले के तथ्यों के अनुसार, थाना अधिकारी, भद्रा, हनुमानगढ़, राजस्थान को तारीख 9 अगस्त, 1998 को रात्रि के 8.00 बजे एक गुप्त इत्तिला प्राप्त हुई कि अफीम लिए हुए एक जीप सिरसा होते हुए हरियाणा से गुजरेगी । उपरोक्त इत्तिला के संबंध में एक मेमो बनाया गया जिसकी रोजनामचा में प्रविष्टि भी की गई और उसी दिन 8.05 बजे अपराह्न में एक कांस्टेबल के माध्यम से यह इत्तिला सर्किल आफिसर को भी भेजी गई । थाना अधिकारी कतिपय अन्य पुलिस कार्मिकों और दो स्वतंत्र साक्षियों को लेकर रवाना हुआ । रात्रि में 10.15 बजे जीप आती हुई

दिखाई दी जिसमें एक ड्राइवर और दो अन्य व्यक्ति बैठे हुए थे जिन्होंने अपना नाम जगराज सिंह और किशन लाल बताया । जीप में थैले पड़े हुए थे । थाना अधिकारी ने जगराज और कृष्ण लाल को नोटिस दिया और उसके पश्चात् तलाशी ली गई । जीप से अफीम पाउडर भरे हुए नौ थैले बरामद किए गए, जिनके लिए अभियुक्तों के पास कोई लाइसेंस नहीं था । अफीम पाउडर का वजन किया गया और प्रत्येक थैले से 200-200 ग्राम के दो-दो नमूने लिए गए । घटनास्थल पर अभिग्रहण मेमो बनाया गया । दोनों अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया । सामग्री मुहरबंद की गई और पुलिस थाने पहुंचने के पश्चात् प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । नमूने न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला भेजे गए और सकारात्मक रिपोर्ट प्राप्त होने पर दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 8/15 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया । विद्वान् सेशन न्यायाधीश के समक्ष अभियुक्तों ने यह दलील दी कि अधिनियम की धारा 42(1) और 42(2) तथा धारा 50 के आज्ञापक उपबंधों का पालन नहीं किया गया है ; दोनों स्वतंत्र साक्षियों ने बरामदगी के स्थान का समर्थन नहीं किया है और संपूर्ण कार्रवाई पुलिस थाने में की गई थी ; घटना की शृंखला मौजूद नहीं है और परीक्षण रिपोर्ट ग्राह्य और पढ़ने योग्य नहीं है । अभियुक्तों की दलीलों का विद्वान् विशेष लोक अभियोजक द्वारा खंडन किया गया । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि थाना अधिकारी द्वारा प्राप्त इत्तिला को लेखबद्ध किया गया था और इसे सर्किल आफिसर को भेजा गया था । इसलिए थाना अधिकारी ने अधिनियम की धारा 42(1) और 42(2) के उपबंधों का पूर्णतः अनुपालन किया था । सेशन न्यायाधीश ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यान यात्रियों को परिवहन करने के लिए प्रयुक्त किया जा रहा था, इसलिए यान स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 43 के स्पष्टीकरण के अनुसार लोक स्थल की परिधि के अंतर्गत आता था । अतः तलाशी लेने के लिए किसी वारंट या प्राधिकार की कोई आवश्यकता नहीं थी । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने पूर्वोक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के पश्चात् दोनों अभियुक्तों को दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया । विद्वान् सेशन न्यायाधीश के निर्णय और आदेश के विरुद्ध उच्च न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्च न्यायालय द्वारा दोनों दांडिक अपीलें मंजूर करते हुए निम्नलिखित कारण और निष्कर्ष दिए : (i) गुप्त इत्तिला जो प्रदर्श पी-14 के रूप में और प्रदर्श पी-21 रोजनामचा में लेखबद्ध की गई थी, उसमें यह

उल्लिखित नहीं था कि "दो व्यक्ति झुंझुन से आएंगे जो अफीम पाउडर लिए हुए हैं", जबकि सर्किल आफिसर, नोहर को भेजी गई इत्तिला (प्रदर्श पी-15) में उपरोक्त तथ्य का उल्लेख था । उपरोक्त को देखते हुए, धारा 42(2) का अनुपालन नहीं किया गया था । (ii) धारा 42 की उपधारा (1) के परंतुक में यह उपबंधित है कि यदि ऐसे अधिकारी के पास विश्वास करने के कारण हैं तो वह तलाशी विश्वास के कारणों को लेखबद्ध करने के पश्चात् ले सकेगा, जबकि वर्तमान मामले में उक्त परंतुक द्वारा यथा परिकल्पित विश्वास का कोई आधार लेखबद्ध नहीं किया गया था और तलाशी सूर्यास्त के पश्चात् ली गई थी जिससे धारा 42(2) के परंतुक के उपबंधों का अतिक्रमण हुआ है । (iii) जीप, जो वीरा राम की निजी जीप थी, उसे लोक परिवहन यान के रूप में नहीं माना जा सकता है । अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं लाया गया कि उसके पास लोक परिवहन यान के लिए कोई परमिट था । इसलिए अधिनियम की धारा 43 लागू नहीं होती थी । (iv) इसके अतिरिक्त, गुप्त इत्तिला भेदिए से प्राप्त हुई थी और वह लेखबद्ध की गई थी और उसके पश्चात् तलाशी ली गई थी । वर्तमान मामला लोक स्थल पर अचानक ली गई तलाशी का नहीं था । (v) सामग्री के नमूने की मुहरबंदी समुचित नहीं थी । (vi) स्वतंत्र साक्षियों ने अभियोजन के पक्षकथन का कतई समर्थन नहीं किया है । उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर राजस्थान राज्य ने अभियुक्त जगराज सिंह की दोषमुक्ति के निर्णय के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 42(2) के अधीन यह अपेक्षित है कि जहां कोई अधिकारी, किसी इत्तिला को उपधारा (1) के अधीन लिखता है, वहां वह उसकी एक प्रति अपने अव्यवहित पदीय वरिष्ठ को तत्काल भेजेगा । इत्तिला, प्रदर्श पी-15, जो सर्किल आफिसर, नोहर को भेजी गई थी, वह प्रदर्श पी-14 और प्रदर्श पी-24 में लेखबद्ध इत्तिला के अनुसार नहीं थी । अतः, उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई गलती नहीं की है कि धारा 42(2) का भंग हुआ था । एक अन्य पहलू जिस पर विचार किए जाने की आवश्यकता है, वह धारा 42(1) के परंतुक के अननुपालन के बारे में है जो उच्च न्यायालय द्वारा पाया गया है । धारा 42(1) से यह उपदर्शित होता है कि कोई प्राधिकृत अधिकारी वारंट या प्राधिकार के बिना सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच तलाशी ले सकता है । स्कीम से यह उपदर्शित होता है कि यदि

तलाशी सूर्यास्त और सूर्योदय के बीच ली जानी है, तो वारंट की आवश्यकता होगी, जब तक कि ऐसे अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण न हो कि तलाशी वारंट या प्राधिकार अपराधी को निकल भागने के लिए अवसर दिए बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता है और उसके विश्वास के आधारों को लेखबद्ध किया जाना आवश्यक है । वर्तमान मामले में, ऐसा कोई पक्षकथन नहीं है कि धारा 42 की उपधारा (1) के परंतुक या धारा 42 की उपधारा (2) द्वारा यथापरिकल्पित विश्वास का कोई आधार थाना अधिकारी, जो तलाशी लेने के लिए अग्रसर हुआ था, द्वारा लेखबद्ध किया गया था । थाना अधिकारी अभि. सा. 11 के रूप में उपसंजात हुए और अपने कथन में भी ऐसा कोई पक्षकथन नहीं रखा कि उपधारा (1) के परंतुक द्वारा अपेक्षित अनुसार उसने कहीं अपने विश्वास के आधारों को लेखबद्ध किया था । विशेष न्यायाधीश ने धारा 42(1) के परंतुक के अनुपालन के बारे में यह अभिनिर्धारित किया कि तलाशी लिया गया यान यात्रियों को ढोने के लिए प्रयुक्त किया जा रहा था और इस बात का उल्लेख स्पष्ट रूप से यान के स्वामी वीरा राम द्वारा किया गया है, इसलिए अधिनियम की धारा 43 के स्पष्टीकरण के अनुसार यान एक लोक परिवहन यान था और ऐसे यान की तलाशी लेने के लिए किसी वारंट या प्राधिकार की आवश्यकता नहीं थी । उच्च न्यायालय ने विशेष न्यायाधीश के उपरोक्त निष्कर्षों को उलट दिया । अतः, यह न्यायालय इस बात की परीक्षा करेगा कि क्या वर्तमान मामले में धारा 43 लागू होती है जिसमें धारा 42(1) के परंतुक की अपेक्षा को दूर किया गया है । धारा 43 में "लोक स्थान" पद को परिभाषित किया गया है जिसमें कोई लोक प्रवहण भी सम्मिलित है । अधिनियम में यथा प्रयुक्त "लोक प्रवहण" शब्द को एक ऐसे प्रवहण के रूप में समझा जाना चाहिए जिसे जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त किया जा सकता है । मोटर यान अधिनियम, 1939 और उसके पश्चात् मोटर यान अधिनियम, 1988 मोटर यानों से संबंधित विधि को विनियमित करने के लिए अधिनियमित किए गए थे । जो यान जनता के लिए प्रयुक्त किए जा सकते हैं वे लोक मोटर यान हैं जिनके लिए आवश्यक परमिट अभिप्राप्त किया जाना आवश्यक है । मोटर यान अधिनियम, 1988 के अनुसार, परमिट अभिप्राप्त किए बिना कोई यान यात्रियों को ढोने के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है । वर्तमान मामले में, अभियोजन का यह पक्षकथन नहीं है कि जीप एच आर 24 4057 के पास यात्रियों को ढोने के लिए कोई परमिट था । उच्च न्यायालय ने साक्ष्य पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यह उपदर्शित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि जीप

को लोक परिवहन यान के रूप में चलाने के लिए कोई परमिट था । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यहां तक कि करतारा राम ने भी, जो यान के स्वामी वीरा राम के अनुसार यान का उपयोग कर रहा था, इस बात का समर्थन नहीं किया कि जीप एक लोक परिवहन यान के रूप में प्रयुक्त किया जाता था । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि निजी जीप को लोक परिवहन यान के रूप में नहीं माना जा सकता है । उपर्युक्त निष्कर्षों को अधिक्षिप्त करने के लिए कुछ नहीं है । हमने वीरा राम के कथन का भी परिशीलन किया है, जिस कथन में उसने कहीं भी यह नहीं कहा कि उसके पास यान को परिवहन यान के रूप में चलाने के लिए परमिट है । उसने यह कथन किया है कि "....मैंने यह जीप करतारा राम, निवासी....जो मेरा नातेदार है को यात्रियों को ढोने के लिए दी हुई थी" । स्वीकृत रूप से, जीप पुलिस द्वारा पकड़ी और अभिगृहीत की गई थी । उपरोक्त को देखते हुए, यह नहीं कहा जा सकता है कि जीप धारा 43 के स्पष्टीकरण के अर्थांतर्गत एक लोक प्रवहण था । इसलिए, स्पष्ट रूप से धारा 43 लागू नहीं होती है और धारा 42(1) के परंतुक के उपबंधों का अनुपालन किया जाना अपेक्षित था और पूर्वोक्त कानूनी आज्ञापक उपबंधों का अनुपालन नहीं किया गया था, इसलिए उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि अपास्त करके कोई गलती नहीं की है । (पैरा 13, 14, 15, 16 और 17)

एक और पहलू है जिसका उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है । प्रस्तुत मामला ऐसा है जहां स्वयं अभियोजन पक्ष का यह पक्षकथन है कि गुप्त इत्तिला भेदिए से प्राप्त हुई थी और उस इत्तिला को प्रदर्श पी-14 और प्रदर्श पी-21 रोजनामचे में लेखबद्ध किया गया था और उसके पश्चात् थाना अधिकारी ने यकायक एक लोक स्थान पर तलाशी ली । थाना अधिकारी ने अपने कथन में भी धारा 42 की अनुपालना को साबित करने के लिए तथ्यों और अपने पक्षकथन का उल्लेख किया । जब धारा 42(1) के अधीन इत्तिला लेखबद्ध करने के पश्चात् तलाशी ली जाती है, तो धारा 42 के उपबंधों को अनुपालन किया जाना आवश्यक है । जहां तक धारा 42(1) के परंतुक के अनुपालन का संबंध है, प्रस्तुत मामला ऐसा नहीं है जहां दलील दी गई हो कि सारभूत अनुपालन किया गया था, बल्कि धारा 42(1) का पूरी तरह से अननुपालन किया गया है । जैसा कि ऊपर मत व्यक्त किया गया है, धारा 43 लागू नहीं होने के कारण तलाशी धारा 42 के उपबंधों का अनुपालन करने के पश्चात् की जानी चाहिए थी । अतः, इस न्यायालय का यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय ने ठीक ही यह अभिनिर्धारित किया है

कि धारा 42(1) और धारा 42(2) के अननुपालन की बात अभिलेख से साबित होती है और उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि के आदेश को अपास्त करके कोई गलती नहीं की है । (पैरा 25)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2009]	(2009) 8 एस. सी. सी. 539 : **करनैल सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	24
[2008]	(2008) 2 एस. सी. सी. 370 : **राजस्व निदेशालय और एक अन्य** बनाम **मोहम्मद निसार होलिया** ;	18
[2002]	(2002) 4 एस. सी. सी. 229 : **बेकोदन अब्दुल रहीमन** बनाम **केरल राज्य** ;	23
[1999]	(1999) 6 एस. सी. सी. 172 : **पंजाब राज्य** बनाम **बलदेव सिंह** ;	22, 23
[1996]	(1996) 2 एस. सी. सी. 37 : **हिमाचल प्रदेश राज्य** बनाम **पृथी चंद और एक अन्य** ;	22
[1995]	(1995) 3 एस. सी. सी. 610 : **सैय्यद मोहम्मद सैय्यद उमर सैय्यद और अन्य** बनाम **गुजरात राज्य** ;	10, 21, 22
[1994]	(1994) 3 एस. सी. सी. 299 : **पंजाब राज्य** बनाम **बलबीर सिंह** ।	9, 19, 21, 22

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2006 की दांडिक अपील सं. 1233.

2001 की एकल न्यायपीठ दांडिक अपील सं. 98 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर के तारीख 24 नवम्बर, 2003 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री विवेक रंजन मोहंती, पुनीत परिहार और मिलिंद कुमार

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री सौमेन टी., आर. डी. राठोर और डा. कैलाश चंद

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अशोक भूषण ने दिया ।

न्या. भूषण – यह अपील राजस्थान राज्य द्वारा 2001 की एकल न्यायपीठ दांडिक अपील सं. 98 में राजस्थान उच्च न्यायालय, जोधपुर के तारीख 24 नवम्बर, 2003 के उस निर्णय के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा विशेष न्यायाधीश (स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ मामले), हनुमानगढ़, राजस्थान के तारीख 31 मई, 2000 के उस निर्णय को, जिसके द्वारा प्रत्येक अभियुक्त को 12 वर्ष का कठोर कारावास भोगने के साथ-साथ प्रत्येक को 1,20,000/- रुपए के जुर्माने का संदाय करने का दंडादेश दिया गया था, अपास्त करने के पश्चात् अभियुक्तों को स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 की धारा 8/15 के अधीन आरोपों से दोषमुक्त कर दिया गया । जुर्माना जमा न करने की दशा में प्रत्येक अभियुक्त को एक वर्ष का अतिरिक्त कठोर कारावास भोगना था । अभियुक्त किशन लाल ने 2000 की एकल न्यायपीठ दांडिक अपील सं. 2000 और अभियुक्त जगराज सिंह **उर्फ** हंसा ने 2001 की एकल न्यायपीठ दांडिक अपील सं. 397 फाइल की थी । उच्च न्यायालय द्वारा दोनों अपीलें मंजूर किए जाने पर राजस्थान राज्य द्वारा जगराज सिंह **उर्फ** हंसा की दोषमुक्ति के विरुद्ध यह 2006 की दांडिक अपील सं. 1233 फाइल की गई है । इस न्यायालय द्वारा 2006 की दांडिक अपील सं. 1232 पहले ही खारिज की जा चुकी है ।

2. अभियोजन पक्षकथन संक्षेप में इस प्रकार है – शिशुपाल सिंह, थाना अधिकारी, भद्रा को तारीख 9 अगस्त, 1998 को अपराह्न में 8.00 बजे एक गुप्त इत्तिला प्राप्त हुई कि एक नीली जीप सं. एच आर 24 4057 आएगी और सिरसा होते हुए हरियाणा से गुजरेगी । उपरोक्त इत्तिला के संबंध में एक मेमो बनाया गया जिसकी रोजनामचा में प्रविष्टि भी की गई और उसी दिन अपराह्न में 8.05 बजे एक कांस्टेबल के माध्यम से यह इत्तिला सर्किल आफिसर को भी भेजी गई । थाना अधिकारी कतिपय अन्य पुलिस कार्मिकों के साथ दो स्वतंत्र साक्षियों अर्थात् हवा सिंह और करम सिंह को लेकर रवाना हुआ । अपराह्न में 10.15 बजे जीप एच आर 24 4057 सहाबा से आती हुई दिखाई दी । यह उल्लेख किया गया कि उसमें एक ड्राइवर और दो अन्य व्यक्ति बैठे हुए थे जिन्होंने अपना नाम जगराज

सिंह और किशन लाल बताया । जीप में थैले पड़े हुए थे । थाना अधिकारी ने जगराज और कृष्ण लाल को नोटिस दिया और उसके पश्चात् तलाशी ली गई । जीप से अफीम पाउडर भरे हुए नौ थैले बरामद किए गए, जिनके लिए अभियुक्तों के पास कोई लाइसेंस नहीं था । अफीम पाउडर का वजन किया गया और प्रत्येक थैले से 200-200 ग्राम के दो-दो नमूने लिए गए । घटनास्थल पर अभिग्रहण मेमो बनाया गया । दोनों अभियुक्तों को गिरफ्तार किया गया । सामग्री मुहरबंद की गई और पुलिस थाने पहुंचने के पश्चात् प्रथम इत्तिला रिपोर्ट संख्यांक 291/98 रजिस्ट्रीकृत की गई । नमूने न्यायालयिक विज्ञान प्रयोगशाला, जयपुर भेजे गए और सकारात्मक रिपोर्ट प्राप्त होने पर दोनों अभियुक्तों के विरुद्ध अधिनियम की धारा 8/15 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया । अभियोजन पक्ष ने 12 साक्षी पेश किए जिनमें थाना अधिकारी, शिशुपाल सिंह अभि. सा. 11 के रूप में सम्मिलित था । दो स्वतंत्र साक्षियों अभि. सा. 2 हवा सिंह और अभि. सा. 3 करम सिंह को पक्षद्रोही घोषित किया गया । अभियोजन पक्ष ने दस्तावेज प्रदर्श पी-1 से पी-40 भी प्रस्तुत किए । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन अभियुक्तों के कथन अभिलिखित किए गए । श्री राम मीणा, तत्कालीन सर्किल आफिसर, नोहर की प्रतिरक्षा साक्षी-1 के रूप में परीक्षा की गई ।

3. विद्वान् सेशन न्यायाधीश के समक्ष अभियुक्तों ने यह दलील दी कि स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 42(1) और 42(2) तथा धारा 50 के आज्ञापक उपबंधों का पालन नहीं किया गया है ; दोनों स्वतंत्र साक्षियों ने बरामदगी के स्थान का समर्थन नहीं किया है और संपूर्ण कार्रवाई पुलिस थाने में की गई थी ; घटना की शृंखला मौजूद नहीं है जिससे कि अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया जा सके । परीक्षण रिपोर्ट ग्राह्य और पढ़ने योग्य नहीं है । अभियुक्तों की दलीलों का विद्वान् विशेष लोक अभियोजक द्वारा खंडन किया गया । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित किया कि थाना अधिकारी द्वारा प्राप्त इत्तिला को प्रदर्श पी-14 के रूप में अभिलिखित किया गया था और इसे प्रदर्श पी-15 द्वारा सर्किल आफिसर, नोहर को भेजा गया था । इसलिए थाना अधिकारी ने धारा 42(1) और 42(2) के उपबंधों का पूर्णतः अनुपालन किया था । सेशन न्यायाधीश ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यान यात्रियों को परिवहन करने के लिए प्रयुक्त किया जा रहा था, जैसा कि अभि. सा. 4 वीरा राम द्वारा स्पष्ट रूप से कथन किया गया है, इसलिए यान स्वापक ओषधि और

मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 43 के स्पष्टीकरण के अनुसार लोक स्थल की परिधि के अंतर्गत आता था । अतः तलाशी लेने के लिए किसी वारंट या प्राधिकार की कोई आवश्यकता नहीं थी । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने यह भी पाया कि धारा 50 का अनुपालन किया गया था चूंकि तलाशी लेने से पूर्व दोनों अभियुक्तों को नोटिस जारी किए गए थे । सेशन न्यायाधीश ने यह उल्लेख किया कि यद्यपि दोनों स्वतंत्र साक्षी पक्षद्रोही हो गए हैं किंतु अभियोजन पक्ष की ओर से पुलिस अधिकारियों और पदधारियों की परीक्षा कराई गई है जिनसे दुश्मनी का तथ्य साबित नहीं हुआ है । घटना की शृंखला पूर्ण है । विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने पूर्वोक्त निष्कर्ष पर पहुंचने के पश्चात् दोनों अभियुक्तों को दोषसिद्ध किया ।

4. उच्च न्यायालय द्वारा किशन लाल और जगराज सिंह द्वारा फाइल की गई दोनों दांडिक अपीलों का तारीख 24 नवम्बर, 2003 के सामान्य निर्णय द्वारा विनिश्चय किया गया । उच्च न्यायालय ने अपीलों को मंजूर करते हुए निम्नलिखित कारण और निष्कर्ष दिए :–

(i) गुप्त इत्तिला जो प्रदर्श पी-14 के रूप में और प्रदर्श पी-21 रोजनामचा में अभिलिखित की गई थी, उसमें यह उल्लिखित नहीं था कि "दो व्यक्ति झुंझुन से आएंगे जो अफीम पाउडर लिए हुए हैं", जबकि सर्किल आफिसर, नोहर को भेजी गई इत्तिला, प्रदर्श पी-15, जो सर्किल आफिसर, नोहर को प्राप्त हुई थी, में उपरोक्त तथ्य का उल्लेख था जो कि प्रदर्श पी-14 और पी-21 में गायब था । उपरोक्त को देखते हुए, धारा 42(2) का अनुपालन नहीं किया गया था ।

(ii) धारा 42 की उपधारा (1) के परंतुक में यह उपबंधित है कि यदि ऐसे अधिकारी के पास विश्वास करने के कारण हैं तो वह तलाशी विश्वास के आधारों को लेखबद्ध करने के पश्चात् ले सकेगा, जबकि वर्तमान मामले में परंतुक द्वारा यथापरिकल्पित विश्वास का कोई आधार लेखबद्ध नहीं किया गया था और तलाशी सूर्यास्त के पश्चात् ली गई थी जिससे धारा 42(2) के परंतुक के उपबंधों का अतिक्रमण हुआ है ।

(iii) जीप, जो वीरा राम की निजी जीप थी, उसे लोक परिवहन यान के रूप में नहीं माना जा सकता है । अभिलेख पर कोई साक्ष्य नहीं लाया गया कि लोक परिवहन यान के लिए कोई परमिट था । वीरा राम के साले अर्थात् करतारा राम ने इस पक्षकथन का समर्थन

नहीं किया कि यान एक लोक परिवहन यान था । अधिनियम की धारा 43 लागू नहीं होती थी, इसलिए निचले न्यायालय का यह मत कि धारा 42 का अनुपालन आवश्यक नहीं था, गलत है ।

(iv) इसके अतिरिक्त, गुप्त इत्तिला भेदिए से प्राप्त हुई थी और वह लेखबद्ध की गई थी और उसके पश्चात् तलाशी ली गई थी । वर्तमान मामला लोक स्थल पर अचानक ली गई तलाशी का नहीं था ।

(v) सामग्री के नमूने की मुहरबंदी समुचित नहीं थी और न ही नमूना मुहर स्टाक-घर में जमा की गई थी । मुहर, जिसके द्वारा सामग्री मुहरबंद की गई थी, कहीं सुरक्षित नहीं रखी गई थी और वह उस अधिकारी के कब्जे में रही जिसने तलाशी ली थी ।

(vi) स्वतंत्र साक्षियों ने अभियोजन के पक्षकथन का कतई समर्थन नहीं किया है ।

5. राजस्थान राज्य उच्च न्यायालय के निर्णय से व्यथित होकर इस अपील में आया है । अपीलार्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि धारा 42(1) और 42(2) के उपबंधों का अनुपालन किया गया था और इसके अतिरिक्त यान का उपयोग यात्रियों को ढोने के लिए किए जाने, जैसा कि यान के स्वामी वीरा राम, अभि. सा. 4 के कथन में आया है, और धारा 43 के फलस्वरूप तलाशी लोक स्थल पर लिए जाने के कारण धारा 42 के अनुपालन की कोई आवश्यकता नहीं थी । यह भी दलील दी गई है कि प्रदर्श पी-14 और प्रदर्श पी-15 में छुट-पुट फर्क अनवधानता के कारण हुई गलती थी, जिसकी वजह से यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 42(1) के उपबंधों का अनुपालन नहीं किया गया था । यह दलील दी गई कि थाना अधिकारी और दल में सम्मिलित अन्य पुलिस कार्मिकों की परीक्षा की गई थी और उन्होंने बरामदगी तथा घटनाओं की शृंखला को साबित किया है । उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को दोषमुक्त करके गलती की है जबकि विशेष न्यायाधीश द्वारा अभिलिखित दोषसिद्धि के आदेश का समर्थन करने के लिए पर्याप्त आधार और सामग्री थी ।

6. अभियुक्त की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल ने उच्च न्यायालय के निर्णय का समर्थन किया और यह दलील दी कि धारा 42(1) और 42(2) के उपबंधों के अनुपालन को इस न्यायालय द्वारा आज्ञापक अभिनिर्धारित किया गया है और उक्त उपबंधों के अननुपालन के कारण

उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि को ठीक ही अपास्त किया गया है । यह दलील दी गई कि अधिनियम की धारा 43 लागू नहीं होती है चूंकि तलाशी भेदिए से मिली इत्तिला को लेखबद्ध करने के पश्चात् ली गई थी और थाना अधिकारी ने अपने कथन में स्वयं धारा 42 के अनुपालन को साबित करने वाले तथ्यों का उल्लेख किया था, इसलिए यह नहीं कहा जा सकता है कि धारा 42 का अनुपालन अपेक्षित नहीं था, इतना ही नहीं जीप वीरा राम की निजी जीप थी और उच्च न्यायालय ने ठीक ही यह अभिनिर्धारित किया है कि यह साबित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि जीप एक लोक परिवहन यान था । यान को एक लोक परिवहन यान के रूप में चलाने के लिए परिवहन प्राधिकारी से लिया गया कोई परमिट फाइल नहीं किया गया था या इस बारे में अभिवाक् तक नहीं किया गया था ।

7. हमने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों की दलीलों को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

8. इस अपील में इस विवाद्यक पर विचार किए जाने की आवश्यकता है कि क्या उच्च न्यायालय ने अभियुक्त को दोषमुक्त करके गलती की है । क्या धारा 42(1) और 42(2) के अननुपालन के संबंध में उच्च न्यायालय के निष्कर्षों का समर्थन करने के लिए पर्याप्त साक्ष्य है और क्या धारा 43 वर्तमान मामले में लागू होती है, ऐसे अन्य विवाद्यक हैं जिनका उत्तर दिए जाने की आवश्यकता है । क्या बरामदगी, जैसा कि अभियोजन पक्ष द्वारा दावा किया गया है, का समर्थन अभिलेख पर के साक्ष्य से होता है और क्या सामग्री और नमूने समुचित रूप से मुहरबंद किए गए थे, अन्य संबद्ध विवाद्यक हैं ।

9. स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम स्वापक ओषधियों से संबंधित विधि का समेकन और संशोधन करने के लिए, स्वापक ओषधियों और मनःप्रभावी पदार्थों से संबंधित संक्रियाओं के नियंत्रण और विनियमन के लिए अधिनियमित किया गया था । इस न्यायालय ने अनेक मामलों में स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के उपबंधों पर विचार किया है । इस न्यायालय ने यह पाया कि स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम का उद्देश्य इन ओषधियों और पदार्थों के नियंत्रण और विनियमन के संबंध में कठोर उपबंध बनाना है । साथ-ही-साथ निर्दोष व्यक्तियों को अपहानि से बचाने और अधिकारियों द्वारा उपबंधों का दुरुपयोग करने से रोकने के लिए कतिपय रक्षोपाय उपबंधित किए गए हैं

जिनका इस संदर्भ में कड़ाई से पालन किया जाना आवश्यक है । **पंजाब राज्य** बनाम **बलबीर सिंह**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने पैरा 15 में निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां की हैं :–

> "15. स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम का उद्देश्य इन ओषधियों और पदार्थों से संबंधित संक्रियाओं के नियंत्रण और विनियमन के लिए कठोर उपबंध बनाना है । साथ-ही-साथ, निर्दोष व्यक्तियों को अपहानि से बचाने और अधिकारियों द्वारा उपबंधों का दुरुपयोग करने से रोकने के लिए कतिपय रक्षोपाय उपबंधित किए गए हैं जिनका इस संदर्भ में कड़ाई से पालन किया जाना आवश्यक है । इसलिए इन उपबंधों में यह आबद्धकर बनाया गया है कि उन अधिकारियों को, जिनका इन उपबंधों में उल्लेख है, जानकारी प्राप्त होने पर उसे लेखबद्ध करना चाहिए और धारा 42(1) के परंतुक के अधीन उपबंधित अनुसार गिरफ्तारी करने या तलाशी लेते समय विश्वास के कारणों को भी लेखबद्ध करना चाहिए । इस सीमा तक ये उपबंध आज्ञापक हैं । परिणामतः, इन अपेक्षाओं का अनुपालन करने में असफल रहने पर अभियोजन पक्षकथन पर प्रभाव पड़ता है और इसलिए विचारण दूषित हो जाता है ।"

10. **सैय्यद मोहम्मद सैय्यद उमर सैय्यद और अन्य** बनाम **गुजरात राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा इसी प्रकार की मताभिव्यक्तियां की गईं हैं । उक्त निर्णय के पैरा 6 में निम्नलिखित मत व्यक्त किया गया है :–

> "6. यह उल्लेखनीय है कि स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के अधीन इसके उपबंधों के उल्लंघन के लिए दंड ऐसे कठोर कारावास तक हो सकता है जिसकी अवधि 10 वर्ष से कम की नहीं होगी किंतु 20 वर्ष तक की हो सकेगी, और जुर्माने से भी, जो एक लाख रुपए से कम का नहीं होगा किंतु दो लाख रुपए तक का हो सकेगा, और न्यायालय, ऐसे कारणों से, जो निर्णय में लेखबद्ध किए जाएंगे, दो लाख रुपए से अधिक का जुर्माना अधिरोपित करने के लिए सशक्त है । स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 54 में अपनी निर्दोषिता को साबित करने का भार अभियुक्त पर स्थानांतरित किया गया है ; इस धारा में यह उपबंधित

---

[1] (1994) 3 एस. सी. सी. 299.

[2] (1995) 3 एस. सी. सी. 610.

है कि इस अधिनियम के अधीन विचारणों में, जब तक कि तत्प्रतिकूल साबित नहीं कर दिया जाता है, यह उपधारणा की जा सकेगी कि अभियुक्त ने इसके अंतर्गत आने वाली वस्तुओं की बाबत, 'जिसके कब्जे के बारे में वह समाधानप्रद रूप से हिसाब देने में असफल रहता है' इसके अधीन अपराध किया है । उन परिणामों को, जो स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के अधीन आने वाली अवैध वस्तुओं को कब्जे में रखने से हो सकेंगे, अर्थात् साबित करने का भार अभियुक्त पर स्थानांतरित होने और कठोर दंड जिसके लिए वह दायी हो सकता है, ध्यान में रखते हुए विधान-मंडल ने धारा 50 में अंतर्विष्ट रक्षोपाय अधिनियमित किए हैं । अभियुक्त द्वारा स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के अधीन आने वाली अवैध वस्तुओं को कब्जे में रखे जाने के बारे में किसी संदेह को दूर करने के लिए वह ऐसे कब्जे की तलाशी किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट की मौजूदगी में किए जाने की अपेक्षा करने के लिए प्राधिकृत है ।"

11. वर्तमान मामले में धारा 42 सुसंगत है, जिसे नीचे उद्धृत किया जाता है :–

"42. वारंट या प्राधिकार के बिना प्रवेश, तलाशी, अभिग्रहण और गिरफ्तार करने की शक्ति – (1) केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क, स्वापक, सीमाशुल्क, राजस्व आसूचना या केन्द्रीय सरकार के किसी अन्य विभाग का या सीमा सुरक्षा बल का ऐसा कोई अधिकारी (जो किसी चपरासी, सिपाही या कांस्टेबल की पंक्ति से वरिष्ठ अधिकारी है) जिसे केन्द्रीय सरकार द्वारा साधारण या विशेष आदेश द्वारा, इस निमित्त सशक्त किया जाता है, अथवा किसी राज्य सरकार के राजस्व, औषधि नियंत्रण, उत्पाद-शुल्क, पुलिस या किसी अन्य विभाग का ऐसा कोई अधिकारी (जो किसी चपरासी, सिपाही या कांस्टेबल की पंक्ति से वरिष्ठ अधिकारी है), जिसे राज्य सरकार के साधारण या विशेष आदेश द्वारा इस निमित्त सशक्त किया जाता है, यदि उसके पास व्यक्तिगत जानकारी या किसी व्यक्ति द्वारा दी गई और लिखी गई इत्तिला से यह विश्वास करने का कारण है कि ऐसी कोई स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ जिसकी बाबत अध्याय 4 के अधीन दंडनीय कोई अपराध किया गया है या कोई ऐसी दस्तावेज या अन्य वस्तु जो ऐसे अपराध के किए जाने का साक्ष्य हो सकती है, किसी भवन, प्रवहण या परिवेष्ठित स्थान में रखी या छिपाई गई है, सूर्योदय

और सूर्यास्त के बीच –

(क) किसी ऐसे भवन, प्रवहण या स्थान में प्रवेश कर सकेगा ;

(ख) प्रतिरोध की दशा में, किसी द्वार को तोड़ सकेगा और ऐसे प्रवेश करने में किसी अन्य बाधा को हटा सकेगा ;

(ग) ऐसी ओषधि या पदार्थ और उसके विनिर्माण में प्रयुक्त सभी सामग्री और किसी अन्य वस्तु और किसी जीव-जन्तु या प्रवहण को, जिसकी बाबत उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि वह इस अधिनियम के अधीन अधिहरणीय है और किसी दस्तावेज या अन्य वस्तु को, जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि यह अध्याय 4 के अधीन दंडनीय किसी ऐसे अपराध के, जो ऐसी ओषधि या पदार्थ से संबधित है, किए जाने का साक्ष्य हो सकती है, अभिगृहीत कर सकेगा ; और

(घ) किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसने ऐसी ओषधि या पदार्थ के संबंध में, इस अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध किया है, निरुद्ध कर सकेगा और उसकी तलाशी ले सकेगा और यदि वह उचित समझे तो उसे गिरफ्तार कर सकेगा :

परंतु यदि ऐसे व्यक्ति के पास यह विश्वास करने का कारण है कि तलाशी, वारंट या प्राधिकार साक्ष्य छिपाने के लिए अवसर दिए बिना या किसी अपराधी को निकल भागने के लिए सुविधा दिए बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता है तो वह सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच किसी भी समय ऐसे भवन, प्रवहण या परिवेष्ठित स्थान में, अपने विश्वास के आधारों को लेखबद्ध करने के पश्चात्, प्रवेश कर सकेगा और उसकी तलाशी ले सकेगा ।

(2) जहां कोई अधिकारी, किसी इत्तिला को उपधारा (1) के अधीन लिखता है या अपने विश्वास के आधारों को उस उपधारा के परंतुक के अधीन लेखबद्ध करता है, वहां वह उसकी एक प्रति अपने अव्यवहित पदीय वरिष्ठ को तत्काल भेजेगा ।"

12. उच्च न्यायालय इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि धारा 42(1) और 42(2) के आज्ञापक उपबंधों का भंग हुआ है और इसके अतिरिक्त धारा 43, जिसका विशेष न्यायाधीश ने यह अभिनिर्धारित करने के लिए अवलंब लिया है कि धारा 42 के अनुपालन की कोई आवश्यकता नहीं थी, लागू नहीं होती है । अतः, हम पहले इस प्रश्न की परीक्षा करने के लिए अग्रसर होंगे कि क्या धारा 42(1) और 42(2) के उपबंधों का भंग हुआ है या नहीं । धारा 42 का भंग दो भागों में पाया गया है । पहला भाग यह है कि प्रदर्श पी-14 और प्रदर्श पी-21 में लेखबद्ध गुप्त इत्तिला और सर्किल आफिसर, नोहर को प्रदर्श पी-15 द्वारा भेजी गई इत्तिला के बीच फर्क है । उपरोक्त संदर्भ में उच्च न्यायालय के निष्कर्षों को निर्दिष्ट करना उपयोगी होगा :–

> "उपरोक्त परीक्षा से यह नहीं पाया गया है कि प्रदर्श पी-14 इत्तिला, जो कथित रूप से अधिनियम की धारा 42(2) के अधीन भेदिए से प्राप्त हुई थी या प्रदर्श पी-21, भेदिए द्वारा दी गई इत्तिला जिसे कथित रूप से रोजनामचे में अभिलिखित किया गया था और जिसकी प्रति सर्किल आफिसर, नोहर को भेजी गई थी जो कि तत्कालीन ज्येष्ठ अधिकारी, राठोर थे, प्रदर्श पी-15 पत्र जो भेजा गया था, यह प्रदर्श पी-14 की प्रति नहीं है अपितु यह उनके द्वारा स्वयं तैयार किया गया अलग मेमो था । उपरोक्त परीक्षा से वर्तमान मामले में यह नहीं पाया गया है कि अधिनियम, 1985 की धारा 42(2) का अनुपालन किया गया है ।"

13. धारा 42(2) के अधीन यह अपेक्षित है कि जहां कोई अधिकारी, किसी इत्तिला को उपधारा (1) के अधीन लिखता है, वहां वह उसकी एक प्रति अपने अव्यवहित पदीय वरिष्ठ को तत्काल भेजेगा । इत्तिला, प्रदर्श पी-15, जो सर्किल आफिसर, नोहर को भेजी गई थी, वह प्रदर्श पी-14 और प्रदर्श पी-24 में लेखबद्ध इत्तिला के अनुसार नहीं थी । अतः, उच्च न्यायालय ने इस निष्कर्ष पर पहुंचने में कोई गलती नहीं की है कि धारा 42(2) का भंग हुआ था ।

14. एक अन्य पहलू जिस पर विचार किए जाने की आवश्यकता है, वह धारा 42(1) के परंतुक के अननुपालन के बारे में है जो उच्च न्यायालय द्वारा पाया गया है । धारा 42(1) से यह उपदर्शित होता है कि कोई प्राधिकृत अधिकारी वारंट या प्राधिकार के बिना सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच तलाशी ले सकता है । स्कीम से यह उपदर्शित होता है कि यदि

तलाशी सूर्यास्त और सूर्योदय के बीच ली जानी है, तो वारंट की आवश्यकता होगी, जब तक कि ऐसे अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण न हो कि तलाशी वारंट या प्राधिकार अपराधी को निकल भागने के लिए अवसर दिए बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता है और उसके विश्वास के आधारों को लेखबद्ध किया जाना आवश्यक है । वर्तमान मामले में, ऐसा कोई पक्षकथन नहीं है कि धारा 42 की उपधारा (1) के परंतुक या धारा 42 की उपधारा (2) द्वारा यथापरिकल्पित विश्वास का कोई आधार थाना अधिकारी, जो तलाशी लेने के लिए अग्रसर हुआ था, द्वारा लेखबद्ध किया गया था । थाना अधिकारी अभि. सा. 11 के रूप में उपसंजात हुए और अपने कथन में भी ऐसा कोई पक्षकथन नहीं रखा कि उपधारा (1) के परंतुक द्वारा अपेक्षित अनुसार उसने कहीं अपने विश्वास के आधारों को लेखबद्ध किया था । उच्च न्यायालय ने संपूर्ण साक्ष्य पर विचार करने के पश्चात् निम्नलिखित मताभिव्यक्तियां की हैं :–

> "शिशुपाल सिंह (अभि. सा. 11), जिसके द्वारा तलाशी ली गई थी, ने घटना स्थल पर पहुंचने के पश्चात् धारा 42(1) के अधीन जीप संख्यांक एच आर 24 4057 की तलाशी लेने से पूर्व उसके द्वारा विश्वास करने का कोई कारण लेखबद्ध नहीं किया गया और न ही तलाशी वारंट अभिप्राप्त न करने के संबंध में कोई कारण लेखबद्ध किया गया । उसने अपने कथनों में भी किसी ऐसे तथ्य का उल्लेख नहीं किया कि उसने धारा 42(1) के परंतुक के अनुपालन के संबंध में कोई कार्यवाही की थी । चूंकि विश्वास करने के कारणों को लेखबद्ध नहीं किया गया है, इसलिए अभिलेख पर यह नहीं पाया गया है कि धारा 42(2) के अधीन इसकी प्रति ज्येष्ठ पदधारियों को भेजी गई थी । शिशुपाल सिंह इस बाबत सर्वोत्तम साक्षी था और उसने अपने कथन में धारा 42(1) के परंतुक के अनुपालन और धारा 42(2), अपने वरिष्ठ पदधारियों को उसके द्वारा लेखबद्ध किए गए विश्वास के कारणों को भेजने के संबंध में किसी तथ्य का उल्लेख नहीं किया ।"

15. इस संदर्भ में, यह उल्लेख करना सुसंगत है कि प्रतिरक्षा पक्ष की ओर से विशेष न्यायाधीश के समक्ष भी धारा 42(1) और 42(2) के भंग की दलील दी गई थी । निर्णय के पैरा 12 में विशेष न्यायाधीश ने प्रतिरक्षा पक्ष के उपरोक्त दलीलों का उल्लेख किया है । तथापि, धारा 42(2) के

अननुपालन पर आधारित दलीलों को यह मत व्यक्त करते हुए खारिज कर दिया गया कि प्रदर्श पी-14 और प्रदर्श पी-15 में फर्क पूर्णतः लेखन भूल है और धारा 42(2) का अनुपालन किया गया था । विशेष न्यायाधीश ने धारा 42(1) के परंतुक के अनुपालन के बारे में यह अभिनिर्धारित किया कि तलाशी लिया गया यान यात्रियों को ढोने के लिए प्रयुक्त किया जा रहा था और इस बात का उल्लेख स्पष्ट रूप से यान के स्वामी वीरा राम द्वारा किया गया है, इसलिए अधिनियम की धारा 43 के स्पष्टीकरण के अनुसार यान एक लोक परिवहन यान था और ऐसे यान की तलाशी लेने के लिए किसी वारंट या प्राधिकार की आवश्यकता नहीं थी । उच्च न्यायालय ने विशेष न्यायाधीश के उपरोक्त निष्कर्षों को उलट दिया । अतः, हम इस बात की परीक्षा करेंगे कि क्या वर्तमान मामले में धारा 43 लागू होती है जिसमें धारा 42(1) के परंतुक की अपेक्षा को दूर किया गया है । अधिनियम की धारा 43 निम्नलिखित है :–

> "43. लोक स्थानों में अभिग्रहण और गिरफ्तार करने की शक्ति – धारा 42 में उल्लिखित किसी विभाग का कोई अधिकारी –
>
> (क) किसी लोक स्थान में या अभिवहन में, किसी ऐसी स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ को, जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि इस अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध किया गया है और ऐसी ओषधि या पदार्थ के साथ किसी ऐसे जीवजंतु या प्रवहण या वस्तु को, जो इस अधिनियम के अधीन अधिहरणीय है और किसी ऐसे दस्तावेज या अन्य वस्तु को, जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि वह ऐसी ओषधि या पदार्थ के संबंध में, अध्याय 4 के अधीन दंडनीय किसी अपराध के किए जाने का साक्ष्य हो सकता है, अभिगृहीत कर सकेगा ;
>
> किसी ऐसे व्यक्ति को, जिसके बारे में उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि उसने इस अधिनियम के अधीन दंडनीय कोई अपराध किया है, निरुद्ध कर सकेगा और उसकी तलाशी ले सकेगा तथा यदि ऐसे व्यक्ति के कब्जे में कोई स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ है और ऐसा कब्जा उसे विधिविरुद्ध प्रतीत होता है तो उसे और उसके साथ के किसी अन्य व्यक्ति को गिरफ्तार कर सकेगा ।
>
> स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए, 'लोक स्थान'

पद के अंतर्गत कोई ऐसा प्रवहन, होटल, दुकान या अन्य स्थान है जो जनता द्वारा प्रयोग किए जाने के लिए आशयित है या जिस तक जनता की पहुंच हो सकती है ।"

16. धारा 43 में "लोक स्थान" पद को परिभाषित किया गया है जिसमें कोई लोक प्रवहण भी सम्मिलित है । अधिनियम में यथा प्रयुक्त "लोक प्रवहण" शब्द को एक ऐसे प्रवहण के रूप में समझा जाना चाहिए जिसे जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त किया जा सकता है । मोटर यान अधिनियम, 1939 और उसके पश्चात् मोटर यान अधिनियम, 1988 मोटर यानों से संबंधित विधि को विनियमित करने के लिए अधिनियमित किए गए थे । जो यान जनता के लिए प्रयुक्त किए जा सकते हैं वे लोक मोटर यान हैं जिनके लिए आवश्यक परमिट अभिप्राप्त किया जाना आवश्यक है । मोटर यान अधिनियम, 1988 के अनुसार, परमिट अभिप्राप्त किए बिना कोई यान यात्रियों को ढोने के लिए प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है । वर्तमान मामले में, अभियोजन का यह पक्षकथन नहीं है कि जीप एच आर 24 4057 के पास यात्रियों को ढोने के लिए कोई परमिट था । उच्च न्यायालय ने साक्ष्य पर विचार किया और इस निष्कर्ष पर पहुंचा कि यह उपदर्शित करने के लिए कोई सामग्री नहीं है कि जीप को लोक परिवहन यान के रूप में चलाने के लिए कोई परमिट था । उच्च न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि यहां तक कि करतारा राम ने भी, जो यान के स्वामी वीरा राम के अनुसार यान का उपयोग कर रहा था, इस बात का समर्थन नहीं किया कि जीप एक लोक परिवहन यान के रूप में प्रयुक्त किया जाता था । उच्च न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि निजी जीप को लोक परिवहन यान के रूप में नहीं माना जा सकता है । उच्च न्यायालय द्वारा निम्नलिखित मताभिव्यक्ति की गई :–

"करतारा राम को अभि. सा. 5 के रूप में पेश किया गया है, जिसने यह कथन किया कि वीरा राम उसका साला है जिसके नाम में जीप संख्यांक एच आर 24 4057 पंजीकृत है । उसने इंद्रजीत सिंह को उस जीप के लिए ड्राइवर के रूप में नियोजित किया है । कृष्ण नामक व्यक्ति को कभी ड्राइवर के रूप में नियोजित नहीं किया गया । इस साक्षी को पक्षद्रोही घोषित किया गया और उसकी परीक्षा भी की गई और उसने अभियोजन के पक्षकथन का समर्थन नहीं किया । इस रीति में, वीरा राम जीप का स्वामी है । उसके अनुसार,

उसने जीप करतारा राम को दी थी, किंतु करतारा राम ने अपने कथन में कहीं भी यह नहीं कहा कि यह जीप उसे दी गई थी और वह इसे लोक परिवहन यान के रूप में प्रयुक्त करता था । चूंकि अफीम पाउडर इस जीप में पकड़ा गया था और पुलिस द्वारा प्रदर्श पी-6 इत्तिला भी उसे तामील की गई थी, इसलिए वह स्वयं को बचाने की दृष्टि से भी ऐसा कथन कर सकता था कि करतारा जीप को लोक परिवहन यान के रूप में प्रयुक्त करता था, जबकि करतारा राम, अभि. सा. 5 ने इस तथ्य की अभिपुष्टि नहीं की । जीप निजी थी, यह बात अभिलेख से स्पष्ट होती है । इस रीति में, केवल इस आधार पर कि उसने जीप अपने साले को दी हुई थी और वह यात्रियों को ढोने के लिए इसका उपयोग करता था, निजी जीप को लोक परिवहन यान नहीं माना जा सकता है । तथापि, इस तथ्य की अभिपुष्टि करतारा राम के कथन से नहीं हुई है कि जीप का उपयोग यात्रियों को ढोने के लिए किया जाता है । अभिलेख पर ऐसा कोई साक्ष्य नहीं है जिसके आधार पर यह कहा जा सके कि जीप लोक परिवहन यान था और उनके पास इसके लिए परमिट था, बल्कि यह निजी यान था और यह कथन किया गया है कि स्वयं वीरा राम इस यान का स्वामी है ।"

17. उपर्युक्त निष्कर्षों को अधिक्षिप्त करने के लिए कुछ नहीं है । हमने वीरा राम के कथन का भी परिशीलन किया है, जिस कथन में उसने कहीं भी यह नहीं कहा कि उसके पास यान को परिवहन यान के रूप में चलाने के लिए परमिट है । उसने यह कथन किया है कि " ....मैंने यह जीप करतारा राम, निवासी ....जो मेरा नातेदार है को यात्रियों को ढोने के लिए दी हुई थी" । स्वीकृत रूप से, जीप पुलिस द्वारा पकड़ी और अभिगृहीत की गई थी । उपरोक्त को देखते हुए, यह नहीं कहा जा सकता है कि जीप धारा 43 के स्पष्टीकरण के अर्थांतर्गत एक लोक प्रवहण था । इसलिए, स्पष्ट रूप से धारा 43 लागू नहीं होती है और धारा 42(1) के परंतुक के उपबंधों का अनुपालन किया जाना अपेक्षित था और पूर्वोक्त कानूनी आज्ञापक उपबंधों का अनुपालन नहीं किया गया था, इसलिए उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि अपास्त करके कोई गलती नहीं की है ।

18. एक और पहलू है जिसका उल्लेख किए जाने की आवश्यकता है । प्रस्तुत मामला ऐसा है जहां स्वयं अभियोजन पक्ष का यह पक्षकथन है

कि गुप्त इत्तिला भेदिए से प्राप्त हुई थी और उस इत्तिला को प्रदर्श पी-14 और प्रदर्श पी-21 रोजनामचे में लेखबद्ध किया गया था और उसके पश्चात् थाना अधिकारी ने यकायक एक लोक स्थान पर तलाशी ली । थाना अधिकारी ने अपने कथन में भी धारा 42 की अनुपालना को साबित करने के लिए तथ्यों और अपने पक्षकथन का उल्लेख किया । जब धारा 42(1) के अधीन इत्तिला लेखबद्ध करने के पश्चात् तलाशी ली जाती है, तो धारा 42 के उपबंधों को अनुपालन किया जाना आवश्यक है । **राजस्व निदेशालय और एक अन्य** बनाम **मोहम्मद निसार होलिया**[1] वाले मामले में इस न्यायालय को धारा 41, 42 और 43 के स्पष्टीकरण पर विचार करना था । पैरा 14 में यह मत व्यक्त किया गया :–

> "हो सकता है अधिनियम के पठन मात्र से धारा 43 पर धारा 42 की बाध्यताएं लागू न हों । इसका यह अर्थ है कि प्राधिकारी के व्यक्तिपरक समाधान का भी, जैसा कि धारा 42 की उपधारा (1) के अधीन अपेक्षित है, केवल इस कारण अनुपालन किए जाने की आवश्यकता नहीं है कि वह स्थान जहां तलाशी ली जानी है वह एक लोक स्थान है । यदि धारा 43 को धारा 42 के अपवाद के रूप में समझा जाए, तो इसका कड़ाई से अनुपालन किया जाना अपेक्षित है । ऐसे निर्वचन का आश्रय लिया जाना चाहिए जो विधि के प्रवर्तन और अभियुक्त के मूल्यवान मानव अधिकार के बीच सामंजस्य बैठाता हो । इस आशय की घोषणा कि न्यूनतम अपेक्षा अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 165 के अनुपालन से प्रयोजन की पूर्ति हो जाएगी, पर्याप्त नहीं हो सकेगी क्योंकि उक्त उपबंध के अननुपालन से तलाशी अकृत नहीं हो जाएगी । इसलिए इस विभेद को ध्यान में रखना चाहिए कि किसी पूर्व इत्तिला के आधार पर ली गई तलाशी और ऐसे मामले में विभेद है जहां अधिनियम के अधीन अपराध कारित होने का कोई मामला प्राधिकारी के समक्ष अकस्मात या संयोगवश आता है .....।"

19. अतः, प्रस्तुत मामला ऐसा नहीं है जहां यह कहा जा सकता हो कि धारा 43 लागू हुई है, इसलिए धारा 42(1) के परंतुक और धारा 42(2) के अननुपालन से अभियुक्त पर गंभीर रूप से प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है । इस न्यायालय ने अनेक मामलों में धारा 42(1) और 42(2) के उपबंधों के अननुपालन के इस परिणाम पर विचार किया है कि क्या उपरोक्त

---

[1] (2008) 2 एस. सी. सी. 370.

अननुपालन से संपूर्ण विचारण दूषित हो जाता है या दोषसिद्धि अपास्त की जा सकती है या नहीं । इस संदर्भ में **पंजाब राज्य** बनाम **बलबीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय के प्रतिनिर्देश किया जाता है । उपरोक्त मामलों में उच्च न्यायालय ने अभियुक्तों को इस आधार पर दोषमुक्त कर दिया था कि तलाशी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के उपबंधों के अनुरूप नहीं ली गई थी । इस न्यायालय के समक्ष धारा 41, 42, 43 और अन्य सुसंगत उपबंध विचार के लिए आए । अध्याय 4 के उपबंधों को निर्दिष्ट करते हुए पैरा 8 में यह मत व्यक्त किया गया :–

> "8. किंतु यदि किसी पूर्व इत्तिला के आधार पर यह युक्तियुक्त विश्वास हो जाता है कि अधिनियम के अध्याय 4 के अधीन अपराध कारित किया गया है, तब ऐसे मामले में मजिस्ट्रेट या सशक्त अधिकारी को धारा 41 और 42 के उपबंधों के अधीन कार्यवाही और कृत्य करना होता है । धारा 42 के अधीन सशक्त अधिकारी को धारा 41 के अधीन यथाउपबंधित वारंट जारी किए बिना भी यदि उसके पास व्यक्तिगत जानकारी या किसी अन्य व्यक्ति द्वारा दी गई इत्तिला के आधार पर और इसे लेखबद्ध करने के पश्चात् यह विश्वास करने का कारण है कि अध्याय 4 के अधीन कोई अपराध किया गया है या कोई दस्तावेज या अन्य वस्तु, जो ऐसे अपराध के कारित करने का साक्ष्य हो सकता है, किसी भवन, या किसी अन्य स्थान में रखा गया है या छिपाया गया है, तो उसे सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच ऐसे भवन या अन्य स्थान में प्रवेश करने, तलाशी लेने, अभिगृहीत करने और गिरफ्तार करने की शक्ति होगी । इस धारा के परंतुक के अधीन यह उपबंधित है कि यदि ऐसे अधिकारी के पास यह विश्वास करने का कारण है कि तलाशी वारंट या प्राधिकार साक्ष्य छिपाने का अवसर दिए बिना या किसी अपराधी को निकल भागने के लिए सुविधा दिए बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता है तो वह अपने विश्वास के आधारों को लेखबद्ध करने के पश्चात् सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच गिरफ्तारी कर सकता है या तलाशी ले सकता है । धारा 42 की उपधारा (2) में यह भी अधिकथित है कि जब ऐसा अधिकारी कोई इत्तिला लिखता है या परंतुक के अधीन अपने विश्वास के आधारों को लेखबद्ध करता है, तो वह उसकी एक प्रति अपने अव्यवहित पदीय वरिष्ठ को तत्काल भेजेगा ।"

20. इस न्यायालय ने अनेक मामलों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् पैरा 25 में अपने निष्कर्ष अभिलिखित किए, जो निम्नलिखित हैं :–

"25. जिस प्रश्न पर ऊपर विचार किया गया है, वह विचारण न्यायालयों के समक्ष बहुधा उद्भूत होता रहता है । इसलिए हम अपने निष्कर्षों को उपवर्णित करना आवश्यक समझते हैं, जो निम्नलिखित हैं –

(1) यदि कोई पुलिस अधिकारी स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के उपबंधों के अधीन यथा परिकल्पित किसी पूर्व इत्तिला के बिना दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन यथाउपबंधित अपराध या संदिग्ध अपराधों के अन्वेषण के सामान्य अनुक्रम में कोई तलाशी लेता है या किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करता है और जब ऐसी तलाशी पूर्ण हो जाती है तो इस प्रक्रम पर स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम की धारा 50 लागू नहीं होगी और तद्धीन अपेक्षाओं का अनुपालन करने का प्रश्न उद्भूत नहीं होगा । यदि ऐसी तलाशी या गिरफ्तारी के दौरान किसी स्वापक ओषधि या मनःप्रभावी पदार्थ की संयोगवश बरामदगी होती है तब उस पुलिस अधिकारी को, जो सशक्त नहीं है, सशक्त अधिकारी को सूचित करना चाहिए जिसे उसके पश्चात् स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के उपबंधों के अनुसार कार्यवाही करनी चाहिए । यदि वह सशक्त प्राधिकारी ही है, तब उसे उस प्रक्रम से आगे स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के अन्य उपबंधों के अनुसार अन्वेषण करना चाहिए ।

(2-क) धारा 41(1) के अधीन सशक्त मजिस्ट्रेट ही अधिनियम के अध्याय 4 आदि के अधीन दंडनीय अपराधों की बाबत गिरफ्तारी या तलाशी के लिए तब वारंट जारी कर सकता है जब उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि ऐसे अपराध कारित किए गए हैं या ऐसे पदार्थ किसी भवन, प्रवहण या स्थान में रखे या छिपाए गए हैं । जब गिरफ्तारी या तलाशी के लिए ऐसा वारंट ऐसे मजिस्ट्रेट द्वारा जारी किया जाता है जो सशक्त नहीं है, तब ऐसी तलाशी या गिरफ्तारी, यदि की जाती है, तो वह अवैध होगी । इसी प्रकार, धारा 41(2) और 42(1) में

यथा प्रगणित केवल सशक्त अधिकारी या सम्यक् रूप से प्राधिकृत अधिकारी ही स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ के उपबंधों के अधीन कार्रवाई कर सकते हैं । यदि स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के उपबंधों के अधीन कोई गिरफ्तारी या तलाशी ऐसे अधिकारियों से भिन्न किसी अन्य द्वारा की जाती है तो वह गिरफ्तारी या तलाशी अवैध होगी ।

(2-ख) धारा 41(2) के अधीन केवल सशक्त अधिकारी अपने अधीनस्थ अधिकारी को इस धारा में वर्णित अनुसार किसी व्यक्ति को गिरफ्तार करने या तलाशी लेने के लिए प्राधिकार दे सकता है । यदि कोई उल्लंघन होता है तो उससे अभियोजन पक्षकथन प्रभावित होगा और दोषसिद्धि दूषित हो जाएगी ।

(2-ग) धारा 42(1) के अधीन यदि सशक्त अधिकारी के पास किसी व्यक्ति द्वारा दी गई कोई पूर्व इत्तिला है, तो वह आवश्यक रूप से लेखबद्ध की जानी चाहिए । किंतु यदि व्यक्तिगत जानकारी से उसके पास यह विश्वास करने का कारण है कि अध्याय 4 के अधीन अपराध कारित किए गए हैं या किसी भवन आदि में ऐसी सामग्री छिपाई गई है जो ऐसे अपराधों के किए जाने का साक्ष्य हो सकती है, तो वह सूर्योदय और सूर्यास्त के बीच वारंट के बिना गिरफ्तार कर सकेगा या तलाशी ले सकेगा और इस उपबंध में यह आज्ञापक नहीं है कि उसे अपने विश्वास के कारणों को लेखबद्ध करना चाहिए । किंतु धारा 42(1) के परंतुक के अधीन यदि ऐसे अधिकारी को सूर्यास्त और सूर्योदय के बीच ऐसी तलाशी लेनी है तो उसे अपने विश्वास के आधारों को अवश्य अभिलिखित करना चाहिए ।

इस सीमा तक ये उपबंध आज्ञापक हैं और इनका उल्लंघन होने पर अभियोजन पक्षकथन पर प्रभाव पड़ेगा और विचारण दूषित हो जाएगा ।

(3) धारा 42(2) के अधीन ऐसे सशक्त अधिकारी को, जो किसी इत्तिला को लिखता है या धारा 42(1) के परंतुक के अधीन आधारों को लेखबद्ध करता है, उसकी एक प्रति अपने अव्यवहित पदीय वरिष्ठ को तत्काल भेजनी चाहिए । यदि इस

उपबंध का पूरी तरह से अननुपालन हुआ है तो इससे अभियोजन का पक्षकथन प्रभावित होता है । इस सीमा तक यह आज्ञापक है । किंतु यदि इसमें विलंब हुआ है, चाहे यह असम्यक् था या चाहे इसका स्पष्टीकरण दिया गया है या नहीं, तो यह प्रत्येक मामले में तथ्य का प्रश्न होगा ।

(4-क) यदि कोई पुलिस अधिकारी, चाहे वह 'सशक्त' अधिकारी ही हो, विशुद्ध रूप से दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों के अधीन अपराधों के सामान्य अन्वेषण के दौरान कोई गिरफ्तारी करने या तलाशी लेते समय दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 100 और 165 के उपबंधों का, जिसमें कारणों को लेखबद्ध करने की अपेक्षा भी सम्मिलित है, कड़ाई से अनुपालन करने में असफल रहता है तो ऐसी असफलता केवल अनियमितता की कोटि में आएगी ।

(4-ख) यदि कोई सशक्त अधिकारी या प्राधिकृत अधिकारी अधिनियम की धारा 41(2) के अधीन कोई तलाशी लेता है, तो वह ऐसा दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों अर्थात् दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 100 और 165 के अधीन कर रहा होता है और यदि दंड प्रक्रिया संहिता के उपबंधों का कड़ाई से अनुपालन नहीं किया गया है, तब ऐसी तलाशी स्वतः अवैध नहीं होगी और विचारण दूषित नहीं हो जाएगा ।

ऐसी असफलता के प्रभाव को न्यायालयों द्वारा प्रत्येक मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में साक्ष्य का मूल्यांकन करते समय ध्यान में रखा जाना चाहिए ।

(5) पूर्व इत्तिला के आधार पर सशक्त अधिकारी या प्राधिकृत अधिकारी को धारा 41(2) या 42 के अधीन कार्रवाई करते समय व्यक्ति की तलाशी लेने से पूर्व धारा 50 के उपबंधों का अनुपालन करना चाहिए और तद्धीन उपबंधित अनुसार ऐसे व्यक्ति को यह सूचित किया जाना चाहिए कि यदि वह अपेक्षा करता है तो उसे किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के समक्ष पेश किया जाएगा । ऐसे अधिकारी के लिए तलाशी लिए जाने वाले व्यक्ति को यह सूचित करना आबद्धकर है । तलाशी लिए जाने वाले व्यक्ति को इस बारे में सूचित करने में असफल

रहना और यदि ऐसा व्यक्ति ऐसी अपेक्षा करता है, तो उसे राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट के पास ले जाने में असफल रहना धारा 50 के अननुपालन की कोटि में आएगा, जो कि आज्ञापक उपबंध है और इस प्रकार इस असफलता से अभियोजन पक्षकथन पर प्रभाव पड़ेगा और विचारण दूषित हो जाएगा । इस प्रकार सूचित किए जाने के पश्चात् ऐसा व्यक्ति ऐसी प्रक्रिया के विकल्प का चयन करता है या नहीं, यह एक तथ्य का प्रश्न होगा ।

(6) धारा 52 और 57 के उपबंध, जो धारा 41 से 44 के अधीन गिरफ्तारी या अभिग्रहण करने के पश्चात् अधिकारियों द्वारा अपनाए जाने वाले उपायों के संबंध में हैं, स्वतः आज्ञापक नहीं हैं । यदि इनका अननुपालन होता है या यदि विलंब आदि जैसी चूक होती हैं तब इसकी यह देखने के लिए परीक्षा की जानी चाहिए कि क्या अभियुक्त पर कोई प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है या नहीं और ऐसी असफलता का गिरफ्तारी या अभिग्रहण से संबंधित साक्ष्य के मूल्यांकन तथा मामले के गुणागुण से सरोकार रहेगा ।"

21. **सैय्यद मोहम्मद सैय्यद उमर सैय्यद और अन्य** बनाम **गुजरात राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के उपबंधों पर धारा 50 सहित विस्तृत रूप से विचार करने के पश्चात् **बलबीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के निर्णय का अनुमोदन किया ।

22. **पंजाब राज्य** बनाम **बलदेव सिंह**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ को स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम के उपबंधों और इस न्यायालय के कई पूर्ववर्ती निर्णयों पर विचार करना था । संविधान न्यायपीठ ने यह पाया कि **बलबीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में पूर्ववर्ती निर्णयों का **सैय्यद मोहम्मद सैय्यद उमर सैय्यद और अन्य** बनाम **गुजरात राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा अनुमोदन किया गया है और **हिमाचल प्रदेश राज्य** बनाम **पृथी चंद और एक अन्य**[2] वाले मामले में दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा

---

[1] (1999) 6 एस. सी. सी. 172.

[2] (1996) 2 एस. सी. सी. 37.

विसंगत टिप्पण को अपास्त कर दिया । संविधान न्यायाधीश ने **बलबीर सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के इस मत का अनुमोदन किया कि प्राधिकृत अधिकारी पर धारा 50 के अधीन संदिग्ध व्यक्ति को यह सूचित करने की बाध्यता है कि उसे राजपत्रित अधिकारी की मौजूदगी में तलाशी दिए जाने का अधिकार है । संविधान न्यायपीठ द्वारा यह अभिनिर्धारित किया गया कि यदि तलाशी धारा 50 का अतिक्रमण करके ली गई है तो इससे विचारण तो दूषित नहीं हो सकेगा किंतु इससे अवैध वस्तुओं की बरामदगी संदिग्ध हो जाएगी और अभियुक्त की दोषसिद्धि और दंडादेश दूषित हो जाएगा । धारा 50 के अननुपालन के बारे में जो कुछ कहा गया है, वह अधिनियम की धारा 42 के अननुपालन की बाबत भी सत्य है ।

23. **बेकोदन अब्दुल रहीमन** बनाम **केरल राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय को धारा 42 और धारा 50 दोनों पर विचार करना था । उपरोक्त मामले में धारा 42(2) के साथ-साथ धारा 50 का भी अनुपालन नहीं किया गया था । यह भी अवेक्षा की गई कि **पंजाब राज्य** बनाम **बलदेव सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में एक संविधान न्यायपीठ ने पहले ही यह अधिकथित किया है कि धारा 42 और 50 के उपबंध आज्ञापक हैं और उनके अननुपालन से अन्वेषण अवैध हो जाएगा । पैरा 5 और 6 में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया :–

> "5. इस मामले में आज्ञापक उपबंधों का अतिक्रमण एकदम स्पष्ट है, जैसा कि के. आर. प्रेमचंद्रन (अभि. सा. 1) के कथन से प्रत्यक्ष दिखाई देता है । इत्तिला लेखबद्ध करने के पश्चात् साक्षियों द्वारा अधिनियम की धारा 42 की उपधारा (2) की आज्ञा का अनुपालन किया गया दर्शित नहीं होता है । इसी प्रकार धारा 50 के उपबंधों का भी अनुपालन नहीं किया गया क्योंकि अभियुक्त को ऐसा कोई विकल्प नहीं दिया गया था कि क्या वह किसी राजपत्रित अधिकारी या मजिस्ट्रेट की मौजूदगी में तलाशी देना चाहता है ।
>
> 6. हमारा यह दृढ़ मत है कि अभियोजन पक्ष द्वारा धारा 42 की उपधारा (2) के उपबंधों और धारा 50 की आज्ञा का अनुपालन नहीं किया गया, जिससे मामला सिद्ध नहीं किया गया हो गया है । अधिनियम के आज्ञापक उपबंधों के अतिक्रमण को देखते हुए

---

[1] (2002) 4 एस. सी. सी. 229.

अपीलार्थी दोषमुक्त किए जाने का हकदार था .....।"

24. **करनैल सिंह** बनाम **हरियाणा राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक अन्य संविधान न्यायपीठ के निर्णय का उल्लेख करना भी सुसंगत है, जिसमें इस न्यायालय को पुनः धारा 42 और 50 के उपबंधों पर विचार करने का अवसर था । संविधान न्यायपीठ ने दो पूर्ववर्ती मामलों में राय की भिन्नता पाई जिसके परिणामस्वरूप मामला बृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष रखा गया । प्रश्न का उल्लेख निर्णय के पैरा 1 और 2 में है, जो निम्नलिखित प्रकार से है :–

"1. अब्दुल रशीद इब्राहिम मंसुरी **बनाम** गुजरात राज्य [(2000) 2 एस. सी. सी. 513] वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि स्वापक ओषधि और मनःप्रभावी पदार्थ अधिनियम, 1985 (जिसमें इसके पश्चात् 'एनडीपीएस अधिनियम' कहा गया है) की धारा 42 का अनुपालन आज्ञापक है और इत्तिला को लिखित में लेखबद्ध करने और अपने पदीय वरिष्ठ को तत्काल रिपोर्ट भेजने में असफलता से अभियुक्त पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ेगा । साजन अब्राहम **बनाम** केरल राज्य [(2001) 6 एस. सी. सी. 692] वाले मामले में, जो कि तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा ही विनिश्चित किया गया था, यह अभिनिर्धारित किया गया था कि धारा 42 आज्ञापक नहीं है और सारभूत अनुपालन पर्याप्त है ।

2. वारंट या प्राधिकार के बिना तलाशी लेने, अभिग्रहण और गिरफ्तार करने के मामले में अधिनियम की धारा 42 की व्याप्ति और प्रयोज्यता के संबंध में विरोधी रायों को देखते हुए, ये अपीलें विवाद्यक को सुलझाने के लिए संविधान न्यायपीठ के समक्ष रखी जाती हैं ।

3. एनडीपीएस अधिनियम के उद्देश्यों और कारणों के कथन से यह स्पष्ट होता है कि तस्करों की सुसंगठित टोलियों से मिलने वाली चुनौती का सामना करने के लिए पर्याप्त रूप से भयोपरतकारी शास्तियों की स्कीम बनाने हेतु और स्वापक, सीमा-शुल्क, केन्द्रीय उत्पाद-शुल्क आदि जैसे अनेक महत्वपूर्ण केन्द्रीय प्रवर्तन अभिकरणों के अधिकारियों को व्यसन की नई ओषधियों, जो मनःप्रभावी पदार्थों

---

[1] (2009) 8 एस. सी. सी. 539.

के रूप में जानी जाती हैं जो राष्ट्रीय सरकारों के सामने गंभीर समस्याएं पैदा कर रही हैं, पर नियंत्रण करने के लिए अपराधों के अन्वेषण की शक्ति देने के लिए संसद् द्वारा यह व्यापक विधि अधिनियमित की गई ।"

25. संविधान न्यायपीठ पूर्ववर्ती निर्णयों को निर्दिष्ट करने के पश्चात् इस निष्कर्ष पर पहुंची कि धारा 42 और 50 की अपेक्षा का अननुपालन अननुज्ञेय है जबकि समाधानप्रद स्पष्टीकरण के साथ विलंबित अनुपालन धारा 42 का स्वीकार्य अनुपालन होगा । संविधान न्यायपीठ ने उपरोक्त दोनों विनिश्चयों के प्रभाव का उल्लेख पैरा 5 में किया है । जहां तक धारा 42(1) के परंतुक के अनुपालन का संबंध है, प्रस्तुत मामला ऐसा नहीं है जहां दलील दी गई हो कि सारभूत अनुपालन किया गया था, बल्कि धारा 42(1) का पूरी तरह से अननुपालन किया गया है । जैसा कि ऊपर मत व्यक्त किया गया है, धारा 43 लागू नहीं होने के कारण तलाशी धारा 42 के उपबंधों का अनुपालन करने के पश्चात् की जानी चाहिए थी । अतः, हमारा यह निष्कर्ष है कि उच्च न्यायालय ने ठीक ही यह अभिनिर्धारित किया है कि धारा 42(1) और धारा 42(2) के अननुपालन की बात अभिलेख से साबित होती है और उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि के आदेश को अपास्त करके कोई गलती नहीं की है ।

26. जो कुछ ऊपर कहा गया है, उसको देखते हुए हमारे लिए उच्च न्यायालय द्वारा दोषसिद्धि के आदेश को अपास्त करने के लिए दिए गए अन्य कारणों पर विचार करना आवश्यक नहीं है । उच्च न्यायालय ने दोषसिद्धि के आदेश को अपास्त करने के लिए पर्याप्त कारण और आधार दिए हैं जिनमें हम कोई कमी नहीं पाते हैं जिससे कि इस अपील में हस्तक्षेप करना पड़े ।

27. परिणामतः यह अपील खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

आर. के. रोजा

बनाम

यू. एस. रायडु और एक अन्य

4 जुलाई, 2016

न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ और न्यायमूर्ति रोहिंटन फाली नरीमन

सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) – आदेश 7, नियम 11 – वादपत्र (निर्वाचन याचिका) को वाद हेतुक के अभाव में नामंजूर किए जाने के लिए आवेदन – उच्च न्यायालय द्वारा आवेदन को मुख्य याचिका की अंतिम सुनवाई के समय सूचीबद्ध किए जाने का आदेश किया जाना – उच्च न्यायालय द्वारा अपनाया गया दृष्टिकोण विधि के अनुसार नहीं है क्योंकि आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल किए गए आवेदन का निपटारा किए बिना न्यायालय विचारण को अग्रसर नहीं कर सकता है, अतः आक्षेपित आदेश अपास्त किए जाने योग्य है ।

इस मामले में प्रथम प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के विधानसभा के लिए निर्वाचन को चुनौती देते हुए उच्च न्यायालय में एक निर्वाचन याचिका फाइल की । अपीलार्थी ने निर्वाचन याचिका में सूचना प्राप्त होने पर एक प्रति-शपथपत्र के द्वारा याचिका को नामंजूर करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन फाइल किया । न्यायालय ने उस पर इस आधार पर विचार करने से इनकार कर दिया कि कोई औपचारिक आवेदन फाइल नहीं किया गया है और इसलिए विचारण की कार्यवाही आरंभ की गई । उस प्रक्रम पर अपीलार्थी ने औपचारिक आवेदन निर्वाचन याचिका को इस आधार पर नामंजूर करने के लिए फाइल किया कि निर्वाचन याचिका से कोई वाद हेतुक प्रकट नहीं होता है । उच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि आवेदन शीघ्रतम अवसर पर फाइल नहीं किया गया और अपीलार्थी आवेदन का संचालन करने में तत्पर नहीं था । इसलिए न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि "प्रथम प्रत्यर्थी-अपीलार्थी द्वारा फाइल किए गए इस आवेदन का विनिश्चय अंतिम सुनवाई के समय किया जाएगा" । अपीलार्थी ने उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील का निपटारा करते हुए,

अभिनिर्धारित – जब सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन फाइल किया जाता है, तो न्यायालय को विचारण अग्रसर करने से पूर्व इसका निपटारा करना होता है । यदि वादपत्र (वर्तमान मामले में निर्वाचन याचिका) आरंभ में ही खारिज हो जाता है, तो मामले में विचारण अग्रसर करने का कोई तात्पर्य या समझदारी नहीं है । इसलिए प्रतिवादी अपना लिखित कथन फाइल करने से पूर्व वादपत्र नामंजूर किए जाने का आवेदन फाइल करने का हकदार है । यदि आवेदन खारिज किया जाता है, तो प्रतिवादी उसके पश्चात् अपना लिखित कथन फाइल करने का हकदार है । प्रस्तुत मामले में, स्पष्ट तौर पर, यह दिखाई पड़ता है कि तारीख 15 मार्च, 2015 का शपथपत्र प्रदर्श-पी/4 सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन वर्तमान निर्वाचन याचिका को खारिज करने के अनुरोध के साथ निर्वाचन याचिका में समन की प्राप्ति के तीस दिन के भीतर फाइल किया गया था । तथापि, न्यायालय औपचारिक आवेदन के अभाव में उस पर विचार करने के लिए तैयार नहीं था, अतः तारीख 22 फरवरी, 2016 को प्रदर्श-पी/5-आवेदन, 2016 का नि. आ. सं. 222, फाइल किया गया, जिस पर यह आक्षेपित आदेश पारित किया गया कि आवेदन को विचार करने के लिए अंतिम सुनवाई के समय सूचीबद्ध किया जाए । उच्च न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया विधि के अधीन उपयुक्त नहीं है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल आवेदन का निपटारा किए बिना न्यायालय विचारण के लिए अग्रसर नहीं हो सकता है । मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए, आक्षेपित आदेश को अपास्त किया ही जाना चाहिए और तद्नुसार ऐसा आदेश किया जाता है । तथापि, अपीलार्थी की ओर से निर्वाचन याचिका के विचारण को विलंबित करने के अभिकथित प्रयत्न के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई चिंता से इनकार नहीं किया जा सकता है । अतः, इस न्यायालय ने अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन पर सुना । इस न्यायालय का यह समाधान हो गया है कि उक्त आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11(क) से (च) के अधीन आने वाली किसी भी स्थिति की परिधि के भीतर नहीं आता है । अतः, यह आवेदन नामंजूर किया जाता है । इस मामले के विलक्षण तथ्यों को देखते हुए, जिनका न्यायालय ने ऊपर वर्णन किया है, अपीलार्थी को आज से दो सप्ताह के भीतर निर्वाचन याचिका में लिखित कथन फाइल करने का अवसर दिया जाता है । (पैरा 6, 8, 9 और 10)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2004]	(2004) 3 एस. सी. सी. 137 : **सोपन सुखदेव साबले और अन्य** बनाम **सहायक पूर्त आयुक्त और अन्य** ;	5, 6
[2003]	(2003) 1 एस. सी. सी. 557 : **सलीम भाई और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य** ।	6, 7

अपीली (सिविल) अधिकारिता : 2016 की सिविल अपील सं. 5540.

2014 की निर्वाचन याचिका सं. 4 में फाइल 2016 के निर्वाचन आवेदन सं. 222 में तेलंगाना राज्य और आंध्र प्रदेश राज्य के लिए हैदराबाद स्थित उच्च न्यायालय के तारीख 24 अप्रैल, 2016 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री वी. गिरि, ज्येष्ठ अधिवक्ता, अमित कुमार, ए. रमेश, सयैद अहमद, आलम रमेश (सुश्री) शिल्पी गुप्ता, शौर्य सहाय, अविजित मणि त्रिपाठी, पृथ्वी पाल और (सुश्री) रेखा बक्शी

प्रत्यर्थियों की ओर से सर्वश्री आदिनारायण राव, ज्येष्ठ अधिवक्ता, सुयोधन बी. और (सुश्री) ततिनी बसु

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ ने दिया ।

न्या. जोसेफ – इजाजत दी गई ।

2. अपीलार्थी की दो शिकायते हैं – (i) न्यायालय ने सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (जिसे इसमें इसके पश्चात् "संहिता" कहा गया है) के आदेश 7, नियम 11 के अधीन उसके द्वारा निर्वाचन याचिका को नामंजूर करने के लिए फाइल किए गए आवेदन का निपटारा नहीं किया है और उसे मुख्य याचिका के साथ सूचीबद्ध किया गया है, और (ii) उसे लिखित कथन फाइल करने के अवसर से इनकार किया गया है ।

3. इस मामले में प्रथम प्रत्यर्थी ने अपीलार्थी के 289 नागिरी विधानसभा निर्वाचन क्षेत्र से उसके निर्वाचन को चुनौती देते हुए एक निर्वाचन याचिका फाइल की । अपीलार्थी को तारीख 16 मई, 2014 को निर्वाचित घोषित किया गया था । निर्वाचन याचिका तारीख 30 जून, 2014 की है । अपीलार्थी को निर्वाचन याचिका में सूचना प्राप्त होने पर उसने एक प्रति-शपथपत्र के द्वारा याचिका को नामंजूर करने के लिए सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन प्रदर्श-पी/4 फाइल किया । यह प्रतीत होता है कि न्यायालय ने उस पर इस आधार पर विचार करने से इनकार कर दिया कि कोई औपचारिक आवेदन फाइल नहीं किया गया है और इसलिए विचारण की कार्यवाही आरंभ की गई । उस प्रक्रम पर अपीलार्थी ने औपचारिक आवेदन प्रदर्श-पी/5 निर्वाचन याचिका को इस आधार पर नामंजूर करने के लिए फाइल किया कि निर्वाचन याचिका से कोई वाद हेतुक प्रकट नहीं होता है । तारीख 27 अप्रैल, 2016 के आक्षेपित आदेश के अनुसार वह आवेदन मुख्य याचिका के साथ सूचीबद्ध किया गया है और इसलिए यह अपील फाइल की गई है ।

4. उच्च न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया है कि आवेदन "शीघ्रतम अवसर पर फाइल नहीं किया गया" और अपीलार्थी आवेदन का संचालन करने में तत्पर नहीं था । इसलिए न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि..... "प्रथम प्रत्यर्थी द्वारा फाइल किए गए इस आवेदन का विनिश्चय अंतिम सुनवाई के समय किया जाएगा..... " ।

5. हमें खेद है कि आक्षेपित आदेश में उच्च न्यायालय द्वारा लिए गए आधार की सराहना नहीं की जा सकती है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन किसी भी प्रक्रम पर फाइल किया जा सकता है, जैसा कि **सोपन सुखदेव साबले और अन्य** बनाम **सहायक पूर्त आयुक्त और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा अभिनिर्धारित किया गया है..... "विचारण न्यायालय वाद के किसी प्रक्रम पर-वादपत्र रजिस्ट्रीकृत करने से पूर्व या प्रतिवादी को समन जारी करने के पश्चात् विचारण के समापन से पूर्व किसी समय पर शक्ति का प्रयोग कर सकता है...." । एकमात्र निर्बंधन यह है कि आवेदन को नामंजूर करने पर विचार प्रतिवादी द्वारा अपने लिखित कथन में किए गए अभिकथनों या वादपत्र को नामंजूर करने के लिए फाइल आवेदन में किए गए अभिकथनों के आधार

---

[1] (2004) 3 एस. सी. सी. 137.

पर नहीं होना चाहिए । न्यायालय को समग्र रूप से केवल वादपत्र पर विचार करना होता है और यदि संपूर्ण वादपत्र सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11(क) से (च) के अंतर्गत आने वाली परिस्थितियों के अधीन आता है, तो इसे नामंजूर कर दिया जाना चाहिए ।

6. जब सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन फाइल किया जाता है, तो न्यायालय को विचारण अग्रसर करने से पूर्व इसका निपटारा करना होता है । यदि वादपत्र (वर्तमान मामले में निर्वाचन याचिका) आरंभ में ही खारिज हो जाता है, तो मामले में विचारण अग्रसर करने का कोई तात्पर्य या समझदारी नहीं है । इसलिए प्रतिवादी अपना लिखित कथन फाइल करने से पूर्व वादपत्र नामंजूर किए जाने का आवेदन फाइल करने का हकदार है । यदि आवेदन खारिज किया जाता है, तो प्रतिवादी उसके पश्चात् अपना लिखित कथन फाइल करने का हकदार है (**सलीम भाई और अन्य** बनाम **महाराष्ट्र राज्य और अन्य**[1] वाला मामला देखें) । किंतु जब एक बार नामंजूरी के लिए आवेदन फाइल कर दिया जाता है, तो न्यायालय को विचारण अग्रसर करने से पूर्व इसका निपटारा करना होता है । **सोपन सुखदेव साबले** (उपरोक्त) वाले मामले के पैरा 20 का सुसंगत भाग उद्धृत किया जाता है :–

> "20. .....आदेश 7, नियम 11 में प्रतिवादी को वाद का गुणागुण के आधार पर प्रतिवाद करने के उसके अधिकार को विचार में लाए बिना, स्वतः वाद की संधार्यता को चुनौती देने का उपलभ्य स्वतंत्र उपचार अधिकथित किया गया है । विधि में स्पष्ट रूप से ऐसा कोई प्रक्रम अनुध्यात नहीं किया गया है कि कब आक्षेप किए जा सकते हैं, और लिखित कथन फाइल करने के बारे में भी अभिव्यक्त शब्दों में उपबंध नहीं है । इसके बजाय, 'करेगा' शब्द प्रयुक्त किया गया है, जिससे स्पष्ट रूप से यह विवक्षित है कि इसके द्वारा न्यायालय पर यह कर्तव्य अधिरोपित किया गया है कि जब वाद नियम 11 के चार खंडों में उपबंधित कमियों में से किसी कमी से ग्रस्त है तो प्रतिवादी के हस्तक्षेप के बिना ही इसे नामंजूर करने की अपनी बाध्यताओं का पालन करे..... ।"

7. **सलीम भाई** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि ..... "आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल

---

[1] (2003) 1 एस. सी. सी. 557.

आवेदन का विनिश्चय किए बिना लिखित कथन फाइल करने का निदेश नहीं दिया जा सकता था अपितु यह विचारण न्यायालय की अधिकारिता के प्रयोग के संबंध में एक प्रक्रियात्मक अनियमितता थी ।" तथापि, हम यह भी कहना चाहेंगे कि सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन वादपत्र को नामंजूर किए जाने का आवेदन फाइल करने की स्वतंत्रता को लिखित कथन फाइल करने के लुप्त हो गए अवसर को पुनः प्राप्त करने के लिए एक चाल के रूप में प्रयोग नहीं किया जा सकता है ।

8. प्रस्तुत मामले में, स्पष्ट तौर पर, यह दिखाई पड़ता है कि तारीख 15 मार्च, 2015 का शपथपत्र प्रदर्श-पी/4 सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन वर्तमान निर्वाचन याचिका को खारिज करने के अनुरोध के साथ निर्वाचन याचिका में समन की प्राप्ति के तीस दिन के भीतर फाइल किया गया था । तथापि, न्यायालय औपचारिक आवेदन के अभाव में उस पर विचार करने के लिए तैयार नहीं था, अतः तारीख 22 फरवरी, 2016 को प्रदर्श-पी/5-आवेदन (2016 का नि. आ. सं. 222) फाइल किया गया, जिस पर यह आक्षेपित आदेश पारित किया गया कि आवेदन को विचार करने के लिए अंतिम सुनवाई के समय सूचीबद्ध किया जाए ।

9. न्यायालय द्वारा अपनाई गई प्रक्रिया विधि के अधीन उपयुक्त नहीं है । सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन फाइल आवेदन का निपटारा किए बिना न्यायालय विचारण के लिए अग्रसर नहीं हो सकता है । मामले को इस प्रकार दृष्टिगत करते हुए, आक्षेपित आदेश को अपास्त किया ही जाना चाहिए और तद्नुसार ऐसा आदेश किया जाता है ।

10. तथापि, अपीलार्थी की ओर से निर्वाचन याचिका के विचारण को विलंबित करने के अभिकथित प्रयत्न के संबंध में उच्च न्यायालय द्वारा व्यक्त की गई चिंता से इनकार नहीं किया जा सकता है । अतः, हमने अपीलार्थी की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् ज्येष्ठ काउंसेल को सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11 के अधीन आवेदन पर सुना । हमारा यह समाधान हो गया है कि उक्त आवेदन सिविल प्रक्रिया संहिता के आदेश 7, नियम 11(क) से (च) के अधीन आने वाली किसी भी स्थिति की परिधि के भीतर नहीं आता है । अतः, यह आवेदन नामंजूर किया जाता है । इस मामले के विलक्षण तथ्यों को देखते हुए, जिनका हमने ऊपर वर्णन किया है, अपीलार्थी को आज से दो सप्ताह के भीतर निर्वाचन याचिका में लिखित कथन फाइल करने का अवसर दिया जाता है ।

11. चूंकि निर्वाचन याचिका वर्ष 2014 से उच्च न्यायालय के समक्ष लंबित है, इसलिए हम उच्च न्यायालय से इसे इस वर्ष के अंत तक निपटाने का अनुरोध करते हैं ।

12. तद्नुसार, इस अपील का निपटारा किया जाता है ।

अपील का निपटारा किया गया ।

जस.

[2016] 4 उम. नि. प. 127

मुख्तयार सिंह

बनाम

पंजाब राज्य

5 जुलाई, 2016

न्यायमूर्ति चेलामेश्वर और न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल

भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 (1988 का 49) – धारा 7, 13(1)(घ), 13(2) और 20 – लोक सेवक द्वारा अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति – अभिलेख के तथ्यों से संदेह के परे यह साबित होने पर कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने एक विशिष्ट कार्य करने के लिए धन की मांग की थी और उसने वास्तव में इसे स्वीकार किया था और उसे छापामार दल द्वारा रंगे हाथों पकड़ा गया था, इसलिए निचले न्यायालयों द्वारा की गई उसकी दोषसिद्धि उचित है और उसमें हस्तक्षेप करने की आवश्यकता नहीं है ।

अपीलार्थी-अभियुक्त सुसंगत समय पर पटियाला में राजस्व पटवारी के रूप में तैनात था । शिकायतकर्ता, अर्जन सिंह अपनी भूमि की जमाबंदी की प्रति लेने के लिए अपीलार्थी के पास उसके कार्यालय में गया । अपीलार्थी ने उससे इस कार्य के लिए 600/- रुपए की रिश्वत की मांग की । अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता को अगले दिन धन लेकर आने के लिए कहा गया । शिकायतकर्ता रिश्वत का संदाय करने का इच्छुक नहीं था, इसलिए उसने पुलिस उप अधीक्षक, सतर्कता ब्यूरो, पटियाला के पास एक लिखित शिकायत दर्ज कराई । उक्त शिकायत के आधार पर अभियुक्त को रंगे

हाथों पकड़ने के लिए जाल बिछाया गया और 500/- तथा 100/- रुपए के करेंसी नोटों पर फेनोलफेथालियन पाउडर लगाकर और उनके संख्यांक अभिलिखित करने के पश्चात् शिकायतकर्ता को सौंपे गए । जब शिकायतकर्ता छाया साक्षी के साथ कार्यालय के अंदर गया तो उन्हें देखकर अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता से पूछा कि धन लेकर आए हो । उसने सकारात्मक उत्तर दिया और करेंसी नोट अपीलार्थी को सौंप दिए और अपीलार्थी द्वारा वे नोट मेज की दराज में रख दिए गए । अपीलार्थी-अभियुक्त ने शिकायतकर्ता के हस्ताक्षर अभिप्राप्त करने के पश्चात् जमाबंदी की प्रति उसे सौंप दी । छाया साक्षी अपीलार्थी-अभियुक्त के कार्यालय से बाहर आया और एक विनिर्दिष्ट रीति में संकेत किया । उसके उपरांत छापामार दल ने अन्य शासकीय साक्षी की मौजूदगी में अपीलार्थी-अभियुक्त से धन बरामद किया और उसके हाथ धुलवाए गए, जो गुलाबी हो गए और आवश्यक औपचारिकताओं का पालन करने के पश्चात् भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13(2) के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । विशेष न्यायाधीश, पटियाला ने अपीलार्थी-अभियुक्त को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) और 7 के साथ पठित धारा 13(1)(घ) के अधीन दोषसिद्ध किया और दंडादिष्ट किया । अपीलार्थी-अभियुक्त ने विशेष न्यायाधीश के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय ने विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित दोषसिद्धि के आदेश की पुष्टि की और दोनों अपराधों में से प्रत्येक के लिए दो वर्ष के कारावास के दंडादेश को कम करके एक-एक वर्ष कर दिया । अपीलार्थी-अभियुक्त ने उच्च न्यायालय के दोषसिद्धि की पुष्टि करने वाले आदेश के विरुद्ध उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील खारिज करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि शिकायतकर्ता द्वारा फाइल की गई शिकायत के आधार पर तारीख 6 सितम्बर, 1996 को जाल बिछाया गया और अपीलार्थी-अभियुक्त को सतर्कता विभाग, पटियाला द्वारा रंगे हाथों पकड़ा गया । जाल बिछाते समय सम्यक् प्रक्रिया का पालन किया गया था, जिसमें बख्शीश सिंह को छाया साक्षी के रूप में नामनिर्दिष्ट किया गया था, जो शिकायतकर्ता-अर्जन सिंह के साथ गया था और शिकायतकर्ता को 500/- और 100/- रुपए के करेंसी नोट फेनोलफेथालियन पाउडर लगाकर और उनके संख्यांक अभिलिखित करने के पश्चात् सौंपे गए थे । जब वे दोनों कार्यालय के अंदर गए तो

अपीलार्थी-अभियुक्त, जो कुर्सी पर बैठा हुआ था, ने उनको देखकर शिकायतकर्ता से पूछा कि क्या धन लेकर आए हो । जब अभि. सा. 6 ने सकारात्मक उत्तर दिया तो अपीलार्थी-अभियुक्त ने उससे 600/- रुपए लिए और अपनी मेज की दाएं हाथ की तरफ की ऊपर वाली दराज में रख दिए और एक रजिस्टर में उसके हस्ताक्षर अभिप्राप्त करने के पश्चात्, जहां शिकायतकर्ता ने हस्ताक्षर किए और तारीख 6.9.1996 डाली, उसे जमाबंदी की प्रति सौंप दी । छाया साक्षी अभियुक्त के कार्यालय से बाहर आया और एक विनिर्दिष्ट रीति में संकेत किया । उसके उपरांत, पुलिस उप अधीक्षक, अमर नाथ छापामार दल के अन्य सदस्यों के साथ अभियुक्त के कार्यालय के अंदर गया । एक गिलास पानी मंगाया गया और पानी में सोडियम कार्बोनेट मिलाया गया । जब अभियुक्त के दोनों हाथों की अंगुलियों को घोल में धुलवाया गया, तो घोल का रंग हल्का गुलाबी हो गया और करेंसी नोटों के संख्यांकों का भी मिलान किया गया तथा वे अन्वेषक दल द्वारा कब्जे में लिए गए । आवश्यक औपचारिकताएं पूर्ण करने के पश्चात् अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया । अन्वेषण की रीति और अभियोजन से संबंधित विभिन्न पहलुओं को साबित करने के लिए केवल कृष्ण नामक व्यक्ति की अभि. सा. 5 के रूप में परीक्षा कराई गई । अभि. सा. 5 शासकीय साक्षी है और छापे में सहयुक्त था । उपायुक्त कार्यालय, पटियाला में लिपिक बलबीर सिंह, कानूनगो (अभि. सा. 3) ने न्यायालय के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया कि अपीलार्थी-अभियुक्त उसके अधीन कार्यरत था और उसे अभियुक्त की लिखाई प्राप्त होती रहती थी । इस आधार पर, उसने जमाबंदी की प्रति पर अभियुक्त की लिखाई और हस्ताक्षर की शनाख्त की । शिकायतकर्ता ने अपने अभिसाक्ष्य में न्यायालय के समक्ष संपूर्ण घटना का वर्णन किया । अभि. सा. 5 ने शिकायतकर्ता-अर्जन सिंह के कथन की पूर्ण रूप से संपुष्टि की । यद्यपि अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल ने प्रक्रिया में खामियां बताई, तो भी अपराध में फंसाने वाले करेंसी नोटों की बरामदगी, उनकी पहचान या साक्षियों की विश्वसनीयता जैसे मामले के तात्विक पहलुओं की बाबत कोई फर्क नहीं पाया गया है । जब साक्षी की शपथ पर विस्तारपूर्वक परीक्षा की जाती है, तो उसके लिए कुछ-न-कुछ फर्क करना पूरी तरह संभव है । सच्चे से सच्चा साक्षी संभवतः कुछ-न-कुछ असंगत ब्यौरे देने से बच नहीं सकता है । अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा यह आक्षेप किया गया कि जमाबंदी की प्रति तारीख 4 सितम्बर, 1996 को तैयार की गई थी और इस प्रकार अपीलार्थी-अभियुक्त के पास तारीख 6 सितम्बर, 1996 को

अवैध परितोषण की मांग करने का कोई अवसर नहीं था । इस बिंदु को सिद्ध करने का सर्वोत्तम साक्ष्य वह उजर्त रजिस्टर था जिसमें जमाबंदी की प्रति के परिदान के प्रतीक-स्वरूप शिकायतकर्ता के हस्ताक्षर अभिप्राप्त किए गए थे, किंतु अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से उक्त रजिस्टर को अभिलेख पर लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया । उक्त प्रविष्टि पर सुसंगत स्तंभ में 4.9.1996 की तारीख लिखी है, किंतु अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा उक्त प्रविष्टि पर शिकायतकर्ता के प्रति की प्राप्ति के संबंध में हस्ताक्षर छापा डाले जाने के समय अर्थात् 6.9.1996 को अभिप्राप्त किए गए थे । अन्यथा भी, मांग, स्वीकृति और अपराध में फंसाने वाले करेंसी नोटों की अभियुक्त से बरामदगी को पर्याप्त रूप से साबित किया गया है । यह आक्षेप, कि जाल में फंसाने की बात की विश्वसनीयता इस बात से क्षीण हो जाती है क्योंकि शीशी में संग्रह किया गया घोल रसायन परीक्षक के पास नहीं भेजा गया था, इतना तुच्छ है कि इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है । इसके अतिरिक्त, यह भी प्रकथन किया गया कि अपीलार्थी-अभियुक्त के हाथ तब फेनोलफेथालियन पाउडर के संपर्क में आ गए होंगे जब उसे अन्वेषक अधिकारी द्वारा पकड़ा गया था और इस प्रकार फेनोलफेथालियन सोडियम कार्बोनेट परीक्षण के आधार पर दोषसिद्धि अभिलिखित नहीं की जा सकती है । प्रस्तुत मामले में, अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि अन्वेषक अधिकारी ने अभियुक्त-अपीलार्थी के साथ हाथ मिलाया था या उसके हाथ पकड़े थे और इसलिए अन्वेषक अधिकारी के हाथों से अभियुक्त के हाथों पर फेनोलफेथालियन पाउडर स्थानांतरित हो जाने का कोई अवसर नहीं था । अन्यथा भी, अपीलार्थी-अभियुक्त की अभिरक्षा से दूषित करेंसी नोटों की बरामदगी को प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है । (पैरा 12 और 13)

तथ्यों के आधार पर उपधारणा करने के लिए सिद्ध किया जाने वाला आधार यह है कि मांग की गई थी, संदाय किया गया था और परितोषण स्वीकार किया गया था । जब उक्त आधार सिद्ध हो जाता है, तो जो निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए वह यह है कि उक्त परितोषण कोई पदीय कृत्य करने या करने से प्रविरत रहने के लिए "हेतुक या ईनाम के रूप में" स्वीकार किया गया था । इसलिए "परितोषण" शब्द का अर्थ ईनाम लगाने का प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ईनाम उस उपधारणा का परिणाम है जो न्यायालय को इस तथ्यात्मक आधार पर निकालना होता है कि परितोषण का संदाय हुआ था । इस बात की पुष्टि पुनः परस्पर सटी दो

अभिव्यक्तियों "परितोषण या अन्य मूल्यवान वस्तु" के समुच्चय को देखने पर हो जाती है । यदि किसी मूल्यवान वस्तु की स्वीकृति यह उपधारणा करने में सहायक हो सकती है कि वह वस्तु कोई पदीय कृत्य करने या करने से प्रविरत रहने के लिए हेतुक या ईनाम के रूप में स्वीकार की गई थी, तो "परितोषण" शब्द का अर्थ उस लोक सेवक की संतुष्टि के लिए किए गए संदाय के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, जिसने यह स्वीकार किया है । प्रस्तुत मामले में, अभिलेख के तथ्यों से संदेह के परे यह साबित होता है कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने एक विशिष्ट कार्य करने के लिए धन की मांग की थी और उसने वास्तव में इसे स्वीकार किया था । उसे रंगे हाथों पकड़ा गया था और इसलिए यह न्यायालय विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के निष्कर्षों से असहमत होने का कोई कारण नहीं पाता है । इस न्यायालय द्वारा अनेक विनिश्चयों में अधिकथित विधि का स्थिर सिद्धांत यह है कि जब अवैध परितोषण की मांग और यह जानते हुए कि यह रिश्वत है इसकी स्वेच्छा से स्वीकृति को साक्ष्य द्वारा साबित कर दिया जाता है तब अभियुक्त के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अधीन दोषसिद्धि लाजिमी है । वास्तव में, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अधीन अपराध को साबित करने के लिए ये दो अपेक्षाएं अत्यावश्यक हैं । इस न्यायालय द्वारा किए गए साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन के प्रकाश में और पूर्वोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए यह न्यायालय भी इस निष्कर्ष पर पहुंचा है कि प्रस्तुत मामले में अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति की दोनों अपेक्षाएं अभियोजन पक्ष द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर साबित होती हैं और इसलिए अपीलार्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(घ) और 13(2) के साथ पठित धारा 7 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए ठीक ही दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया है । (पैरा 15 और 18)

अवलंबित निर्णय

		पैरा
[2013]	(2013) 14 एस. सी. सी. 153 : **पंजाब राज्य** बनाम **मदन मोहन लाल वर्मा** ;	16
[2010]	(2010) 15 एस. सी. सी. 1 : **सी. एम. शर्मा** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य** ;	17

[1998] (1998) 1 एस. सी. सी. 557 :
उत्तर प्रदेश राज्य बनाम **ज़काउल्लाह** । 12

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2012 की दांडिक अपील सं. 618.

2002 की दांडिक अपील सं. 852-एसबी में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ के तारीख 28 जुलाई, 2011 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री ए. एस. पुंडीर और अरिजीत सिंह

प्रत्यर्थी की ओर से सर्वश्री वी. मधुकर, अपर महाधिवक्ता, (सुश्री) अंविता गुरशिश, मोहित नैन और कुलदीप सिंह

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल ने दिया ।

न्या. अग्रवाल – यह अपील 2002 की दांडिक अपील सं. 852-एसबी में पंजाब और हरियाणा उच्च न्यायालय, चंडीगढ़ द्वारा तारीख 28 जुलाई, 2011 को पारित उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने दांडिक मामला सं. 20टी/2001/11.4.97 में विशेष न्यायाधीश, पटियाला द्वारा तारीख 3 मई, 2002 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध इस अपील में अपीलार्थी द्वारा फाइल की गई अपील का निपटारा दोषसिद्धि की अभिपुष्टि और दंडादेश को कम करते हुए किया गया ।

2. संक्षिप्त तथ्य :

(क) मुख्तयार सिंह-अपीलार्थी सुसंगत समय पर पटियाला में राजस्व पटवारी के रूप में तैनात था । अर्जन सिंह-शिकायतकर्ता अपीलार्थी के पास उसके कार्यालय में गया और अपनी भूमि की वर्ष 1992-93 की जमाबंदी की एक प्रति देने का अनुरोध किया । अभियोजन पक्ष के अनुसार, अपीलार्थी प्रति देने के लिए सहमत हो गया बशर्ते उसे 600/- रुपए का संदाय किया जाए । अपीलार्थी द्वारा शिकायतकर्ता को अगले दिन धन लेकर आने के लिए कहा गया ।

(ख) शिकायतकर्ता (अभि. सा. 6), जो अपीलार्थी को रिश्वत का संदाय करने का इच्छुक नहीं था, ने बख्शीश सिंह (अभि. सा. 8) नामक व्यक्ति के समक्ष संपूर्ण घटना का खुलासा किया और उसकी सहायता

करने का अनुरोध किया । तारीख 6 सितम्बर, 1996 को बख्शीश सिंह और अर्जन सिंह ने पुलिस उप अधीक्षक, सतर्कता ब्यूरो, पटियाला के पास एक लिखित शिकायत दर्ज कराई ।

(ग) उपर्युक्त शिकायत के आधार पर जाल बिछाया गया और 500/- तथा 100/- रुपए के करेंसी नोटों पर फेनोलफेथालियन पाउडर लगाया गया और सम्यक् रूप से उनके संख्यांक अभिलिखित करने के पश्चात् शिकायतकर्ता को सौंपे गए । सम्यक् प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात् छापामार दल अर्जन सिंह (अभि. सा. 6) और बख्शीश सिंह (अभि. सा. 8) के साथ घटनास्थल पर पहुंचा । जब शिकायतकर्ता बख्शीश सिंह के साथ कार्यालय के अंदर गया तो उसने अपीलार्थी को अपनी कुर्सी पर बैठे हुए पाया और उन्हें देखकर अपीलार्थी ने शिकायतकर्ता से पूछा कि धन लेकर आए हो । अर्जन सिंह ने सकारात्मक उत्तर दिया और करेंसी नोट अपीलार्थी को सौंप दिए और अपीलार्थी द्वारा वे नोट मेज की दाएं हाथ की ओर की ऊपरी दराज में रख दिए गए । अपीलार्थी-अभियुक्त ने शिकायतकर्ता के हस्ताक्षर अभिप्राप्त करने के पश्चात् जमाबंदी की प्रति उसे सौंप दी ।

(घ) छाया साक्षी बख्शीश सिंह अपीलार्थी-अभियुक्त के कार्यालय से बाहर आया और एक विनिर्दिष्ट रीति में संकेत किया । उसके उपरांत अन्वेषक अधिकारी-श्री अमर नाथ, पुलिस उप अधीक्षक, सतर्कता ब्यूरो छापामार दल और शासकीय साक्षी-केवल कृष्ण (अभि. सा. 5) के साथ अपीलार्थी-अभियुक्त के कार्यालय के अंदर गए । अपीलार्थी-अभियुक्त से धन बरामद किया गया और उसके हाथ धुलवाए गए, जो गुलाबी हो गए । आवश्यक औपचारिकताओं का पालन करने के पश्चात् भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम, 1988 की धारा 7 और 13(2) के अधीन प्रथम इत्तिला रिपोर्ट, सं. 58, तारीख 9 सितम्बर, 1996, रजिस्ट्रीकृत की गई ।

(ङ) विशेष न्यायाधीश, पटियाला ने आपराधिक मामला सं. 20टी/2001/11.4.97 में तारीख 3 मई, 2002 के आदेश द्वारा अपीलार्थी-अभियुक्त को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(2) और 7 के साथ पठित धारा 13(1)(घ) के अधीन दोषसिद्ध किया और अधिनियम की धारा 7 तथा धारा 13(2) प्रत्येक के अधीन दो वर्ष का कठोर कारावास भुगतने का दंडादेश दिया और यह निदेश दिया कि दंडादेश साथ-साथ चलेंगे ।

(च) अपीलार्थी-अभियुक्त ने तारीख 3 मई, 2002 के आदेश से व्यथित होकर उच्च न्यायालय के समक्ष 2002 की दांडिक अपील सं. 852-एसबी फाइल की । उच्च न्यायालय ने तारीख 28 जुलाई, 2011 के आदेश द्वारा विशेष न्यायाधीश द्वारा पारित दोषसिद्धि के आदेश की पुष्टि की और दोनों अपराधों में से प्रत्येक के लिए दो वर्ष के कारावास के दंडादेश को कम करके एक-एक वर्ष कर दिया ।

(छ) अपीलार्थी-अभियुक्त ने तारीख 28 जुलाई, 2011 के आदेश से व्यथित होकर विशेष इजाजत द्वारा इस न्यायालय के समक्ष यह अपील फाइल की ।

3. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों की दलीलों को सुना और अभिलेखों का परिशीलन किया ।

परस्पर विरोधी दलीलें :

4. अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल ने इस न्यायालय के समक्ष यह दलील दी कि उच्च न्यायालय को इस बात का मूल्यांकन करना चाहिए था कि शिकायतकर्ता की भूमि की जमाबंदी की प्रति तारीख 4 सितम्बर, 1996 को तैयार की गई थी और अपीलार्थी-अभियुक्त के पास शिकायतकर्ता से अवैध परितोषण की रकम का संदाय किए जाने के लिए धन की मांग करने का कोई अवसर नहीं था । यह भी दलील दी गई कि शिकायतकर्ता ने जमाबंदी की प्रति तारीख 4 सितम्बर, 1996 को नहीं ली और उसने पुलिस कार्मिकों (सतर्कता) के साथ सांठ-गांठ की और अपीलार्थी को एक गढ़े हुए मामले में फंसाने के लिए तारीख 6 सितम्बर, 1996 को उसके कार्यालय में आए । विद्वान् काउंसेल ने आगे यह दलील दी कि शिकायतकर्ता अपीलार्थी से इसलिए नाराज था क्योंकि उसने शिकायतकर्ता की भूमि की जमाबंदी की एक प्रति उसके दत्तक पुत्र-निर्मल सिंह को प्रदाय की थी, जिसको शिकायतकर्ता अपनी संपत्ति में से कुछ भी उसे देना नहीं चाहता था ।

5. अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि धन की अभिकथित बरामदगी और अपीलार्थी-अभियुक्त के हाथ धुलवाना ये सभी गढ़ी हुई कहानियां हैं । गुरभेज सिंह (प्रति. सा. 1), हैड कांस्टेबल ने न्यायालय के समक्ष अपने अभिसाक्ष्य में यह कथन किया कि रजिस्टर सं. 19 में ऐसी कोई प्रविष्टि नहीं थी जिससे यह दर्शित हो कि तारीख 6 सितम्बर, 1996 को अपीलार्थी-अभियुक्त के हाथ धुले घोल वाली

शीशी जमा कराई गई थी तथा फील्ड रजिस्टर में भी ऐसी कोई प्रविष्टि नहीं थी जिससे यह दर्शित हो कि घोल रासायनिक परीक्षण के लिए भेजा गया था । विद्वान् काउंसेल ने आगे यह दलील दी कि वह रीति भी अति संदेहास्पद है जिसमें छापा डाला गया था और बरामदगी की गई थी । उसने बरामदगी की रीति में विभिन्न कमियां बताई और यह उल्लेख किया कि अन्वेषक अधिकारी द्वारा धन मेज की दराज से निकाला गया था, जबकि राजवंत सिंह (अभि. सा. 9) का यह कथन है कि दराज से धन अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा निकालकर दिया गया था ।

6. अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अंत में यह दलील दी कि शिकायतकर्ता तथा बख्शीश सिंह (अभि. सा. 8) अत्यंत हितबद्ध व्यक्ति हैं और रिश्वत की मांग तथा रिश्वत के धन की स्वीकृति के बारे में उनके परिसाक्ष्य अत्यंत संदेहास्पद हैं । अभियोजन पक्षकथन में अंतर्निहित कमियां अपीलार्थी-अभियुक्त की दोषिता को साबित करने के लिए पर्याप्त हैं ।

7. प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने उपरोक्त दलीलों का उत्तर देते हुए यह दलील दी कि अभियुक्त द्वारा रिश्वत के धन की मांग और स्वीकृति तथा अभियुक्त से इसकी बरामदगी को किसी संदेह के बिना साबित किया गया है और अन्यथा भी यह साबित किया गया है कि अपराध में आलिप्त करने वाले करेंसी नोट भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 20(1) के निबंधनों के अनुसार अभियुक्त की अभिरक्षा से बरामद किए गए थे जो उसके द्वारा जमाबंदी की प्रति जारी करने के लिए हेतुक और ईनाम के रूप में स्वीकार किए गए थे । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा यह साबित नहीं किया गया है कि शिकायतकर्ता को जमाबंदी की प्रति तारीख 4 सितम्बर, 1996 को परिदत्त की गई थी । वास्तव में, वह रजिस्टर, जिसमें जमाबंदी की प्रति के परिदान के प्रतीक-स्वरूप शिकायतकर्ता के हस्ताक्षर अभिप्राप्त किए गए थे, इस प्रयोजन के लिए सुसंगत साक्ष्य है ।

8. इस दावे के बारे में कि शिकायतकर्ता अपीलार्थी-अभियुक्त के प्रति उसके दत्तक पुत्र निर्मल सिंह को जमाबंदी की प्रति प्रदाय करने की वजह से विद्वेष रखता था, यह दलील दी गई कि निर्मल सिंह और शिकायतकर्ता के बीच मामले में पहले ही समझौता हो गया था तथा अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दर्शित करने के लिए अभिलेख पर कुछ नहीं लाया गया कि उसके द्वारा वास्तव में निर्मल सिंह को जमाबंदी

की प्रति प्रदाय की गई थी ।

9. प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने इस दलील के संबंध में कि हाथ धुले घोल को जमा करने की बात को दर्शित करने वाली कोई प्रविष्टि नहीं की गई थी, आगे यह दलील दी कि फेनोलफेथालियन सोडियम कार्बोनेट का परीक्षण करना विधि की अपेक्षा नहीं है और इस बारे में किसी कमी का कोई महत्व नहीं है । यह भी दलील दी गई कि अपीलार्थी-अभियुक्त की अभिरक्षा से दूषित करेंसी नोटों की बरामदगी प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा साबित की गई है । प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अंत में यह दलील दी कि निचले न्यायालयों ने अपीलार्थी-अभियुक्त को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के उपबंधों के अधीन ठीक ही दोषसिद्ध किया है और इस न्यायालय द्वारा हस्तक्षेप करने की कोई गुंजाइश नहीं है ।

10. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों द्वारा दी गई परस्पर विरोधी दलीलों का मूल्यांकन करने के लिए भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम के सुसंगत उपबंधों को उद्धृत करना सुसंगत है । ये उपबंध निम्नलिखित हैं :–

> "**7. लोक सेवक द्वारा अपने पदीय कार्य के लिए वैध पारिश्रमिक से भिन्न परितोषण लिया जाना –** जो कोई लोक सेवक होते हुए या होने की प्रत्याशा रखते हुए, वैध पारिश्रमिक से भिन्न किसी प्रकार का कोई भी परितोषण इस बात के करने के लिए हेतु या इनाम के रूप में किसी व्यक्ति से अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त करेगा या प्रतिगृहीत करने को सहमत होगा या अभिप्राप्त करेगा करने का प्रयत्न करेगा कि वह लोक सेवक अपना कोई पदीय कार्य करे या करने से प्रविरत रहे अथवा केन्द्रीय सरकार या किसी राज्य की सरकार या संसद् या राज्य विधानमंडल में या धारा 2 के खंड (ग) में निर्दिष्ट किसी स्थानीय प्राधिकारी, निगम या सरकारी कंपनी में या किसी लोक सेवक के यहां, चाहे वह नामित हो या नहीं, किसी व्यक्ति का कोई उपकार या अपकार करे या करने का प्रयत्न करे, वह कारावास से जिसकी अवधि तीन वर्ष से कम नहीं होगी किंतु सात वर्ष तक की हो सकेगी और जुर्माने से भी दंडित किया जाएगा ।
>
> **स्पष्टीकरण –** (क) 'लोक सेवक होने की प्रत्याशा रखते हुए' – यदि कोई व्यक्ति जो किसी पद पर होने की प्रत्याशा न रखते हुए,

दूसरों को प्रवंचना से यह विश्वास कराकर कि वह किसी पद पर पदासीन होने वाला है, और यह कि तब वह उनका उपकार करेगा, उससे परितोषण अभिप्राप्त करेगा, तो वह छल करने का दोषी हो सकेगा, किंतु वह इस धारा में परिभाषित अपराध का दोषी नहीं है ।

(ख) 'परितोषण' – 'परितोषण' शब्द धन संबंधी परितोषण तक या उन परितोषणों तक ही, जो धन में आंके जाने योग्य हैं, निर्बंधित नहीं है ।

(ग) 'वैध पारिश्रमिक' – 'वैध पारिश्रमिक' शब्द उस पारिश्रमिक तक ही निर्बंधित नहीं है जिसकी मांग कोई लोक सेवक विधिपूर्ण रूप से कर सकता है, किंतु उसके अंतर्गत वह समस्त पारिश्रमिक आता है, जिसको प्रतिगृहीत करने के लिए वह उस सरकार द्वारा या उस संगठन द्वारा, जिसकी सेवा में वह है, उसे अनुज्ञा दी गई है ।

(घ) 'करने के लिए हेतुक या इनाम' – वह व्यक्ति जो वह बात करने के लिए, जिसे करने का उसका आशय नहीं है या वह ऐसा करने की स्थिति में नहीं है, या जो उसने नहीं किया है, हेतुक या इनाम के रूप में परितोषण प्राप्त करता है, इस पद के अंतर्गत आता है ।

(ङ) जहां कोई लोक सेवक किसी व्यक्ति को यह गलत विश्वास करने के लिए उत्प्रेरित करता है कि सरकार में उसके असर से उस व्यक्ति को कोई हक प्राप्त हुआ है, और इस प्रकार उस व्यक्ति को इस सेवा के लिए पुरस्कार के रूप में लोक सेवक को धन या कोई अन्य परितोषण देने के लिए उत्प्रेरित करता है, तो यह इस धारा के अधीन लोक सेवक द्वारा किया गया अपराध होगा ।

13. लोक सेवक द्वारा आपराधिक अवचार– (1) कोई लोक सेवक आपराधिक अवचार का अपराध करने वाला कहा जाता है –

(क) यदि वह अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए वैध पारिश्रमिक से भिन्न कोई परितोषण ऐसे हेतु या इनाम के रूप में, जैसा कि धारा 7 में वर्णित है, किसी व्यक्ति से अभ्यासतः प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त करता है या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत होता है या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न करता है ; या

(ख) यदि वह अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज़ प्रतिफल के बिना या ऐसे प्रतिफल के लिए जिसका अपर्याप्त होना वह जानता है, किसी ऐसे व्यक्ति से जिसका कि अपने द्वारा या किसी ऐसे लोक सेवक द्वारा, जिसके वह अधीनस्थ है, की गई या की जा सकने वाली किसी कार्यवाही या कारबार से संबद्ध रहा होना, होना या हो सकना वह जानता है अथवा किसी ऐसे व्यक्ति से जिसका ऐसे संबद्ध व्यक्ति में हितबद्ध या उससे संबंधित होना वह जानता है, अभ्यासतः प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त करता है या प्रतिगृहीत करने के लिए सहमत होता है या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न करता है, या

(ग) यदि वह लोक सेवक के रूप में अपने को सौंपी गई या अपने नियंत्रणाधीन किसी संपत्ति का अपने उपयोग के लिए बेईमानी से या कपटपूर्वक दुर्विनियोग करता है या अन्यथा संपरिवर्तित करता है या किसी अन्य व्यक्ति को ऐसा करने देता है, या

(घ) यदि वह –

(i) भ्रष्ट या अवैध साधनों से अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज़ या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करता है ; या

(ii) लोक सेवक के रूप में अपनी स्थिति का अन्यथा दुरुपयोग करके अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज़ या धन संबंधी फायदा अभिप्राप्त करता है ; या

(iii) लोक सेवक के रूप में पद धारण करके किसी व्यक्ति के लिए कोई मूल्यवान चीज़ या धन संबंधी फायदा बिना किसी लोक हित के अभिप्राप्त करता है ; या

(ङ) यदि उसके या उसकी ओर से किसी व्यक्ति के कब्जे में ऐसे धन संबंधी साधन तथा ऐसी संपत्ति है जो उसकी आय के ज्ञात स्रोतों की अननुपातिक है अथवा उसके पद की कालावधि के दौरान किसी समय कब्जे में रही है जिसका वह लोक सेवक समाधानप्रद लेखा-जोखा नहीं दे सकता ।

स्पष्टीकरण – इस धारा के प्रयोजनों के लिए आय के ज्ञात स्रोत से अभिप्रेत है किसी विधिपूर्ण स्रोत से प्राप्त आय, जिस प्राप्ति की संसूचना, लोक सेवक को तत्समय लागू किसी विधि, नियमों या आदेशों के उपबंधों के अनुसार दे दी गई है ।

(2) कोई लोक सेवक जो आपराधिक अवचार करेगा, इतनी अवधि के लिए, जो चार वर्ष से कम की न होगी किंतु जो दस वर्ष तक की हो सकेगी, कारावास से दंडनीय होगा और जुर्माने का भी दायी होगा ।

20. जहां लोक सेवक वैध पारिश्रमिक से भिन्न परितोषण प्रतिगृहीत करता है, वहां उपधारणा – (1) जहां धारा 7 या धारा 11 या धारा 13 की उपधारा (1) के खंड (क) या खंड (ख) के अधीन दंडनीय अपराध के किसी विचारण में यह साबित कर दिया जाता है कि अभियुक्त व्यक्ति ने किसी व्यक्ति से (वैध पारिश्रमिक से भिन्न) कोई परितोषण या कोई मूल्यवान चीज़ अपने लिए या किसी अन्य व्यक्ति के लिए प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त की है अथवा प्रतिगृहीत करने के लिए सहमति दी है या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न किया है, वहां जब तक प्रतिकूल साबित न कर दिया जाए, यह उपधारणा की जाएगी कि उसने, यथास्थिति, उस परितोषण या मूल्यवान चीज़ को ऐसे हेतु या इनाम के रूप में, जैसा धारा 7 में वर्णित है, या यथास्थिति, प्रतिफल के बिना या ऐसे प्रतिफल के लिए, जिसका अपर्याप्त होना वह जानता है, प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त किया है अथवा प्रतिगृहीत या अभिप्राप्त करने का प्रयत्न किया है ।"

11. इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि शिकायतकर्ता द्वारा फाइल की गई शिकायत के आधार पर तारीख 6 सितम्बर, 1996 को जाल बिछाया गया और अपीलार्थी-अभियुक्त को सतर्कता विभाग, पटियाला द्वारा रंगे हाथों पकड़ा गया । जाल बिछाते समय सम्यक् प्रक्रिया का पालन किया गया था, जिसमें बख्शीश सिंह (अभि. सा. 8) को छाया साक्षी के रूप में नामनिर्दिष्ट किया गया था, जो शिकायतकर्ता-अर्जन सिंह (अभि. सा. 6) के साथ गया था और शिकायतकर्ता को 500/- और 100/- रुपए के करेंसी नोट फेनोलफेथालियन पाउडर लगाकर और उनके संख्यांक अभिलिखित करने के पश्चात् सौंपे गए थे । जब वे दोनों कार्यालय के अंदर गए तो अपीलार्थी-अभियुक्त, जो कुर्सी पर बैठा हुआ था, ने उनको देखकर

शिकायतकर्ता से पूछा कि क्या धन लेकर आए हो । जब अभि. सा. 6 ने सकारात्मक उत्तर दिया तो अपीलार्थी-अभियुक्त ने उससे छह सौ रुपए लिए और अपनी मेज की दाएं हाथ की तरफ की ऊपर वाली दराज में रख दिए और एक रजिस्टर में उसके हस्ताक्षर अभिप्राप्त करने के पश्चात्, जहां शिकायतकर्ता ने हस्ताक्षर किए और तारीख 6.9.1996 डाली, उसे जमाबंदी की प्रति सौंप दी । छाया साक्षी अभियुक्त के कार्यालय से बाहर आया और एक विनिर्दिष्ट रीति में संकेत किया । उसके उपरांत, पुलिस उप अधीक्षक, अमर नाथ छापामार दल के अन्य सदस्यों के साथ अभियुक्त के कार्यालय के अंदर गया । एक गिलास पानी मंगाया गया और पानी में सोडियम कार्बोनेट मिलाया गया । जब अभियुक्त के दोनों हाथों की अंगुलियों को घोल में धुलवाया गया, तो घोल का रंग हल्का गुलाबी हो गया और करेंसी नोटों के संख्यांकों का भी मिलान किया गया तथा वे अन्वेषक दल द्वारा कब्जे में लिए गए । आवश्यक औपचारिकताएं पूर्ण करने के पश्चात् अभियुक्त को गिरफ्तार किया गया ।

12. अन्वेषण की रीति और अभियोजन से संबंधित विभिन्न पहलुओं को साबित करने के लिए केवल कृष्ण नामक व्यक्ति की अभि. सा. 5 के रूप में परीक्षा कराई गई । अभि. सा. 5 शासकीय साक्षी है और छापे में सहयुक्त था । उपायुक्त कार्यालय, पटियाला में लिपिक बलबीर सिंह, कानूनगो (अभि. सा. 3) ने न्यायालय के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया कि अपीलार्थी-अभियुक्त उसके अधीन कार्यरत था और उसे अभियुक्त की लिखाई प्राप्त होती रहती थी । इस आधार पर, उसने जमाबंदी की प्रति पर अभियुक्त की लिखाई और हस्ताक्षर की शनाख्त की । शिकायतकर्ता ने अपने अभिसाक्ष्य में न्यायालय के समक्ष संपूर्ण घटना का वर्णन किया । अभि. सा. 5 ने शिकायतकर्ता-अर्जन सिंह (अभि. सा. 6) के कथन की पूर्ण रूप से संपुष्टि की । यद्यपि अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल ने प्रक्रिया में खामियां बताईं, तो भी अपराध में फंसाने वाले करेंसी नोटों की बरामदगी, उनकी पहचान या साक्षियों की विश्वसनीयता जैसे मामले के तात्विक पहलुओं की बाबत कोई फर्क नहीं पाया गया है । जब साक्षी की शपथ पर विस्तारपूर्वक परीक्षा की जाती है, तो उसके लिए कुछ-न-कुछ फर्क करना पूरी तरह संभव है । सच्चे से सच्चा साक्षी संभवतः कुछ-न-कुछ असंगत ब्यौरे देने से बच नहीं सकता है । अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा यह आक्षेप किया गया कि जमाबंदी की प्रति तारीख 4 सितम्बर, 1996 को तैयार की गई थी और

इस प्रकार अपीलार्थी-अभियुक्त के पास तारीख 6 सितम्बर, 1996 को अवैध परितोषण की मांग करने का कोई अवसर नहीं था । इस बिंदु को सिद्ध करने का सर्वोत्तम साक्ष्य वह उजर्त रजिस्टर था जिसमें जमाबंदी की प्रति के परिदान के प्रतीक-स्वरूप शिकायतकर्ता के हस्ताक्षर अभिप्राप्त किए गए थे, किंतु अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से उक्त रजिस्टर को अभिलेख पर लाने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया । उक्त प्रविष्टि पर सुसंगत स्तंभ में 4.9.1996 की तारीख लिखी है, किंतु अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा उक्त प्रविष्टि पर शिकायतकर्ता के प्रति की प्राप्ति के संबंध में हस्ताक्षर छापा डाले जाने के समय अर्थात् 6.9.1996 को अभिप्राप्त किए गए थे । अन्यथा भी, मांग, स्वीकृति और अपराध में फंसाने वाले करेंसी नोटों की अभियुक्त से बरामदगी को पर्याप्त रूप से साबित किया गया है । यह आक्षेप, कि जाल में फंसाने की बात की विश्वसनीयता इस बात से क्षीण हो जाती है क्योंकि शीशी में संग्रह किया गया घोल रसायन परीक्षक के पास नहीं भेजा गया था, इतना तुच्छ है कि इसे स्वीकार नहीं किया जा सकता है । **उत्तर प्रदेश राज्य** बनाम **ज़काउल्लाह**[1] वाले मामले में इस न्यायालय द्वारा इस बिंदु पर विचार किया गया था, जिसमें यह अभिनिर्धारित किया गया :–

> "13. .....हमारे समक्ष ऐसा कोई मामला नहीं आया है जहां पुलिस द्वारा जाल बिछाया गया हो और जिसमें फेनोलफेथालियन घोल को रसायन परीक्षक के पास भेजा गया हो । हम जानते हैं कि उक्त घोल सदैव इसलिए प्रयुक्त नहीं किया जाता कि कानूनी उपबंध द्वारा ऐसा कोई निदेश है, बल्कि पदधारियों के इस समाधान के लिए प्रयुक्त किया जाता है कि संदेहास्पद लोक सेवक ने वास्तव में रिश्वत के धन का लेनदेन किया था..... ।"

इसके अतिरिक्त, यह भी प्रकथन किया गया कि अपीलार्थी-अभियुक्त के हाथ तब फेनोलफेथालियन पाउडर के संपर्क में आ गए होंगे जब उसे अन्वेषक अधिकारी द्वारा पकड़ा गया था और इस प्रकार फेनोलफेथालियन सोडियम कार्बोनेट परीक्षण के आधार पर दोषसिद्धि अभिलिखित नहीं की जा सकती है । प्रस्तुत मामले में, अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कोई साक्ष्य नहीं है कि अन्वेषक अधिकारी ने अभियुक्त-अपीलार्थी के साथ हाथ मिलाया था या उसके हाथ पकड़े थे और इसलिए अन्वेषक अधिकारी के हाथों से अभियुक्त के हाथों पर फेनोलफेथालियन पाउडर स्थानांतरित

---

[1] (1998) 1 एस. सी. सी. 557.

हो जाने का कोई अवसर नहीं था । अन्यथा भी, अपीलार्थी-अभियुक्त की अभिरक्षा से दूषित करेंसी नोटों की बरामदगी को प्रत्यक्ष साक्ष्य द्वारा साबित किया गया है ।

13. न्यायालय के ध्यान में यह भी लाया गया कि शिकायतकर्ता-अर्जन सिंह उसके दत्तक पुत्र निर्मल सिंह को जमाबंदी की प्रति प्रदाय किए जाने के कारण अपीलार्थी-अभियुक्त के प्रति विद्वेष रखता था और वर्तमान मामला केवल उसी विद्वेष का परिणाम है । उपरोक्त को दृष्टिगत करते हुए, प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल द्वारा न्यायालय के समक्ष यह उल्लेख किया गया कि पूर्वोक्त निर्मल सिंह और शिकायतकर्ता के बीच मामले में समझौता हो गया था और अन्यथा भी अभिलेख पर यह दर्शित करने के लिए कोई सामग्री प्रस्तुत नहीं की गई है कि निर्मल सिंह को जमाबंदी की प्रति अपीलार्थी-अभियुक्त द्वारा प्रदाय की गई थी । यह दलील भ्रामक है । इसके अतिरिक्त, उक्त वाद का प्रस्तुत मामले से कोई लेना-देना नहीं है क्योंकि वह वाद तारीख 16 जनवरी, 1997 को अर्थात् 6 सितम्बर, 1996 की घटना की तारीख से बहुत बाद फाइल किया गया था ।

14. यहां यह भी उल्लेखनीय है कि हैड कांस्टेबल गुरचरण सिंह (अभि. सा. 1) ने अपने अभिसाक्ष्य में स्पष्ट रूप से यह कथन किया कि तारीख 6 सितम्बर, 1996 को उसके पास अन्य मामला संपत्ति के साथ-साथ अपीलार्थी-अभियुक्त के हाथ धुले मुहरबंद घोल को भी जमा कराया गया था और उसने सुसंगत रजिस्टर में इसकी प्रविष्टि की थी । यद्यपि इस साक्षी की इस पहलू पर प्रतिपरीक्षा नहीं की गई थी और यह वह व्यक्ति था जिसने प्रविष्टि की थी और यदि अपीलार्थी-अभियुक्त की ओर से विद्वान् काउंसेल का यह विचार है कि इसमें कोई विसंगति थी और अपीलार्थी-अभियुक्त इसका फायदा लेना चाहता था, तो उसका उक्त प्रविष्टि से सामना कराया जाना चाहिए था । वास्तव में, ऐसी कोई विसंगति नहीं थी क्योंकि अपीलार्थी-अभियुक्त के हाथ-धुले मुहरबंद घोल को जमा कराने की बात का रजिस्टर में उल्लेख किया गया है ।

15. तथ्यों के आधार पर उपधारणा करने के लिए सिद्ध किया जाने वाला आधार यह है कि मांग की गई थी, संदाय किया गया था और परितोषण स्वीकार किया गया था । जब उक्त आधार सिद्ध हो जाता है, तो जो निष्कर्ष निकाला जाना चाहिए वह यह है कि उक्त परितोषण कोई पदीय कृत्य करने या करने से प्रविरत रहने के लिए 'हेतुक या ईनाम के

रूप में' स्वीकार किया गया था । इसलिए 'परितोषण' शब्द का अर्थ ईनाम लगाने का प्रयास करने की आवश्यकता नहीं है क्योंकि ईनाम उस उपधारणा का परिणाम है जो न्यायालय को इस तथ्यात्मक आधार पर निकालना होता है कि परितोषण का संदाय हुआ था । इस बात की पुष्टि पुनः परस्पर सटी दो अभिव्यक्तियों 'परितोषण या अन्य मूल्यवान वस्तु' के समुच्चय को देखने पर हो जाती है । यदि किसी मूल्यवान वस्तु की स्वीकृति यह उपधारणा करने में सहायक हो सकती है कि वह वस्तु कोई पदीय कृत्य करने या करने से प्रविरत रहने के लिए हेतुक या ईनाम के रूप में स्वीकार की गई थी, तो 'परितोषण' शब्द का अर्थ उस लोक सेवक की संतुष्टि के लिए किए गए संदाय के संदर्भ में समझा जाना चाहिए, जिसने यह स्वीकार किया है । प्रस्तुत मामले में, अभिलेख के तथ्यों से संदेह के परे यह साबित होता है कि अपीलार्थी-अभियुक्त ने एक विशिष्ट कार्य करने के लिए धन की मांग की थी और उसने वास्तव में इसे स्वीकार किया था । उसे रंगे-हाथों पकड़ा गया था और इसलिए हम विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय के निष्कर्षों से असहमत होने का कोई कारण नहीं पाते हैं ।

16. **पंजाब राज्य** बनाम **मदन मोहन लाल वर्मा**[1] वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय में निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया गया है :–

> "इस मुद्दे पर विधि सुस्थिर है कि अधिनियम, 1988 के अधीन अपराध गठित करने के लिए अवैध परितोषण की मांग करना अत्यावश्यक है । जब मामले में सारभूत साक्ष्य विश्वसनीय न हो, दूषित धन की केवल बरामदगी अभियुक्त को तब तक दोषसिद्ध करने के लिए पर्याप्त नहीं है जब तक कि रिश्वत के संदाय को साबित करने के लिए या यह दर्शित करने के लिए साक्ष्य न हो कि धन स्वेच्छा से रिश्वत के रूप में लिया गया था । अवैध परितोषण के रूप में रकम की मांग करने और रकम स्वीकार करने के बारे में किसी साक्ष्य के अभाव में, अभियुक्त द्वारा रकम की मात्र प्राप्ति दोषी ठहराने के लिए पर्याप्त नहीं है । इसलिए यह भार अभियुक्त पर होता है कि अधिनियम, 1988 की धारा 20 के अधीन की गई कानूनी उपधारणा को, अभिलेख पर या तो प्रत्यक्ष या पारिस्थितिक साक्ष्य लाकर युक्तियुक्त अधिसंभाव्यता के साथ यह सिद्ध करने के लिए कि उसके

---

[1] (2013) 14 एस. सी. सी. 153.

द्वारा धन अधिनियम, 1988 की धारा 7 में यथा निर्दिष्ट किसी हेतु या परितोषण से भिन्न रूप में स्वीकार किया गया था, निरस्त करे । अधिनियम की धारा 20 के उपबंधों का अवलंब लेते समय न्यायालय के लिए यह अपेक्षित है कि अभियुक्त द्वारा दिए गए स्पष्टीकरण, यदि कोई हो, पर केवल अधिसंभाव्यता की प्रबलता की कसौटी के आधार पर विचार करे न कि सभी युक्तियुक्त संदेह के परे सबूत की कसौटी के आधार पर । तथापि, इससे पूर्व कि अभियुक्त को यह स्पष्ट करने के लिए कहा जाए कि उसके कब्जे में प्रश्नगत रकम कैसे पाई गई थी, अभियोजन पक्ष द्वारा आधारभूत तथ्यों को अवश्य सिद्ध करना चाहिए । शिकायतकर्ता जाल में फंसाने की सफलता के सरोकार के साथ एक हितबद्ध और पक्षपाती साक्षी होता है और उसके साक्ष्य का परीक्षण अवश्य ही उसी प्रकार किया जाना चाहिए जिस प्रकार किसी अन्य हितबद्ध साक्षी के साक्ष्य का किया जाता है । किसी उचित मामले में, न्यायालय अभियुक्त को दोषसिद्ध करने से पूर्व स्वतंत्र संपुष्टि की प्रत्याशा कर सकता है । (राम प्रकाश अरोड़ा **बनाम** पंजाब राज्य (ए. आई. आर. 1973 एस. सी. 498), टी. सुब्रामण्यन् **बनाम** तमिलनाडु राज्य (ए. आई. आर. 2006 एस. सी. 836), केरल राज्य और एक अन्य **बनाम** सी. पी. राव [(2011)6 एस. सी. सी. 450] और मुकुट बिहारी और एक अन्य **बनाम** राजस्थान राज्य [(2012)11 एस. सी. सी. 642] वाले मामले देखें) ।"

17. **सी. एम. शर्मा** बनाम **आंध्र प्रदेश राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने इसी सिद्धांत के आधार पर निम्नलिखित अभिनिर्धारित किया :–

"23. हमें श्री राय की इस मुख्य दलील को स्वीकार करने में तनिक भी संकोच नहीं है कि अधिनियम के अधीन अपराध का गठन करने के लिए अवैध परितोषण की मांग किया जाना अत्यावश्यक है । इसके अतिरिक्त, करेंसी नोटों की मात्र बरामदगी से ही अधिनियम के अधीन तब तक अपराध का गठन नहीं होता है जब तक कि सभी युक्तियुक्त संदेह के परे यह साबित नहीं किया जाता है कि अभियुक्त ने धन यह जानते हुए कि यह रिश्वत है स्वेच्छा से स्वीकार किया था । वर्तमान मामले के तथ्यों में हमारी यह राय है कि कृत्य को

---

[1] (2010) 15 एस. सी. सी. 1.

अधिनियम की धारा 7 और 13(1)(घ) की परिधि के अंतर्गत लाने के लिए दोनों संघटकों का समाधान हो गया है ।"

18. इस न्यायालय द्वारा अनेक विनिश्चयों में अधिकथित विधि का स्थिर सिद्धांत यह है कि जब अवैध परितोषण की मांग और यह जानते हुए कि यह रिश्वत है इसकी स्वेच्छा से स्वीकृति को साक्ष्य द्वारा साबित कर दिया जाता है तब अभियुक्त के विरुद्ध भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अधीन दोषसिद्धि लाजिमी है । वास्तव में, भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 7 के अधीन अपराध को साबित करने के लिए ये दो अपेक्षाएं अत्यावश्यक हैं । हमारे द्वारा किए गए साक्ष्य के पुनर्मूल्यांकन के प्रकाश में और पूर्वोक्त सिद्धांतों को ध्यान में रखते हुए हम भी इस निष्कर्ष पर पहुंचे हैं कि प्रस्तुत मामले में अवैध परितोषण की मांग और स्वीकृति की दोनों अपेक्षाएं अभियोजन पक्ष द्वारा अपीलार्थी के विरुद्ध प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर साबित होती हैं और इसलिए अपीलार्थी को भ्रष्टाचार निवारण अधिनियम की धारा 13(1)(घ) और 13(2) के साथ पठित धारा 7 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए ठीक ही दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया है ।

निष्कर्ष :

19. अपीलार्थी-अभियुक्त की यह दलील कि अभियोजन का पक्षकथन अनधिसंभाव्यता के आधार पर नामंजूर किए जाने के लिए उपयुक्त है, विनिर्दिष्ट और सकारात्मक साक्ष्य, जिसे अंतर्निहित रूप से अनधिसंभाव्य होना नहीं कहा जा सकता है, को देखते हुए हमें आकर्षित नहीं करती है । हमारी राय में, निचले न्यायालयों ने प्रतिरक्षा साक्ष्य को ठीक ही नामंजूर किया है । अतः, हमारी राय में, इस मामले में अभियोजन पक्ष ने अपीलार्थी-अभियुक्त की दोषिता को सभी युक्तियुक्त संदेह के परे साबित किया है ।

20. ऊपर उल्लिखित कारणों से यह अपील असफल होती है और इसे खारिज किया जाता है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

गुजरात राज्य

बनाम

जयराजभाई पुंजाभाई वारु

11 जुलाई, 2016

न्यायमूर्ति कुरियन जोसेफ और न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 32 – मृतका द्वारा पुलिस अधिकारी तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष मृत्युकालिक कथन – मृतका द्वारा अपने कथन में यह कहा जाना कि उस पर मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगाने वाला व्यक्ति अनजान व्यक्ति था और प्रत्यर्थी-पति तथा ससुराल वालों की कोई अंतर्ग्रस्तता नहीं थी – प्रत्यर्थी को अंतर्वलित करते हुए मृतका द्वारा अपने पिता के समक्ष किया गया मौखिक कथन विश्वसनीय न पाया जाना – पुलिस अधिकारी तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष प्रत्यर्थी की भूमिका के बारे में किए गए दोनों कथनों में कोई विरोधाभास न पाए जाने तथा पिता के समक्ष किया गया मौखिक कथन विश्वसनीय न पाए जाने पर उसके एकमात्र कथन के आधार पर प्रत्यर्थी को दोषसिद्ध नहीं किया जा सकता है ।

मृतका (रेखाबेन) का विवाह इस अपील में प्रत्यर्थी के साथ हुआ था और वह अपने ससुराल वालों अर्थात् पति, सास-ससुर, और ननद के साथ रह रही थी । उसे तारीख 10 मार्च, 2003 को 90 प्रतिशत दाह क्षतियों के साथ अस्पताल में भर्ती कराया गया । उसने अस्पताल में पुलिस के समक्ष यह कथन किया कि तारीख 10 मार्च, 2003 को सुबह लगभग 5.00 बजे, जब परिवार के अन्य सभी सदस्य घर में सो रहे थे, तब एक अनजान व्यक्ति उसके निकट आया और उसे कहा कि वह उसे लेने आया है और यह कहकर वह उसे रसोई में ले गया, उस पर मिट्टी का तेल छिड़का और माचिस की तिल्ली जलाकर उसे आग लगा दी तथा वहां से चला गया । वह अनजान व्यक्ति बाहरी व्यक्ति था जो सफेद कपड़े पहने हुआ था । चिल्लाने की आवाज सुनकर परिवार के अन्य सदस्य भी जाग गए और उसे यहां अस्पताल में भर्ती कराया । इस कथन को शिकायत के रूप में मानते हुए इसके आधार पर प्रथम इत्तिला रिपोर्ट रजिस्ट्रीकृत की गई । उसी दिन पूर्वाह्न में 8.25 बजे उसने कार्यपालक मजिस्ट्रेट, अमरेली के

समक्ष एक कथन किया और संपूर्ण घटना का वर्णन किया । दोपहर बाद रेखाबेन की क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई । मृतका के पिता द्वारा यह कहा गया कि मृतका ने अपनी मृत्यु से पूर्व यह बताया था कि उसके ससुराल वालों द्वारा घटना की रात्रि को उसे यातना दी गई थी और मिट्टी का तेल छिड़ककर आग लगा दी तथा उसे यह धमकी दी कि यदि घटना के बारे में किसी को बताया तो उसके एकमात्र भाई की हत्या कर दी जाएगी । इसलिए मृतका ने पुलिस अधिकारी और कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष जो मृत्युकालिक कथन किए, वह धमकी के अधीन किए गए थे । प्रत्यर्थी सहित उसके माता-पिता और बहिन को अभियुक्तों के रूप में नामित किया गया और भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 201 और 34 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया । सेशन न्यायाधीश, अमरेली ने मृतका के पति को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया, जबकि अन्य अभियुक्त व्यक्तियों को दोषमुक्त कर दिया । अभियुक्त-प्रत्यर्थी ने व्यथित होकर गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ द्वारा अपील मंजूर की गई । मृतका के पति को सभी आरोपों से दोषमुक्त करने वाले उच्च न्यायालय के आदेश से व्यथित होकर राज्य ने विशेष इजाजत याचिका के माध्यम से उच्चतम न्यायालय के समक्ष अपील फाइल की । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – प्रस्तुत मामले में, साक्ष्य के दो सेट हैं, एक पुलिस अधिकारी तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष किया गया कथन/घोषणा और दूसरा, मृतका द्वारा अपने पिता, जिसकी अभि. सा. 1 के रूप में परीक्षा कराई गई, के समक्ष किया गया कथन । अभिलेख पर की सामग्री की सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने के पश्चात् यह नहीं कहा जा सकता है कि पुलिस अधिकारी तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष किए गए कथनों में अपराध के कारित करने में प्रत्यर्थी की भूमिका के बारे में विरोधाभास हैं और ऐसी परिस्थितियों में साक्ष्य का वह एक सेट जो अधिक संगत और विश्वसनीय है और जो प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी के पक्ष में है, स्वीकार किया जाना चाहिए और अभि. सा. 1 के एकमात्र परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती है । बहुत बार नातेदार अन्वेषण अभिकरण पर असर डालते हैं और मृत्युकालिक कथन प्रस्तुत करते हैं । अन्वेषण अभिकरणों द्वारा अभिलिखित मृत्युकालिक कथनों की अत्यंत सावधानीपूर्वक परीक्षा की जानी चाहिए और न्यायालय को उस समय सभी विद्यमान

परिस्थितियों के प्रति सचेत रहना चाहिए जब मृत्युकालिक कथन अस्तित्व में आता है । एक से अधिक मृत्युकालिक कथनों की दशा में, उन मृत्युकालिक कथनों में के अंतर्निहित विरोधाभास अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं । यह नहीं हो सकता कि एक मृत्युकालिक कथन जो अभियोजन पक्ष का समर्थन करता है केवल उसे स्वीकार किया जा सकता हो जबकि निर्दोष होने के अन्य मृत्युकालिक कथनों को नामंजूर किया जाए । ऐसी प्रवृत्ति अत्यधिक खतरनाक होगी । तथापि, निचले न्यायालय मृत्युकालिक कथनों के आधार पर कार्यवाही करने के लिए पूरी तरह हकदार हैं और जहां मृत्युकालिक कथन उपरोक्त सभी परीक्षणों को पूरा करते हैं वहां उनके आधार पर दोषसिद्धि कर सकता है । (पैरा 10)

न्यायालय को सभी विद्यमान परिस्थितियों का मूल्यांकन करना चाहिए और इस स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि क्या मृत्युकालिक कथन उचित रूप से अभिलिखित किया गया था या नहीं और क्या वह स्वैच्छिक और सच्चा है । जब एक बार न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि मृत्युकालिक कथन उचित रूप से अभिलिखित किया गया है, तो उस पर कार्यवाही की जा सकेगी और दोषसिद्धि का आधार बनाया जा सकता है । न्यायालयों को यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि प्रत्येक दांडिक विचारण का पृथक्-पृथक् पहलू होता है । यह दूसरे विचारणों से किसी-न-किसी प्रकार से भिन्न हो सकता है और इसलिए मृत्युकालिक कथन की विधि के प्रति एक यंत्रवत दृष्टिकोण अपनाने से बचा जाना चाहिए । अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् इस न्यायालय का यह सुविचारित मत है कि पुलिस अधिकारी तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित मृतका के मृत्युकालिक कथनों की पूर्णतः संपुष्टि होती है और अपराध के कारित करने में प्रत्यर्थी की भूमिका के संबंध में कोई असंगति नहीं है । भिखू करसनभाई, थाना अधिकारी द्वारा अभिलिखित कथन, रेखाबेन (जिसकी मृत्यु हो चुकी है) के अंगूठे की छाप, जिसकी शनाख्त उसके पिता-श्री वला जसकुभाई सुरागभाई द्वारा की गई थी तथा उसकी प्रतिपरीक्षा जिसमें उसने यह स्वीकार किया कि पुलिस पहले ही आई हुई थी और उसने रेखाबेन के अंगूठे की छाप की शनाख्त की थी और मामलतदार कथन अभिलिखित करने के लिए अंदर गया था, का परिशीलन करने पर ऐसा कोई कारण नहीं है कि रेखाबेन अपने पिता को किए गए अभिकथित कथन में अपने पति और ससुराल वालों के नाम क्यों लेती । किसी मृत्युकालिक कथन को अत्यधिक महत्व दिया जाना चाहिए । मृतका

के पिता को किया गया मौखिक मृत्युकालिक कथन, जिसका अवलंब लेकर दोषसिद्धि की गई है, विश्वसनीय नहीं है और ऐसा कथन सोच-समझकर किया गया हो सकता है । यही कारण है कि न्यायालय भी इस बात पर जोर देता है कि मृत्युकालिक कथन ऐसी प्रकृति का होना चाहिए जिससे कि इसकी सत्यता पर न्यायालय का पूर्ण विश्वास प्रेरित हो सके । न्यायालय को इस बात के प्रति सचेत रहना चाहिए कि मृतक व्यक्ति का कथन सिखाने-पढ़ाने, भड़काने या कल्पनाशीलता का परिणाम न हो । न्यायालय का यह भी समाधान होना आवश्यक है कि हमलावरों को देखने और शनाख्त करने का स्पष्ट अवसर मिला था और उसके पश्चात् मृतक व्यक्ति की मानसिक हालत सही थी । जब एक बार न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि कथन सत्य और स्वैच्छिक है तो वह, निस्संदेह, किसी और संपुष्टि के बिना इसके आधार पर दोषसिद्धि कर सकता है । यह विधि के आत्यंतिक नियम के रूप में अधिकथित नहीं किया जा सकता है कि मृत्युकालिक कथन, जब तक इसकी संपुष्टि नहीं हो जाती, दोषसिद्धि के लिए एकमात्र आधार नहीं हो सकता है । संपुष्टि की अपेक्षा करने वाला नियम मात्र एक प्रज्ञा का नियम है । दांडिक विधि में सबूत का भार सभी युक्तियुक्त संदेह के परे हैं । अभियोजन पक्ष को अभियुक्त की दोषिता सभी युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करनी होती है और दांडिक विधि में यह भी न्याय का नियम है कि यदि मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर दो मत संभव हों, एक अभियुक्त की दोषिता को और दूसरा उसकी निर्दोषिता को इंगित कर रहा हो, तो वह मत अपनाना चाहिए जो अभियुक्त का समर्थनकारी हो । साक्ष्य और निचले न्यायालयों के निर्णयों पर विचार करने के पश्चात्, इस न्यायालय की यह राय है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और मृत्युकालिक कथनों की तुलना में मृतका के पिता के एकमात्र साक्ष्य से इस न्यायालय के मस्तिष्क में इसे प्रत्यर्थी-अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बनाने के लिए विश्वास प्रेरित नहीं होता है । इसलिए यह अपील असफल होती है और तद्नुसार खारिज की जाती है । (पैरा 11, 12, 13 और 14)

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 1236.

2003 की दांडिक अपील सं. 976 में गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद के तारीख 16 जुलाई, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से	सुश्री जेसल और सुश्री हिमांतिका वाही
प्रत्यर्थी की ओर से	श्री एस. शंकर रामकृष्णन् (न्याय-मित्र)

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति आर. के. अग्रवाल ने दिया ।

न्या. अग्रवाल – यह अपील 2003 की दांडिक अपील सं. 976 में गुजरात उच्च न्यायालय, अहमदाबाद द्वारा तारीख 16 जुलाई, 2009 को पारित उस निर्णय और आदेश के विरुद्ध फाइल की गई है, जिसके द्वारा उच्च न्यायालय ने 2003 के सेशन मामला सं. 20 में सेशन न्यायाधीश, अमरेली के न्यायालय द्वारा तारीख 30 जून, 2003 को पारित निर्णय और आदेश के विरुद्ध इस अपील में प्रत्यर्थी द्वारा फाइल की गई अपील मंजूर की है ।

2. **संक्षिप्त तथ्य :**

(क) रेखाबेन (जिसकी मृत्यु हो चुकी है) का विवाह इस अपील में प्रत्यर्थी जयराजभाई पुंजाभाई वारु के साथ हुआ था और गोपालग्राम, तालुका चलाला, गुजरात में अपने ससुराल वालों अर्थात् पुंजाभाई लखाभाई वारु-ससुर, मनुबेन पुंजाभाई-सास और रामजुबेन पुंजाभाई-ननद के साथ रह रही थी ।

(ख) रेखाबेन को तारीख 10 मार्च, 2003 को 90 प्रतिशत दाह क्षतियों के साथ राजकीय अस्पताल, अमरेली में भर्ती कराया गया । भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 307 के अधीन एक प्रथम इत्तिला रिपोर्ट सं. 7/03 रजिस्ट्रीकृत की गई, जिसमें उसने यह कथन किया कि तारीख 10 मार्च, 2003 को सुबह लगभग 5.00 बजे, जब परिवार के अन्य सभी सदस्य घर में सो रहे थे, तब एक अनजान व्यक्ति उसके निकट आया और उसे कहा कि वह उसे लेने आया है । यह कहकर वह उसे रसोई में ले गया, उस पर मिट्टी का तेल छिड़का और माचिस की तिल्ली जलाकर उसे आग लगा दी तथा वहां से चला गया और परिणामस्वरूप वह आग में जलने लगी । उसने यह भी कथन किया कि अनजान व्यक्ति बाहरी व्यक्ति था जो सफेद कपड़े पहने हुआ था । चिल्लाने की आवाज सुनकर परिवार के अन्य सदस्य भी जाग गए और उसे अमरेली स्थित अस्पताल में भर्ती कराया । यहां यह उल्लेखनीय है कि उपर्युक्त प्रथम इत्तिला रिपोर्ट स्वयं मृतका द्वारा तारीख 10 मार्च, 2003 को पूर्वाह्न में लगभग 7.30 बजे

अस्पताल में श्री भिखू करसनभाई, पुलिस थाना अधिकारी, अमरेली शहर को किए गए कथन, जिसे शिकायत के रूप में माना गया था, के आधार पर रजिस्ट्रीकृत की गई थी । उक्त कथन पर रेखाबेन के अंगूठे की छाप की शनाख्त मृतका के पिता-वला जसकुभाई सुरागभाई द्वारा की गई थी ।

(ग) उसी दिन पूर्वाह्न में 8.25 बजे उसने कार्यपालक मजिस्ट्रेट, अमरेली के समक्ष एक कथन किया और संपूर्ण घटना का वर्णन किया । दोपहर बाद रेखाबेन की क्षतियों के कारण मृत्यु हो गई । मृतका द्वारा किए गए कथन के आधार पर जयराजभाई पुंजाभाई वारु-प्रत्यर्थी, पुंजाभाई लखाभाई वारु-ससुर, मनुबेन पुंजाभाई-सास और रामजुबेन पुंजाभाई-ननद को अभियुक्तों के रूप में नामित किया गया और भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 201 और 34 के अधीन आरोप पत्र फाइल किया गया तथा मामला सेशन न्यायालय के सुपुर्द किया गया, जिसे 2003 के सेशन मामला सं. 20 के रूप में संख्यांकित किया गया ।

(घ) सेशन न्यायाधीश, अमरेली ने तारीख 30 जून, 2003 के आदेश द्वारा मृतका के पति को भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दोषसिद्ध किया और उसे आजीवन कठोर कारावास भोगने का दंडादेश दिया, जबकि अन्य अभियुक्त व्यक्तियों को दोषमुक्त कर दिया ।

(ङ) इस अपील में प्रत्यर्थी ने व्यथित होकर गुजरात उच्च न्यायालय के समक्ष 2003 की दांडिक अपील सं. 976 फाइल की । उच्च न्यायालय की खंड न्यायपीठ ने तारीख 16 जुलाई, 2009 के आदेश द्वारा अपील मंजूर की ।

(च) राज्य ने मृतका के पति को सभी आरोपों से दोषमुक्त करने वाले तारीख 16 जुलाई, 2009 के आदेश से व्यथित होकर विशेष इजाजत याचिका के माध्यम से इस न्यायालय के समक्ष यह अपील फाइल की ।

3. पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को सुना और अभिलेख का परिशीलन किया ।

4. प्रत्यर्थी-राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि मृतका और प्रत्यर्थी के बीच संबंध तनावपूर्ण थे और मृतका को अनेक बार मजबूर होकर ससुराल से जाना पड़ा था । मृतका के पिता जसकुभाई सुरागभाई (अभि. सा. 1) के अभिसाक्ष्य से यह दर्शित होता है कि मृतका की क्षतियों के कारण मृत्यु होने से पूर्व उसे मानसिक और शारीरिक दोनों प्रकार की यातना दी गई थी । यह दलील दी गई कि अभियुक्त द्वारा

मृतका को पुलिस तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष गलत बयान/कथन करने के लिए मजबूर किया गया था । यह भी दलील दी गई कि अभियुक्त व्यक्तियों ने घटना की मध्यवर्ती रात्रि के दौरान मृतका के साथ शारीरिक क्रूरता की और उस पर मिट्टी का तेल छिड़ककर उसे आग लगा दी । अभि. सा. 1 द्वारा किया गया कथन संगत है और उसके साक्ष्य की पूरी तरह से संपुष्टि पारिस्थितिक साक्ष्य से होती है जो कि अभिलेख पर है । उसका साक्ष्य विचारण के दौरान अनधिक्षेपणीय रहा है और ऐसा कोई कारण नहीं है जिस वजह से उसके साक्ष्य की अनदेखी की जा सके । राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने जोरदार रूप से यह दलील दी कि मृतका रेखाबेन की मृत्यु रहस्यमय परिस्थितियों में उस मकान में हुई थी जो अभियुक्त व्यक्तियों के अधिभोग और कब्जे में था, जिसके लिए अभियुक्तों ने युक्तियुक्त स्पष्टीकरण नहीं दिया, इसलिए भारतीय साक्ष्य अधिनियम की धारा 114 के अधीन यथा उपबंधित उपधारणा की जानी चाहिए और इस उपधारणा का युक्तियुक्त स्पष्टीकरण देकर खंडन नहीं किया गया है ।

5. प्रत्यर्थी की ओर से विद्वान् काउंसेल ने यह दलील दी कि अभियोजन पक्ष ने अभि. सा. 1-मृतका के पिता के परिसाक्ष्य का अवलंब लिया है, जिसने यह दावा किया था कि मृतका ने उससे संपूर्ण घटना का वर्णन किया था, किंतु उसने पुलिस को यह सूचना दाह-संस्कार करने के पश्चात् दी थी और संभव मिथ्या बयान गढ़ने का पूरा अवसर था । विद्वान् काउंसेल ने यह भी दलील दी कि मृतका ने अपने मृत्युकालिक कथन में, जो दो भिन्न अवसरों पर दो स्वतंत्र साक्षियों द्वारा अभिलिखित किया गया था, अभियुक्तों में से किसी को भी नामित नहीं किया था और दोनों मृत्युकालिक कथनों में उसने यह कथन किया कि वह व्यक्ति जिसने उस पर मिट्टी का तेल छिड़का था और उसे आग लगाई थी, वह अनजान व्यक्ति था और वह उसे नहीं जानती थी । विद्वान् काउंसेल ने आगे यह दलील दी कि अभि. सा. 1 का घनिष्ठ नातेदार-दिलुभाई वलेराभाई, जो उसके साथ मृतका का हाल-चाल जानने के लिए अस्पताल गया था, उसने इस बात से इनकार किया कि उसकी मृतका से कोई बातचीत हुई थी । यह भी दलील दी गई कि अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किए गए साक्ष्य स्वीकार करने योग्य और अभियुक्त के दोषी होने का निष्कर्ष निकालने के लिए पर्याप्त नहीं हैं, इसलिए प्रत्यर्थी को उसके विरुद्ध लगाए गए आरोपों से बरी कर दिया जाना चाहिए ।

6. अभिलेख पर की सामग्री से यह स्पष्ट है कि रेखाबेन को दाह क्षतियों के साथ अस्पताल ले जाया गया था और उसका कथन भिखू करसनभाई परमार (अभि. सा. 6) द्वारा अभिलिखित किया गया था, जो अस्पताल में पुलिस के साथ अपने कर्तव्य का निर्वहन कर रहा था । मृतका का मृत्युकालिक कथन विधि की सम्यक् प्रक्रिया का अनुसरण करने के पश्चात् कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित किया गया था । उपरोक्त को देखते हुए, मृतका द्वारा पुलिस प्राधिकारियों तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष किए गए कथनों के सुसंगत भाग को उद्धृत करना सुसंगत है, जो निम्नलिखित हैं :–

"तारीख 10.3.2003

मेरा नाम रेखाबेन पत्नी जयराजभाई पुंजाभाई वारु, जाति काठी दरबार, आयु 25 वर्ष, व्यवसाय-गृहिणी, निवास गोपालग्राम, तालुका चलाला है ।

अमरेली (अस्पष्टाक्षर) में व्यक्तिगत तौर पर पूछने पर यह कहा कि मैं ऊपर उल्लिखित पते पर अपनी सास, ससुर और पति के साथ रह रही हूं और मेरा पति (अस्पष्टाक्षर) में हीरे तरासने का काम करता है । मेरे माता-पिता वांडिया गांव में रहते हैं और मेरे पिता का नाम जासुभाई वला है और मेरा विवाह आज से लगभग दो वर्ष पूर्व हुआ था । मेरी कोई संतान नहीं है ।

आज सुबह लगभग 5.00 बजे, मेरे परिवार के सदस्य बाहर सो रहे थे, उस दौरान एक अनजान व्यक्ति मेरे निकट आया और उसने मुझे जगाया तथा मुझे कहा कि उठो मैं तुम्हें लेने आया हूं, यह कहकर वह मुझे रसोई में ले गया और मुझ पर मिट्टी का तेल छिड़का और माचिस से आग लगा दी और यह अनजान बाहरी व्यक्ति वहां से चला गया । यह अनजान व्यक्ति बाहरी व्यक्ति था और उसने सफेद कपड़े पहने हुए थे और मेरा संपूर्ण शरीर जलने लगा, इसलिए मैं चिल्लाई और चिल्लाने पर मेरे घर के व्यक्ति जाग गए और उन्होंने मुझे यहां अमरेली राजकीय अस्पताल में भर्ती कराया । यहां मेरा उपचार चल रहा है । मैं होश में हूं । मुझे मेरी सास, ससुर या पति ने किसी प्रकार से तंग नहीं किया है ।

उक्त घटना आज सुबह लगभग 5.00 बजे घटी, किसी बाहरी अनजान व्यक्ति ने मुझे जगाया और रसोई में ले गया जहां उसने वहां रखा मिट्टी का तेल छिड़का और माचिस जलाई और मुझ पर फेंक

दी और यह अनजान व्यक्ति वहां से चला गया और यह व्यक्ति बाहरी व्यक्ति था ।

मेरे द्वारा कही गई यह बात सत्य और सही है ।

समक्ष
हस्ता/- भिखू करसनभाई
पुलिस थाना अधिकारी, अमरेली शहर"

"कार्यपालक मजिस्ट्रेट, अमरेली के समक्ष
अस्पताल का नाम- सिविल अमरेली वार्ड बर्न्स बैड सं. 33

1. आपका नाम क्या है	: रेखाबेन जयराजभाई
2. पिता/पति का नाम	: जयराजभाई पुंजाभाई
3. आपकी आयु	: 25
4. निवास/पता	: गोपालग्राम तालुका धारी
5. फिलहाल आप कहा हैं ?	: सिविल अस्पताल अमरेली
6. आपके साथ क्या हुआ है ?	
7. यह कैसे हुआ ?	: घर में सभी सो रहे थे । एक अनजान व्यक्ति आया और उसने मुझे वहां से जगाया जहां मैं सो रही थी और वह मुझे रसोई में ले आया और रसोई में डिब्बे में रखा तरल पदार्थ मुझ पर उड़ेला और उस अनजान व्यक्ति ने माचिस की तिल्ली जलाई और मुझ पर फेंक दी और भाग गया । वह पुरुष था और बाहरी व्यक्ति था ।
8. घटना कितने बजे घटी ?	: घटना आज सुबह घटी । मुझे समय याद नहीं ।
9. किस स्थान पर यह घटना घटी ?	: गोपालग्राम में मेरे घर पर ।
10. घटनास्थल पर कौन-कौन थे ?	: मेरे घर के सभी सदस्य सो रहे थे ।
11. आपको क्लीनिक/अस्पताल में कौन लेकर आया है ?	: मेरी सास और मेरे पति के ज्येष्ठ भाई आदि मुझे लाए हैं ।

12. क्या आपको कोई शारीरिक कष्ट है ? : नहीं ।

13. क्या आपको कुछ और कहना है, कहो । : मुझे और कुछ नहीं कहना है ।

14. मृत्युकालिक कथन करने की तारीख और आरंभ का समय और इसे पूर्ण करने का समय : 10.3.2003 : 8.25 बजे पूर्वाह्न : 8.35 बजे पूर्वाह्न

जब उपरोक्त अभिसाक्ष्य अभिलिखित किया गया, उस समय पुलिस मौजूद नहीं थी ।

हस्ता/- पढ़ने योग्य नहीं

रोगी होश में है और मृत्युकालिक कथन मेरे समक्ष अभिलिखित किया गया ।

हस्ता/- चिकित्सा अधिकारी, अमरेली, 8.25 पूर्वाह्न से 8.35 बजे पूर्वाह्न तक मृत्युकालिक कथन मेरी मौजूदगी में अभिलिखित किया गया ।

हस्ता/- रेखाबेन जयराज के दाएं पैर के अंगूठे की छाप, क्योंकि दोनों हाथ जले हुए हैं, रेखाबेन के दाएं पैर के अंगूठे की छाप ली गई ।

हस्ता/- कार्यपालक मजिस्ट्रेट

7. यहां यह उल्लेख करना सुसंगत है कि मृतका ने ऊपर उल्लिखित दोनों कथनों में अपने पति या उसके परिवार के सदस्यों को नामित नहीं किया है । यद्यपि जब उससे यह विनिर्दिष्ट प्रश्न पूछा गया कि उस रात सही-सही क्या घटित हुआ था, तो उसने यह बताया कि तारीख 10 मार्च, 2003 को सुबह लगभग 5.00 बजे जब परिवार के अन्य सभी सदस्य घर में सो रहे थे, तब एक अनजान व्यक्ति उसके निकट आया और उसे रसोई में ले गया । उसने आगे यह बताया कि उस व्यक्ति ने उस पर मिट्टी का तेल छिड़का और उसे आग लगा दी और वहां से चला गया । मृतका ने यह भी कथन किया कि वह अनजान व्यक्ति एक बाहरी व्यक्ति था और उसने सफेद कपड़े पहने हुए थे । उसकी चिल्लाने की आवाज सुनकर परिवार के अन्य सदस्य भी जाग गए और उसे अमरेली स्थित अस्पताल में

भर्ती कराया । इस तथ्य से इनकार नहीं किया गया है कि मृतका घटना के समय अपनी ससुराल में थी और सुसंगत समय पर परिवार के अन्य सभी सदस्य भी मकान में मौजूद थे । दो स्वतंत्र साक्षियों द्वारा विधि की सम्यक् प्रक्रिया का पालन करने के पश्चात् अभिलिखित किए गए दोनों मृत्युकालिक कथनों में मृतका ने यह कथन किया कि वह व्यक्ति अनजान था और उसके सास-ससुर या पति की कोई अंतर्ग्रस्तता नहीं है । दोनों कथन संगत हैं और प्रत्यर्थी की भूमिका के बारे में कोई विरोधाभास नहीं है । कार्यपालक मजिस्ट्रेट तथा पुलिस अधिकारी के समक्ष किए गए कथनों के परिशीलन से यह पूरी तरह से स्पष्ट हो जाता है कि अपराध के कारित करने में प्रत्यर्थी की कोई अंतर्ग्रस्तता नहीं थी ।

8. दूसरी ओर, राज्य की ओर से विद्वान् काउंसेल ने मृतका के पिता के अभिसाक्ष्य का अवलंब लिया, जिसने अपराध को कारित करने में प्रत्यर्थी और मृतका के ससुराल वालों की अंतर्ग्रस्तता के बारे मे अभिसाक्ष्य दिया था । उसके अभिसाक्ष्य के उस सुसंगत भाग को उद्धृत करना सुसंगत है जिसके आधार पर सेशन न्यायालय ने प्रत्यर्थी को दोषसिद्ध किया । यह निम्नलिखित है :–

> "4. फागन माह की 10 तारीख को सुबह-सुबह मेरे चाचा के लड़के दिलुभाई के मकान पर एक फोन आया कि रेखाबेन जल गई है, इसलिए मैं और मेरे चाचा के पुत्र दिलुभाई और मंगलुभाई अमरेली सिविल अस्पताल गए । रेखाबेन अस्पताल में भर्ती थी और उपचार चल रहा था । रेखाबेन का पूरा शरीर जला हुआ था । मैं देख नहीं सका इसलिए बाहर आ गया । थोड़ा ठीक महसूस करने के पश्चात् मैं और दिलुभाई पुनः मेरी पुत्री रेखाबेन के पास गए और उससे पूछा कि यह क्या हुआ है, इस पर रेखाबेन ने मुझे बताया कि यह मैंने नहीं किया है । रेखाबेन ने मुझे बताया कि सारी रात यातना देने के पश्चात् उसे इसके बाद रसोई में ले जाया गया और मिट्टी का तेल छिड़कने के पश्चात् उसे माचिस की तिल्ली से आग लगा दी गई । जयराजभाई ने उसे जगाया और उसे रसोई में ले गया । रेखाबेन ने यह नहीं कहा कि किसने मिट्टी का तेल छिड़का था । इसके सिवाय वहां कोई अन्य व्यक्ति मौजूद नहीं था । रेखाबेन ने मुझे इस बारे में कुछ नहीं बताया कि माचिस की तिल्ली किसने जलाई थी । जब मैंने रेखाबेन से पूछा तो उसने यह कहा कि उन लोगों के सिवाय वहां कोई अन्य व्यक्ति मौजूद नहीं था । रेखाबेन ने मुझे बताया कि उस

समय जो विभाग के व्यक्ति आए थे, मैंने उनसे जो यह कहा था कि जिस व्यक्ति ने माचिस की तिल्ली जलाई थी उसने सफेद कपड़े पहने हुए थे और वह अनजान व्यक्ति था, ऐसा इसलिए कहा था क्योंकि अभियुक्त पुंजाभाई, जयराजभाई, मनुबेन और रामजुबेन ने यह धमकी दी थी कि उसका एकमात्र भाई जीवित नहीं बच पाएगा, इसलिए उसने विभाग के व्यक्तियों के सामने सच्चाई नहीं बताई थी । जब रेखाबेन की मुझसे यह बात हुई थी, उस समय मेरे चाचा का पुत्र दिलुभाई वहां मौजूद था । उपचार के दौरान दोपहर बाद 2.15 बजे रेखाबेन की मृत्यु हो गई । क्योंकि रेखाबेन जल गई थी इसलिए उसकी मृत्यु हुई ।"

अभियुक्त की ओर से अधिवक्ता श्री जी. ए. पारिख द्वारा प्रतिपरीक्षा

"6. मैं और दिलुभाई सुबह के आठ से साढ़े आठ बजे के बीच अस्पताल पहुंचे । यह सत्य नहीं है कि मैं और दिलुभाई सुबह के सात बजे सिविल अस्पताल पहुंचे थे । यह सत्य है कि मेरे कथन में मंगलुभाई का नाम नहीं लिखा है ।

7. जब मैं अस्पताल पहुंचा उस समय पुलिस पहले ही वहां आई हुई थी । मैं नहीं जानता कि पुलिस ने मेरी मौजूदगी में रेखाबेन की शिकायत अभिलिखित की थी या नहीं । यह सत्य है कि मैंने पुलिस के कहने पर रेखाबेन के अंगूठे की छाप की शनाख्त की थी । अंगूठे की छाप रेखाबेन की थी । मामलतदार कथन अभिलिखित करने के लिए अंदर गया था । यह सत्य है कि मैंने उस कथन पर रेखाबेन के अंगूठे की छाप की शनाख्त की थी । जब मैं अस्पताल में रेखाबेन के निकट गया, उस समय .....जली हुई थी । उसे ग्लूकोज की बोतल नहीं लगाई गई थी । उसे प्यास लगी थी । वह होंठों को नहीं हिला सकी । मैंने उसको पानी पिलाया और उसे आइसक्रीम खिलाई । यह सत्य नहीं है कि रेखाबेन ने मुझसे कतई कोई बात नहीं की थी ।"

9. विद्वान् सेशन न्यायाधीश ने अभि. सा. 1 के अभिसाक्ष्य के आधार पर भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन अपराध के लिए दोषसिद्ध किया । अभि. सा. 1 ने न्यायालय के समक्ष यह अभिसाक्ष्य दिया कि मृतका ने उसे यह बताया था कि उसे सारी रात यातना देने के पश्चात् प्रत्यर्थी द्वारा उसे रसोई में ले जाया गया और उस पर मिट्टी का तेल

छिड़ककर माचिस जलाकर आग लगा दी । इस साक्षी ने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि प्रत्यर्थी के सिवाय घटना के समय कोई अन्य व्यक्ति मौजूद नहीं था । उसने यह भी अभिसाक्ष्य दिया कि घटना का प्रकटीकरण करने की दशा में प्रत्यर्थी ने मृतका को गंभीर परिणाम भुगतने की धमकी दी थी । संक्षेप में, अभि. सा. 1 ने मृतका के साथ उसकी ससुराल में की गई क्रूरता और दुर्व्यवहार के बारे में अभिसाक्ष्य दिया ।

10. निचले न्यायालयों को तब अत्यंत सावधान रहना चाहिए जब वे किसी मृत्युकालिक कथन पर विचार करते हैं, क्योंकि कथन करने वाला व्यक्ति प्रतिपरीक्षा के लिए उपलब्ध नहीं होता है, जिससे अभियुक्त व्यक्ति को अत्यधिक कठिनाई होती है । किसी मृत्युकालिक कथन का अवलंब, केवल इस कारण कि मृत्युकालिक कथन अभिलेख पर है, लेने में यंत्रवत दृष्टिकोण अपनाना अत्यंत खतरनाक है । न्यायालय को किसी मृत्युकालिक कथन की परीक्षा सूक्ष्म दृष्टि से सावधानीपूर्वक यह पता लगाने के लिए की जानी चाहिए कि क्या मृत्युकालिक कथन स्वैच्छिक, सच्चा, होशोहवाश में किया गया और मौजूद नातेदारों या अन्वेषक अभिकरण के असर के बिना किया गया है, जो अन्वेषण की सफलता में हितबद्ध हो सकते हैं या जो मृत्युकालिक कथन अभिलिखित करते समय उपेक्षावान हो सकते हैं । प्रस्तुत मामले में, साक्ष्य के दो सेट हैं, एक पुलिस अधिकारी तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष किया गया कथन/घोषणा और दूसरा, मृतका द्वारा अपने पिता, जिसकी अभि. सा. 1 के रूप में परीक्षा कराई गई, के समक्ष किया गया कथन । अभिलेख पर की सामग्री की सावधानीपूर्वक संवीक्षा करने के पश्चात् यह नहीं कहा जा सकता है कि पुलिस अधिकारी तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेट के समक्ष किए गए कथनों में अपराध के कारित करने में प्रत्यर्थी की भूमिका के बारे में विरोधाभास हैं और ऐसी परिस्थितियों में साक्ष्य का वह एक सेट जो अधिक संगत और विश्वसनीय है और जो प्रस्तुत मामले में प्रत्यर्थी के पक्ष में है, स्वीकार किया जाना चाहिए और अभि. सा. 1 के एकमात्र परिसाक्ष्य के आधार पर दोषसिद्धि नहीं की जा सकती है । बहुत बार नातेदार अन्वेषण अभिकरण पर असर डालते हैं और मृत्युकालिक कथन प्रस्तुत करते हैं । अन्वेषण अभिकरणों द्वारा अभिलिखित मृत्युकालिक कथनों की अत्यंत सावधानीपूर्वक परीक्षा की जानी चाहिए और न्यायालय को उस समय सभी विद्यमान परिस्थितियों के प्रति सचेत रहना चाहिए जब मृत्युकालिक कथन अस्तित्व में आता है । एक से अधिक मृत्युकालिक कथनों की दशा में, उन मृत्युकालिक कथनों में के

अंतर्निहित विरोधाभास अत्यंत महत्वपूर्ण होते हैं । यह नहीं हो सकता कि एक मृत्युकालिक कथन जो अभियोजन पक्ष का समर्थन करता है केवल उसे स्वीकार किया जा सकता हो जबकि निर्दोष होने के अन्य मृत्युकालिक कथनों को नामंजूर किया जाए । ऐसी प्रवृत्ति अत्यधिक खतरनाक होगी । तथापि, निचले न्यायालय मृत्युकालिक कथनों के आधार पर कार्यवाही करने के लिए पूरी तरह हकदार हैं और जहां मृत्युकालिक कथन उपरोक्त सभी परीक्षणों को पूरा करते हैं वहां उनके आधार पर दोषसिद्धि कर सकता है ।

11. न्यायालय को सभी विद्यमान परिस्थितियों का मूल्यांकन करना चाहिए और इस स्वतंत्र निष्कर्ष पर पहुंचना चाहिए कि क्या मृत्युकालिक कथन उचित रूप से अभिलिखित किया गया था या नहीं और क्या वह स्वैच्छिक और सच्चा है । जब एक बार न्यायालय को यह विश्वास हो जाता है कि मृत्युकालिक कथन उचित रूप से अभिलिखित किया गया है, तो उस पर कार्यवाही की जा सकेगी और दोषसिद्धि का आधार बनाया जा सकता है । न्यायालयों को यह बात अवश्य ध्यान में रखनी चाहिए कि प्रत्येक दांडिक विचारण का पृथक्-पृथक् पहलू होता है । यह दूसरे विचारणों से किसी-न-किसी प्रकार से भिन्न हो सकता है और इसलिए मृत्युकालिक कथन की विधि के प्रति एक यंत्रवत दृष्टिकोण अपनाने से बचा जाना चाहिए ।

12. अभिलेख पर के साक्ष्य का मूल्यांकन करने के पश्चात् हमारा यह सुविचारित मत है कि पुलिस अधिकारी तथा कार्यपालक मजिस्ट्रेट द्वारा अभिलिखित मृतका के मृत्युकालिक कथनों की पूर्णतः संपुष्टि होती है और अपराध के कारित करने में प्रत्यर्थी की भूमिका के संबंध में कोई असंगति नहीं है । भिखू करसनभाई, थाना अधिकारी द्वारा अभिलिखित कथन, रेखाबेन (जिसकी मृत्यु हो चुकी है) के अंगूठे की छाप, जिसकी शनाख्त उसके पिता-श्री वला जसकुभाई सुरागभाई द्वारा की गई थी तथा उसकी प्रतिपरीक्षा जिसमें उसने यह स्वीकार किया कि पुलिस पहले ही आई हुई थी और उसने रेखाबेन के अंगूठे की छाप की शनाख्त की थी और मामलतदार कथन अभिलिखित करने के लिए अंदर गया था, का परिशीलन करने पर ऐसा कोई कारण नहीं है कि रेखाबेन अपने पिता को किए गए अभिकथित कथन में अपने पति और ससुराल वालों के नाम क्यों लेती । किसी मृत्युकालिक कथन को अत्यधिक महत्व दिया जाना चाहिए । मृतका के पिता को किया गया मौखिक मृत्युकालिक कथन, जिसका अवलंब

लेकर दोषसिद्धि की गई है, विश्वसनीय नहीं है और ऐसा कथन सोच-समझकर किया गया हो सकता है । यही कारण है कि न्यायालय भी इस बात पर जोर देता है कि मृत्युकालिक कथन ऐसी प्रकृति का होना चाहिए जिससे कि इसकी सत्यता पर न्यायालय का पूर्ण विश्वास प्रेरित हो सके । न्यायालय को इस बात के प्रति सचेत रहना चाहिए कि मृतक व्यक्ति का कथन सिखाने-पढ़ाने, भड़काने या कल्पनाशीलता का परिणाम न हो । न्यायालय का यह भी समाधान होना आवश्यक है कि हमलावरों को देखने और शनाख्त करने का स्पष्ट अवसर मिला था और उसके पश्चात् मृतक व्यक्ति की मानसिक हालत सही थी । जब एक बार न्यायालय का यह समाधान हो जाता है कि कथन सत्य और स्वैच्छिक है तो वह, निस्संदेह, किसी और संपुष्टि के बिना इसके आधार पर दोषसिद्धि कर सकता है । यह विधि के आत्यंतिक नियम के रूप में अधिकथित नहीं किया जा सकता है कि मृत्यकालिक कथन, जब तक इसकी संपुष्टि नहीं हो जाती, दोषसिद्धि के लिए एकमात्र आधार नहीं हो सकता है । संपुष्टि की अपेक्षा करने वाला नियम मात्र एक प्रज्ञा का नियम है ।

13. दांडिक विधि में सबूत का भार सभी युक्तियुक्त संदेह के परे हैं । अभियोजन पक्ष को अभियुक्त की दोषिता सभी युक्तियुक्त संदेह के परे साबित करनी होती है और दांडिक विधि में यह भी न्याय का नियम है कि यदि मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य के आधार पर दो मत संभव हों, एक अभियुक्त की दोषिता को और दूसरा उसकी निर्दोषिता को इंगित कर रहा हो, तो वह मत अपनाना चाहिए जो अभियुक्त का समर्थनकारी हो ।

14. साक्ष्य और निचले न्यायालयों के निर्णयों पर विचार करने के पश्चात्, हमारी यह राय है कि अभिलेख पर उपलब्ध साक्ष्य और मृत्युकालिक कथनों की तुलना में मृतका के पिता के एकमात्र साक्ष्य से इस न्यायालय के मस्तिष्क में इसे प्रत्यर्थी-अभियुक्त की दोषसिद्धि का आधार बनाने के लिए विश्वास प्रेरित नहीं होता है । इसलिए यह अपील असफल होती है और तद्नुसार खारिज की जाती है ।

अपील खारिज की गई ।

जस.

मुथुरामलिंगम और अन्य

बनाम

राज्य मार्फत पुलिस निरीक्षक

19 जुलाई, 2016

मुख्य न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर, न्यायमूर्ति फकीर मोहमद इब्राहिम कलीफुल्ला, न्यायमूर्ति ए. के. सीकरी, न्यायमूर्ति एस. ए. बोबडे और न्यायमूर्ति आर. बानुमती

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) – धारा 31 और 427 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 300] – कई हत्याएं कारित करने के लिए आजीवन कारावास के विभिन्न दंडादेश – दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश दिया जाना – यह विधिक स्थिति भली-भांति सुस्थिर होते हुए कि आजीवन कारावास से विवक्षित अपराधी के शेष बचे जीवन के लिए कारावास होता है, जब तक कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा शेष कारावास का लघुकरण या परिहार नहीं किया जाता, इसलिए आजीवन कारावास के दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश नहीं दिया जा सकता है क्योंकि इससे उस वास्तविकता की अनदेखी होगी कि मानव के पास अन्य सभी जीवित प्राणियों की तरह ही जीने के लिए केवल एक जीवन होता है ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 31 और 427 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 300] – कई हत्याएं कारित करने के लिए आजीवन कारावास के विभिन्न दंडादेश – दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश दिया जाना – अनेक हत्याओं या आजीवन कारावास से दंडनीय अन्य अपराधों के लिए आजीवन कारावास के अनेक दंडादेश अधिनिर्णीत किए जा सकते हैं, किंतु इस प्रकार अधिनिर्णीत आजीवन कारावास के दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश नहीं दिया जा सकता है, तथापि, ऐसे दंडादेश एक-दूसरे के ऊपर अधिरोपित होंगे ताकि एक मामले में सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुदत्त किसी परिहार या लघुकरण का फायदा कैदी को अन्य मामले में दिए गए दंडादेश के लिए स्वतः प्राप्त न हो सके ।

दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 – धारा 31 और 427 [सपठित भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 300] – कई हत्याएं कारित करने के लिए

आजीवन कारावास के साथ-साथ अन्य अवधि के दंडादेश अधिनिर्णीत किया जाना – दंडादेशों के चलने के क्रम का निदेश देने की न्यायालय की शक्ति – न्यायालय विधिसम्मत रूप से यह निदेश दे सकता है कि कैदी अपना आजीवन कारावास प्रारंभ होने से पूर्व पहले आवधिक दंडादेश भुगतेगा, तथापि, इसके प्रतिकूल स्थिति सही नहीं हो सकेगी क्योंकि यदि न्यायालय आजीवन कारावास को पहले आरंभ होने का निदेश देता है तो इससे आवश्यक रूप से यह विवक्षित होगा कि आवधिक दंडादेश साथ-साथ चलेगा, क्योंकि एक बार जब कैदी अपना जीवन कारागार में बिता देता है तो उसके द्वारा कोई और दंडादेश भुगतने का प्रश्न ही नहीं है ।

अपीलार्थियों का विचारण एक ही घटना में उनके द्वारा अभिकथित रूप से की गई कई हत्याओं के लिए भारतीय दंड संहिता की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध सहित विभिन्न अपराधों के लिए किया गया था । वे दोषी पाए गए और वे उनके द्वारा कारित की गई प्रत्येक हत्या के लिए आजीवन कारावास के दंडादेश सहित विभिन्न दंडादेशों से दंडादिष्ट किए गए और प्रत्येक हत्या के लिए आजीवन कारावास का दंडादेश क्रमवर्ती रूप से चलने का निदेश दिया गया । परिणामतः, अपीलार्थियों को ऐसे दो से आठ क्रमवर्ती आजीवन कारावास के दंडादेश भुगतने थे । विचारण न्यायालय द्वारा की गई दोषसिद्धि और क्रमवर्ती आजीवन कारावास अधिनिर्णीत करने के विरुद्ध उच्च न्यायालय में फाइल की गई दांडिक अपीलें असफल रहने पर अपीलार्थियों ने निचले न्यायालयों द्वारा पारित किए गए निर्णयों और आदेशों को चुनौती देते हुए उच्चतम न्यायालय में अपीलें फाइल कीं । जब अपीलें सुनवाई के लिए उच्चतम न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष आईं, तो अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अपनी चुनौती विचारण न्यायालय द्वारा जारी किए गए इस निदेश और उच्च न्यायालय द्वारा की गई इस अभिपुष्टि तक सीमित रखी कि प्रत्येक अपीलार्थी को उनके द्वारा अभिकथित रूप से कारित की गई कई हत्याओं के लिए अधिनिर्णीत आजीवन कारावास के दंडादेश क्रमवर्ती चलेंगे न कि साथ-साथ । यह दलील दी गई कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 31 के निबंधनों के अनुसार अपीलार्थियों को उनके द्वारा अभिकथित रूप से कारित की गई विभिन्न हत्याओं के लिए अधिनिर्णीत आजीवन कारावास के दंडादेश साथ-साथ चल सकते हैं न कि क्रमवर्ती । अपील की सुनवाई कर रही न्यायपीठ ने इस न्यायालय द्वारा इस प्रश्न पर अपनाए गए दृष्टिकोणों में विरोध देखते हुए कि क्या आजीवन कारावास के क्रमवर्ती दंडादेश वैध रूप से अनुज्ञेय हैं, एक प्रामाणिक निर्णय

द्वारा विरोध को सुलझाने के लिए इस मामले को पांच न्यायाधीशों से बनी बृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष रखे जाने का निर्देश किया । उच्चतम न्यायालय की पांच न्यायाधीशों से बनी न्यायपीठ द्वारा निर्देश का उत्तर देते हुए,

अभिनिर्धारित – यह विधिक स्थिति भली-भांति सुस्थिर है कि आजीवन कारावास अपराधी के शेष जीवन के लिए कारावास होता है, जब तक कि वास्तव में सक्षम प्राधिकारी द्वारा शेष कारावास का लघुकरण या परिहार नहीं किया जाता है । ऐसी स्थिति में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 के उपबंधों का ऐसा निर्वचन किया जाना चाहिए जिससे कि यह इस मूलभूत सिद्धांत के संगत हो कि आजीवन कारावास में अपराधी से यह अपेक्षित होता है कि वह अपना शेष जीवन कारागार में बिताए । ऐसा कोई निदेश जिसमें अपराधी से एक के बाद दूसरा आजीवन कारावास भुगतने की अपेक्षा की जाती है, वह असंगत और अविवेकी होगा, क्योंकि इससे उस वास्तविकता की अनदेखी होगी कि मानव के पास अन्य सभी जीवित प्राणियों की तरह ही जीने के लिए केवल एक जीवन होता है । धारा 31(1) को इस प्रकार समझने पर दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने की अनुज्ञा केवल तभी होगी यदि ऐसे दंडादेश आजीवन कारावास नहीं हैं । इस न्यायपीठ की राय में, केवल यही एक तरीका है जो किसी कैदी को दो क्रमवर्ती आजीवन कारावास के दंडादेश भोगने की स्पष्ट संभाव्यता से बचा सकता है । (पैरा 17)

प्रस्तुत मामलों में अपीलार्थी उनके द्वारा अनेक हत्याएं कारित करने के समय आजीवन कारावास भुगत रहे सिद्धदोष व्यक्ति नहीं थे । इसलिए उनके मामले अधिक समुचित रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 के अंतर्गत आते हैं जो एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में है । धारा 31(1) में, भारतीय दंड संहिता की धारा 71 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, न्यायालय को ऐसे अपराधों के लिए विहित दंड अधिनिर्णीत करने के लिए सशक्त किया गया है और यह आज्ञापक किया गया है कि जब ऐसे दंड कारावास के रूप में हों तब, यदि न्यायालय ने यह निदेश न दिया हो कि ऐसे दंड साथ-साथ भोगे जाएंगे, तो वे ऐसे क्रम से एक के बाद एक प्रारंभ होंगे जिसका न्यायालय निदेश दे । अपराधियों द्वारा कारित किए गए कई अपराधों के लिए उपयुक्त दंडादेश देने की शक्ति विवादग्रस्त नहीं है और न ही की जा सकती है । न्यायालय द्वारा ऐसे दंडादेश अधिनिर्णीत करते समय वह क्रम, जिसमें ऐसे दंडादेश भोगे जाएंगे, अनुबंधित किया जा सकता है । इसी प्रकार न्यायालय अपने विवेक से यह निदेश देने के लिए भी सक्षम है कि अधिनिर्णीत दंडादेश साथ-साथ भोगे

जाएंगे न कि क्रमवर्ती । तथापि, प्रश्न यह है कि क्या इस उपबंध के अधीन क्रमवर्ती भोगे जाने वाला एक से अधिक आजीवन कारावास दिया जा सकता है । इस प्रश्न का उत्तर तर्कसंगत आधार पर केवल तभी दिया जा सकता है जब इस वास्तविकता को स्वीकार किया जाए कि मानवों के पास केवल एक जीवन होता है और एक बार दिया गया आजीवन कारावास का दंडादेश कैदी से यह अपेक्षा करता है कि वह अपना शेष जीवन कारागार में बिताए जब तक कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा दंडादेश का परिहार या लघुकरण नहीं कर दिया जाता है । इस न्यायालय की राय में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 427(2) में यह जो आज्ञापक किया गया है कि यदि पहले से ही आजीवन कारावास भुगत रहे कैदी को किसी पश्चात्वर्ती अपराध के लिए एक अन्य आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया जाता है तो इस प्रकार अधिनिर्णीत दोनों दंडादेश साथ-साथ भोगे जाएंगे न कि क्रमवर्ती, इसके पीछे यही तर्क है । धारा 427(2) में इस रीति में धारा 427(1) में मान्यताप्राप्त इस साधारण नियम का अपवाद उपबंधित है कि किसी पश्चात्वर्ती अपराध के लिए दोषसिद्धि पर अधिनिर्णीत दंडादेश क्रमवर्ती चलेंगे । धारा 427(2) के उपबंधों से यह स्पष्ट होता है कि वह विसंगति पूरी तरह से संसद् के संज्ञान में थी जो आजीवन कारावास भुगत रहे किसी सिद्धदोष कैदी को दूसरी बार आजीवन कारावास भुगतने का निदेश देने पर उद्भूत होगी । इसलिए साधारण नियम का एक अपवाद स्पष्ट रूप से यह मान्यता देते हुए उपबंधित किया गया कि पृथक्-पृथक् रूप से विचारित और साबित ठहराए गए दो भिन्न अपराधों के लिए दिए गए आजीवन कारावास के मामले में दंडादेशों का क्रमवर्ती भोगने के लिए निदेश नहीं दिया जा सकता है । धारा 427(2) के उपबंधों के अतिरिक्त, रंजीत सिंह बनाम संघ राज्य क्षेत्र, चंडीगढ़ वाले मामले में इस न्यायालय ने प्रमिततः यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि आजीवन कारावास से सिद्धदोष व्यक्ति के शेष जीवन के लिए कारावास विवक्षित है, इसलिए क्रमवर्ती आजीवन कारावास अधिनिर्णीत नहीं किया जा सकता है क्योंकि मानवों के पास केवल एक ही जीवन होता है । इस न्यायपीठ के मत में, यह तर्क दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 पर भी विस्तारित होना चाहिए और यह बात मायने नहीं रखती कि धारा 31 में प्रमिततः धारा 427(2) के समरूप कोई उपबंध नहीं है । इस न्यायपीठ की राय में, इस उपबंध का इस प्रकार निर्वचन किया जाना चाहिए जिससे कि किसी विसंगति या तर्कहीनता को निवारित किया जा सके । धारा 31(1) का इस प्रकार निर्वचन किए जाने पर यह अर्थ होना चाहिए कि कैदी द्वारा कारित किए गए कई अपराधों के

लिए न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश क्रमवर्ती चलेंगे (जब तक कि न्यायालय अन्यथा निदेश नहीं दे) सिवाय वहां के जहां ऐसे दंडादेशों में आजीवन कारावास का दंडादेश सम्मिलित है जो साथ-साथ भोगे जा सकते हैं और भोगे जाने चाहिएं । यह न्यायपीठ यह भी अभिनिर्धारित करना चाहेगी कि यदि कैदी को एक से अधिक आजीवन कारावास के दंडादेश दिए जाते हैं, तो वे एक-दूसरे पर अधिरोपित हो जाएंगे । इससे यह विवक्षित होगा कि यदि कैदी को ऐसे एक दंडादेश के संबंध में कोई परिहार या लघुकरण अनुदत्त किया जाता है तो ऐसे परिहार का फायदा स्वतः दूसरे दंडादेश पर विस्तारित नहीं होगा । (पैरा 20)

यह न्यायालय इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं है कि इस न्यायालय ने कई अन्य मामलों में कैदी द्वारा कारित किए गए अपराध की नृशंस और पैशाचिक प्रकृति को ध्यान में रखते हुए आजीवन कारावास के दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने को निदेश दिए हैं । इन विनिश्चयों से यह अभिनिर्धारित किया गया समझा जा सकता है कि आजीवन कारावास भी क्रमवर्ती चल सकता है और इस सीमा तक ये विनिश्चय सही विधि अधिकथित नहीं करते हैं और उलटे जाते हैं । (पैरा 30)

निष्कर्षतः, यह न्यायालय इस प्रश्न का उत्तर नकारात्मक देता है । यह अभिनिर्धारित किया जाता है कि जबकि अनेक हत्याओं या आजीवन कारावास से दंडनीय अन्य अपराधों के लिए आजीवन कारावास के अनेक दंडादेश अधिनिर्णीत किए जा सकते हैं, किंतु इस प्रकार अधिनिर्णीत आजीवन कारावास के दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश नहीं दिया जा सकता है । तथापि, ऐसे दंडादेश एक-दूसरे के ऊपर अधिरोपित होंगे ताकि एक मामले में सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुदत्त कोई परिहार या लघुकरण कैदी को अन्य मामले में दिए गए दंडादेश के लिए स्वतः परिहार न हो सके । (पैरा 31)

यह न्यायपीठ इस मामले से विलग होते हुए इस मामले के एक अन्य आयाम, जिसके बारे में इसके समक्ष दलील दी गई है, पर विचार कर सकती है अर्थात् क्या न्यायालय आजीवन कारावास के दंडादेश और आवधिक दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश दे सकता है या नहीं । इस पहलू पर दलील इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए दी गई है कि अपीलार्थियों को आजीवन कारावास अधिनिर्णीत करने के अतिरिक्त विभिन्न अवधियों के कारावास के लिए भी दंडादिष्ट किया गया है । विचारण न्यायालय का निदेश, जिसकी अभिपुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है,

यह है कि उक्त आवधिक दंडादेश क्रमवर्ती चलेंगे । अपीलार्थियों की ओर से यह दलील दी गई कि निदेश का यह भाग भी वैध रूप से तर्कसंगत नहीं है क्योंकि जब एक बार कैदी को आजीवन कारावास से दंडादिष्ट कर दिया जाता है, तो उसे दिए गए आवधिक कारावास अवश्य साथ-साथ चलने चाहिएं । तथापि, यह न्यायपीठ ऐसा नहीं मानती । उस क्रम का निदेश करने की न्यायालय की शक्ति, जिसमें दंडादेश चलेंगे, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 में प्रयुक्त भाषा को ध्यान में रखते हुए अचुनौतीपूर्ण है । इसलिए न्यायालय विधिसम्मत रूप से यह निदेश दे सकता है कि कैदी अपना आजीवन कारावास प्रारंभ होने से पूर्व पहले आवधिक दंडादेश भुगतेगा । ऐसा निदेश पूर्णतः विधिसम्मत और धारा 31 के अनुरूप होगा । तथापि, इसके प्रतिकूल स्थिति सही नहीं हो सकेगी क्योंकि यदि न्यायालय आजीवन कारावास को पहले आरंभ होने का निदेश देता है तो इससे आवश्यक रूप से यह विवक्षित होगा कि आवधिक दंडादेश साथ-साथ चलेगा । क्योंकि एक बार जब कैदी अपना जीवन कारागार में बिता देता है तो उसके द्वारा कोई और दंडादेश भुगतने का प्रश्न ही नहीं है । निचले न्यायालय के निदेश में किसी उपांतरण या परिवर्तन की आवश्यकता है या नहीं, ऐसा विषय है जिससे इस न्यायपीठ का कोई सरोकार नहीं है । अपीलों की सुनवाई कर रही नियमित न्यायपीठ इस न्यायपीठ ने पूर्वगामी पैराओं में जो कुछ कहा है उसको ध्यान में रखते हुए मामले के इस पहलू पर विचार करने के लिए स्वतंत्र होगी । (पैरा 32)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 2 एस. सी. सी. 501 : **ओ. एम. चेरियन** उर्फ **थंकचन** बनाम **केरल राज्य और अन्य** ;	4, 7, 9, 21, 22, 28,
[2015]	(2015) 2 एस. सी. सी. 783 : **दुर्योधन राउत** बनाम **उड़ीसा राज्य** ;	4, 8, 9, 21, 24, 26, 28
[2015]	(2015) 13 स्केल 165 : **भारत संघ** बनाम **श्रीहरण** ;	16
[2014]	(2014) 2 एस. सी. सी. 153 : **मनोज** उर्फ **पानु** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	22

[2013]	(2013) 3 एस. सी. सी. 52 : **सनौल्लाह खान** बनाम **बिहार राज्य** ;	5, 29
[2008]	(2008) 13 एस. सी. सी. 767 : **स्वामी शरदानंद** बनाम **कर्नाटक राज्य** ;	16
[2005]	(2005) 5 एस. सी. सी. 194 : **कमलनंथा और अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	5, 27, 28 29
[2001]	(2001) 4 एस. सी. सी. 458 : **सुभाष चन्द्र** बनाम **कृष्ण लाल** ;	16
[2001]	(2001) 6 एस. सी. सी. 296 : **श्री भगवान** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	16
[2000]	(2000) 2 एस. सी. सी. 595 : **लक्ष्मण नस्कर** बनाम **भारत संघ** ;	15
[1998]	(1998) 3 एस. सी. सी. 625 : **रोनी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	30
[1996]	(1996) 4 एस. सी. सी. 148 : **रविन्द्र त्रिम्बक चौथमल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य** ;	30
[1992]	(1992) 2 एस. सी. सी. 661 : **पंजाब राज्य** बनाम **जोगिन्द्र सिंह** ;	12
[1991]	(1991) 3 एस. सी. सी. 498 : **अशोक कुमार** उर्फ **गोलू** बनाम **भारत संघ** ;	14
[1991]	(1991) 4 एस. सी. सी. 304 : **रंजीत सिंह** बनाम **संघ राज्यक्षेत्र, चंडीगढ़** ;	18
[1988]	(1988) 4 एस. सी. सी. 183 : **मोहम्मद अख्तर हुसैन** उर्फ **इब्राहिम अहमद भाट्टी** बनाम **सहायक समाहर्ता सीमा-शुल्क (निवारण), अहमदाबाद और एक अन्य** ;	22
[1981]	(1981) 1 एस. सी. सी. 107 : **माडू राम** बनाम **भारत संघ और अन्य** ;	13, 18

[1980] [1980] 2 उम. नि. प. 1045 = (1979) 3 एस. सी. सी. 745 :
दलबीर सिंह बनाम **पंजाब राज्य** ; 11

[1961] [1961] 3 एस. सी. आर. 440 :
गोपाल विनायक गोडसे बनाम **महाराष्ट्र राज्य** । 10,13,18,24

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2009 की दांडिक अपील सं. 231-233 और इसके साथ 2009 की दांडिक अपील सं. 225, 226-227 और 895 तथा 2015 की दांडिक अपील सं. 429.

2006 की दांडिक अपील सं. 323, 328 और 451 में मद्रास उच्च न्यायालय की मदुरै न्यायपीठ के तारीख 14 दिसम्बर, 2007 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

उपस्थित पक्षकारों की ओर से सर्वश्री ए. टी. एम. रंगारामानुजम, सुब्रमण्यम प्रसाद, ज्येष्ठ अधिवक्ता और उनके साथ के. के. मणी, (सुश्री) टी. अर्चना, जी. शिवबालमुरुगन, (सुश्री) वंदना, अनीस मोहम्मद, एल. के. पांडे, हितेश कुमार शर्मा, दिपांकर दास, (सुश्री) अनु गुप्ता, रंजीत मराड़, बी. विनोद कन्ना, राघवेंद्र एस. श्रीवास्तव, एम. योगेश कन्ना, जयंत पटेल, उत्कृष श्रीवास्तव, अशमीत सिंह और एम. योगेश कन्ना

न्यायालय का निर्णय मुख्य न्यायमूर्ति टी. एस. ठाकुर ने दिया ।

मु. न्या. ठाकुर – इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने हमें निम्नलिखित संक्षिप्त किंतु रोचक प्रश्न निर्दिष्ट किया है :–

"क्या किसी सिद्धदोष व्यक्ति को क्रमबद्ध हत्याओं का दोषी पाए जाने पर, जिनके लिए उसका एक ही मुकदमे में विचारण किया गया

है, क्रमवर्ती आजीवन कारावास अधिनिर्णीत किए जा सकते हैं ?"

2. यह प्रश्न निम्नलिखित परिस्थितियों में उद्भूत हुआ ।

3. अपीलार्थियों का एक ही घटना में उनके द्वारा अभिकथित रूप से की गई कई हत्याओं के लिए भारतीय दंड संहिता, 1860 की धारा 302 के अधीन दंडनीय अपराध सहित विभिन्न अपराधों के लिए विचारण किया गया था । वे दोषी पाए गए और उनके द्वारा कारित की गई प्रत्येक हत्या के लिए आजीवन कारावास के दंडादेश सहित विभिन्न दंडादेशों से दंडादिष्ट किए गए । महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रत्येक हत्या के लिए आजीवन कारावास का दंडादेश क्रमवर्ती रूप से चलने का निदेश दिया गया है । इसका परिणाम यह है कि अपीलार्थियों को क्रमवर्ती आजीवन कारावास उनके द्वारा की गई हत्याओं की संख्या पर निर्भर करते हुए ऐसे दो से आठ दंडादेश भुगतने होंगे । दोषसिद्धि और क्रमवर्ती आजीवन कारावास अधिनिर्णीत करने के विरुद्ध फाइल की गई दांडिक अपीलें असफल रहने पर अपीलार्थियों ने निचले न्यायालयों द्वारा पारित किए गए निर्णयों और आदेशों को चुनौती देते हुए वर्तमान अपीलें फाइल की हैं ।

4. जब अपीलें सुनवाई के लिए इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष आईं, तो यह प्रतीत होता है कि अपीलार्थियों की ओर से विद्वान् काउंसेल ने अपनी चुनौती विचारण न्यायालय द्वारा जारी किए गए इस निदेश और उच्च न्यायालय द्वारा की गई इस अभिपुष्टि तक सीमित रखी कि प्रत्येक अपीलार्थी को उनके द्वारा अभिकथित रूप से कारित की गई कई हत्याओं के लिए अधिनिर्णीत आजीवन कारावास के दंडादेश क्रमवर्ती चलेंगे न कि साथ-साथ । यह दलील दी गई कि दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 की धारा 31 के निबंधनों के अनुसार अपीलार्थियों को उनके द्वारा अभिकथित रूप से कारित की गई विभिन्न हत्याओं के लिए अधिनिर्णीत आजीवन कारावास के दंडादेश साथ-साथ चल सकते हैं न कि क्रमवर्ती, जैसा कि विचारण न्यायालय और उच्च न्यायालय द्वारा आदेश दिया गया है । इस दलील के समर्थन में **ओ. एम. चेरियन** उर्फ **थंकचन** बनाम **केरल राज्य और अन्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय और **दुर्योधन राउत** बनाम **उड़ीसा**

---

[1] (2015) 2 एस. सी. सी. 501.

राज्य[1] वाले मामले में तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के विनिश्चय का अवलंब लिया गया ।

5. प्रत्यर्थी-तमिलनाडु राज्य की ओर से **कमलनंथा और अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[2] और **सनौल्लाह खान** बनाम **बिहार राज्य**[3] वाले मामलों में इस न्यायालय के दो अन्य विनिश्चयों का अवलंब यह दलील देने के लिए लिया गया प्रतीत होता है कि किसी सिद्धदोष व्यक्ति को उसके द्वारा कारित की गई विभिन्न हत्याओं के लिए एक से अधिक आजीवन कारावास इस निदेश के साथ अधिनिर्णीत करना वैध रूप से अनुज्ञेय है कि दिए गए ऐसे दंडादेश क्रमवर्ती चलेंगे । अपील की सुनवाई कर रही न्यायपीठ ने इस प्रश्न पर कि क्या क्रमवर्ती आजीवन कारावास के दंडादेश वैध रूप से अनुज्ञेय हैं, इस न्यायालय द्वारा अपनाए गए दृष्टिकोणों में विरोध देखते हुए एक प्रामाणिक निर्णय द्वारा विरोध को सुलझाने के लिए इस मामले को पांच न्यायाधीशों से बनी बृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष रखे जाने का निदेश दिया । प्रमिततः, इसीलिए ये अपीलें एक प्रामाणिक निर्णय के लिए हमारे समक्ष रखी गई हैं ।

6. हमने पक्षकारों की ओर से विद्वान् काउंसेलों को पर्याप्त विस्तारपूर्वक सुना । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31, जो एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्ध होने के मामलों में दंडादेशों के संबंध में है, निम्नलिखित प्रकार से है :–

> "31. एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्ध होने के मामलों में दंडादेश – (1) जब एक ही विचारण में कोई व्यक्ति दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाता है, तब भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 71 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, न्यायालय उसे उन अपराधों के लिए विहित विभिन्न दंडों में से उन दंडों के लिए, जिन्हें देने के लिए ऐसा न्यायालय सक्षम है, दंडादेश दे सकता है ; जब ऐसे दंड कारावास के रूप में हों तब, यदि न्यायालय ने यह निदेश न दिया हो कि ऐसे दंड साथ-साथ भोगे जाएंगे, तो वे ऐसे क्रम से एक के बाद एक प्रारंभ होंगे जिसका न्यायालय निदेश दे ।

---

[1] (2015) 2 एस. सी. सी. 783.
[2] (2005) 5 एस. सी. सी. 194.
[3] (2013) 3 एस. सी. सी. 52.

(2) दंडादेशों के क्रमवर्ती होने की दशा में केवल इस कारण से कि कई अपराधों के लिए संकलित दंड उस दंड से अधिक है जो वह न्यायालय एक अपराध के लिए दोषसिद्धि पर देने के लिए सक्षम है, न्यायालय के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि अपराधी को उच्चतर न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए भेजे :

परंतु –

(क) किसी भी दशा में ऐसा व्यक्ति चौदह वर्ष से अधिक की अवधि के कारावास के लिए दंडादिष्ट नहीं किया जाएगा ;

(ख) संकलित दंड उस दंड की मात्रा के दुगने से अधिक न होगा जिसे एक अपराध के लिए देने के लिए वह न्यायालय सक्षम है ।

(3) किसी सिद्धदोष व्यक्ति द्वारा अपील के प्रयोजन के लिए उन क्रमवर्ती दंडादेशों का योग, जो इस धारा के अधीन उसके विरुद्ध दिए गए हैं, एक दंडादेश समझा जाएगा ।"

7. उपरोक्त उपबंध के सावधानीपूर्वक वाचन से यह दर्शित होता है कि यह उपबंध केवल उन मामलों में लागू होता है जहां इन दो आवश्यकताओं का समाधान हो जाता है अर्थात् – (1) जब एक ही विचारण में कोई व्यक्ति दोषसिद्ध किया जाता है, और (2) विचारण दो या अधिक अपराधों के लिए हो । इन दोनों शर्तों का समाधान होने पर ही न्यायालय अपराधी को उसके द्वारा कारित किए गए अपराधों के लिए विहित कई दंडों से दंडादिष्ट कर सकता है बशर्ते न्यायालय अन्यथा ऐसे दंड अधिरोपित करने के लिए सक्षम हो । महत्वपूर्ण यह है कि ऐसे दंड, जैसा कि न्यायालय सिद्धदोष व्यक्ति द्वारा कारित किए गए कई अपराधों के लिए अधिनिर्णीत करने का विनिश्चय करे, जब कारावास के रूप में हों तब, यदि न्यायालय ने अपने विवेकाधिकार से यह निदेश न दिया हो कि ऐसे दंड साथ-साथ भोगे जाएंगे, तो वे ऐसे क्रम से एक के बाद एक प्रारंभ होंगे जिसका न्यायालय निदेश दे । धारा 31 की उपधारा (2) के वाचन मात्र से यह दर्शित होता है कि न्यायालय के लिए यह आवश्यक नहीं होगा कि अपराधी को केवल इस कारण उच्चतर न्यायालय के समक्ष विचारण के लिए भेजे कि कई अपराधों के लिए संकलित दंड उस दंड से अधिक है जो वह न्यायालय एक अपराध के लिए दोषसिद्धि पर देने के लिए सक्षम है, परंतु यह भी कि किसी भी दशा में ऐसा व्यक्ति चौदह वर्ष से अधिक की

अवधि के कारावास के लिए दंडादिष्ट नहीं किया जाएगा और संकलित दंड उस दंड की मात्रा के दुगने से अधिक नहीं होगा जिसे एक अपराध के लिए देने के लिए वह न्यायालय सक्षम है । **ओ. एम. चेरियन** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने धारा 31(1) का निर्वचन करते हुए यह घोषित किया कि यदि किसी सिद्धदोष व्यक्ति पर दो आजीवन कारावास के दंडादेश अधिरोपित किए जाते हैं तो न्यायालय को आवश्यक रूप से यह निदेश देना चाहिए कि वे दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । न्यायालय ने यह कहा :–

> "दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31(1) में यह आदिष्ट है कि न्यायालय द्वारा उस क्रम को, जिसमें एक विशिष्ट दंडादेश दूसरे दंडादेश के पर्यवसान के पश्चात् चलेगा, विनिर्दिष्ट करने का निदेश भी दिया जाए । कठिनाइयां तब पैदा होती हैं जब न्यायालय आजीवन कारावास के दंडादेश के साथ-साथ नियत अवधि के कारावास के दंडादेश भी अधिरोपित करते हैं । ऐसे मामलों में यदि न्यायालय यह निदेश नहीं देता है कि दंडादेश साथ-साथ चलेंगे, तब दंडादेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31(1) के प्रवर्तन द्वारा क्रमवर्ती चलेंगे । यह प्रश्न ही उत्पन्न नहीं होता कि दोषसिद्ध व्यक्ति पहले आजीवन कारावास का दंडादेश भोगे और उसके पश्चात् नियत अवधि के कारावास के दंडादेश भोगे और ऐसा कोई निदेश करना अव्यवहारिक होगा । चूंकि आजीवन कारावास के दंडादेश से अभिप्राय दोषसिद्ध व्यक्ति के सामान्य जीवन का अंत होने तक कारागार में रहना है, इसलिए नियत अवधि के कारावास का दंडादेश आवश्यक रूप से आजीवन कारावास के दंडादेश के साथ-साथ चलना चाहिए । ऐसी दशा में, यह उचित होगा यदि सेशन न्यायाधीश दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश जारी करने के लिए अपने विवेकाधिकार का प्रयोग करें । इसी प्रकार, यदि दोषसिद्ध व्यक्ति पर दो आजीवन कारावास अधिरोपित किए जाते हैं, तो न्यायालय को आवश्यक रूप से उन दंडादेशों को साथ-साथ चलने का निदेश देना चाहिए ।"

8. **दुर्योधन राउत** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ का विनिश्चय इसी आशय का है जिसमें इस न्यायालय ने यह दृष्टिकोण अपनाया कि चूंकि आजीवन कारावास से अभिप्राय जीवनभर का कारावास है, इसलिए एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्धि के मामले में क्रमवर्ती दंडादेश अधिनिर्णीत करने

का प्रश्न ही नहीं है । इस न्यायालय ने धारा 31 की उपधारा (2) के परंतुक का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि जहां कोई व्यक्ति कई अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया जाता है, जिनमें ऐसा अपराध भी है जिसके लिए आजीवन कारावास दिया जा सकता है, वहां धारा 31(2) का परंतुक ऐसे दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने के लिए निषिद्ध करेगा ।

9. उपरोक्त दो निर्णयों से यह प्रतीत होता है कि आजीवन कारावास के दंडादेशों को क्रमवर्ती न चलने का तर्क इस वास्तविकता में निहित है कि आजीवन कारावास से विवक्षित सिद्धदोष व्यक्ति के सामान्य जीवन के अंत तक कारावास है । यदि यह प्रतिपादना युक्तिसंगत है तो **ओ. एम. चेरियन** (उपरोक्त) और **दुर्योधन राउत** (उपरोक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों के विनिश्चयाधारों में अंतर्निहित तर्क भी समान रूप से युक्तिसंगत हैं । इसके बाद जिस बात की परीक्षा किए जाने की आवश्यकता है वह यह है कि क्या आजीवन कारावास से विवक्षित वास्तव में सिद्धदोष व्यक्ति के सामान्य जीवन के अंत तक का कारावास है, जैसा कि **ओ. एम. चेरियन** (उपरोक्त) और **दुर्योधन राउत** (उपरोक्त) वाले मामलों में मत व्यक्त किया गया है । हमारी सुविचारित राय में, अब यह प्रश्न अनिर्णीत नहीं रह गया है और इस न्यायालय द्वारा पारित किए गए अनेक विनिश्चयों में इस प्रश्न की परीक्षा की गई है और सकारात्मक उत्तर दिया गया है । इस प्रक्रम पर हमारे लिए उन कुछ विनिश्चयों को निर्दिष्ट करना उपयोगी होगा ।

10. **गोपाल विनायक गोडसे** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की एक संविधान न्यायपीठ ने यह अभिनिर्धारित किया कि आजीवन कारावास से दंडादिष्ट कैदी अपना शेष जीवन कारागार में बिताने के लिए तब तक आबद्ध है जब तक कि समुचित प्राधिकारी द्वारा दंडादेश का लघुकरण या परिहार नहीं किया जाता है ।

11. **दलबीर सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ ने यह मत व्यक्त किया :–

> " .....आजीवन कारावास से यथार्थ रूप से मनुष्य के समस्त जीवन का कारावास अभिप्रेत है, किंतु व्यवहारिक दृष्टि से यह 10 से 14 वर्ष की कालावधि के कारावास की कोटि में आता है जो कि

---

[1] [1961] 3 एस. सी. आर. 440.

[2] [1980] 2 उम. नि. प. 1045 = (1979) 3 एस. सी. सी. 745.

सिद्धदोष करने वाले न्यायालय के विकल्प पर इस शर्त के अधीन हो सकेगा कि आजीवन कारावास तब तक बना रहेगा जब तक कि जीवन चलता रहता है, जहां हत्या संबंधी अपराध व्यसन के आपराधिक संकेत मिलते हों और समाज इस जोखिम में न रह सकता हो कि वह सिद्धदोष व्यक्ति खुले आम घूमता रहे ।"

12. पुनः, **पंजाब राज्य** बनाम **जोगिन्द्र सिंह**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि यदि दंडादेश "आजीवन करावास" का है तो सिद्धदोष व्यक्ति को अपना शेष जीवन कारावास में बिताना होगा जब तक कि उसे सक्षम प्राधिकारी द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 432 और 433 के अधीन उसमें निहित शक्तियों का प्रयोग करते हुए परिहार प्रदान नहीं किया जाता है ।

13. **माडू राम** बनाम **भारत संघ और अन्य**[2] वाले मामले में भी इस न्यायालय ने **गोडसे** (उपरोक्त) वाले मामले का अनुसरण करते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि आजीवन कारावास कैदी की अंतिम सांस तक चलता है और उपार्जित परिहारों की समयावधि कुछ भी हो, कैदी रिहाई का दावा केवल तभी कर सकता है यदि शेष कारावासों का सरकार द्वारा परिहार किया जाता है । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

"हम **गोडसे** वाले मामले का यह अभिनिर्धारित करने के लिए अनुसरण करते हैं कि आजीवन कारावास अंतिम सांस तक चलता है और उपार्जित परिहार का काल कुछ भी हो, कैदी रिहाई का दावा केवल तभी कर सकता है यदि सरकार द्वारा शेष कारावास का परिहार कर दिया जाता है ।"

14. **अशोक कुमार** उर्फ **गोलू** बनाम **भारत संघ**[3] वाले मामले में इस न्यायालय के पास फिर "आजीवन करावास" अभिव्यक्ति के सही अर्थ और तात्पर्य की परीक्षा करने का एक अन्य अवसर आया और यह घोषित किया कि जब इस अभिव्यक्ति को भारतीय दंड संहिता की धारा 45 को ध्यान में रखते हुए पढ़ा जाए, तो इसका साधारणतया अर्थ जीवन के संपूर्ण जीवनकाल का कारावास है । इस संबंध में निम्नलिखित उद्धरण उपयुक्त है :–

---

[1] (1992) 2 एस. सी. सी. 661.
[2] (1981) 1 एस. सी. सी. 107.
[3] (1991) 3 एस. सी. सी. 498.

"12. * * * * *

'आजीवन कारावास' अभिव्यक्ति को भारतीय दंड संहिता की धारा 45 के संदर्भ में पढ़ा जाना चाहिए । इस उपबंध के अधीन 'जीवन' शब्द तब तक मानव जीवन का द्योतक है जब तक कि संदर्भ से अन्यथा प्रतीत न होता हो । हमने यह पाया है कि दंडों को धारा 53 में वर्णित किया गया है और आजीवन कारावास उनमें से एक है । इसे धारा 45 को ध्यान में रखते हुए पढ़ने पर इसका साधारणतया अर्थ संपूर्ण जीवनकाल के लिए कारावास है । ....."

15. **लक्ष्मण नस्कर** बनाम **भारत संघ**[1] वाले मामले में इस न्यायालय का विनिश्चय इसी आशय का है, जिसमें इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आजीवन कारावास जीवनभर के कारावास से कुछ भी कम नहीं है, यद्यपि परिहार उपार्जित करके आजीवन कारावास से दोषसिद्ध व्यक्ति 20 वर्ष का कारावास पूर्ण करने से पूर्व, जिसमें उपार्जित परिहार भी सम्मिलित हैं, समय-पूर्व रिहाई के लिए याचना कर सकता है ।

16. **सुभाष चन्द्र** बनाम **कृष्ण लाल**[2], **श्री भगवान** बनाम **राजस्थान राज्य**[3] और **स्वामी शरदानंद** बनाम **कर्नाटक राज्य**[4] वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों के प्रति भी निर्देश किया जा सकता है और इन विनिश्चयों में भी इस न्यायालय के पूर्व उल्लिखित विनिश्चयों द्वारा स्थिर की गई विधिक स्थिति को दोहराया गया है । **भारत संघ** बनाम **श्रीहरण**[5] वाले मामले में भी हाल ही में इस न्यायालय की संविधान न्यायपीठ के पास इस विषय पर निर्णयज विधि का पुनर्विलोकन करने का एक अन्य अवसर आया । **संभाजी कृष्ण**, **रतन सिंह**, **माडू राम** (उपरोक्त) और **रंजीत सिंह** (उपरोक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

"यह पूर्णतः स्पष्ट है कि इस न्यायालय ने यथा उपरोक्त मत व्यक्त करते हुए इस विधिक स्थिति की अभिपुष्टि की है कि आजीवन कारावास से केवल अभिप्राय संपूर्ण जीवन के लिए कारावास है जब

---

[1] (2000) 2 एस. सी. सी. 595.
[2] (2001) 4 एस. सी. सी. 458.
[3] (2001) 6 एस. सी. सी. 296.
[4] (2008) 13 एस. सी. सी. 767.
[5] (2015) 13 स्केल 165.

तक इसे समुचित सरकार द्वारा दंड प्रक्रिया संहिता के अधीन या कार्यपालिका के मुखिया अर्थात् क्रमशः राष्ट्रपति या राज्य के राज्यपाल द्वारा संविधान के अनुच्छेद 72 और 161 के अधीन विधिमान्य रूप से अनुदत्त परिहारों द्वारा कम नहीं कर दिया जाता है ।"

17. इस प्रकार, यह विधिक स्थिति भली-भांति सुस्थिर है कि आजीवन कारावास अपराधी के शेष जीवन के लिए कारावास होता है, जब तक कि वास्तव में सक्षम प्राधिकारी द्वारा शेष कारावास का लघुकरण या परिहार नहीं किया जाता है । ऐसी स्थिति में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 के उपबंधों का ऐसा निर्वचन किया जाना चाहिए जिससे कि यह इस मूलभूत सिद्धांत के संगत हो कि आजीवन कारावास में अपराधी से यह अपेक्षित होता है वह अपना शेष जीवन कारागार में बिताए । ऐसा कोई निदेश जिसमें अपराधी से एक के बाद दूसरा आजीवन कारावास भुगतने की अपेक्षा की जाती है, वह असंगत और अविवेकी होगा, क्योंकि इससे इस वास्तविकता को अनदेखा करना होगा कि मानव के पास अन्य सभी जीवित प्राणियों की तरह ही जीने के लिए केवल एक जीवन होता है । धारा 31(1) को इस प्रकार समझने पर दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने की अनुज्ञा केवल तभी होगी यदि ऐसे दंडादेश आजीवन कारावास नहीं हैं । हमारी राय में, केवल यही एक तरीका है जो किसी कैदी को दो क्रमवर्ती आजीवन कारावास के दंडादेश भोगने की स्पष्ट संभाव्यता से बचा सकता है ।

18. **रंजीत सिंह** बनाम **संघ राज्यक्षेत्र, चंडीगढ़**[1] वाले मामले में इस न्यायालय की तीन न्यायाधीशों की न्यायपीठ के समक्ष कुछ इसी प्रकार का प्रश्न विचार के लिए आया । उस मामले में कैदी को हत्या करने के लिए दोषसिद्ध किया गया था और आजीवन कारावास भुगतने का दंडादेश दिया गया था । उसे आजीवन कारावास भुगतते हुए जब परोल पर रिहा किया गया था, तब उसने हत्या का दूसरा अपराध किया और उसके लिए भी उसे आजीवन कारावास भुगतने के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया । दूसरी दोषसिद्धि और दंडादेश के विरुद्ध फाइल की गई अपील में इस न्यायालय द्वारा तारीख 30 सितम्बर, 1983 के आदेश द्वारा यह निदेश दिया गया कि उसे दिया गया आजीवन कारावास उसके पूर्ववर्ती आजीवन कारावास के दंडादेश के साथ-साथ नहीं चलना चाहिए । न्यायालय ने यह

---

[1] (1991) 4 एस. सी. सी. 304.

निदेश दिया कि कैदी को दिए गए पूर्ववर्ती दंडादेश के परिहार या लघुकरण की स्थिति में उसके द्वारा कारित की गई दूसरी हत्या के लिए दिया गया आजीवन कारावास प्रारंभ हो जाएगा । कैदी ने उक्त निदेश से व्यथित होकर, जिसके द्वारा उसे अधिनिर्णीत द्वितीय आजीवन कारावास को क्रमवर्ती बनाया गया था, संविधान के अनुच्छेद 32 के अधीन एक रिट याचिका मुख्य रूप से इस आधार पर फाइल की कि इस न्यायालय का तारीख 30 सितम्बर, 1983 का आदेश दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 427(2) के प्रतिकूल है, जिसके अनुसार पहले से ही आजीवन कारावास भुगत रहे किसी व्यक्ति को यदि आजीवन कारावास का दंडादेश दिया जाता है तब पश्चात्वर्ती दंडादेश पूर्व दंडादेश के साथ-साथ भोगा जाएगा । इस न्यायालय ने **गोडसे** (उपरोक्त) और **माडू राम** (उपरोक्त) वाले मामलों का अवलंब लेते हुए यह अभिनिर्धारित किया कि आजीवन कारावास अपराधी के शेष बचे जीवन के लिए कारावास है । इसलिए धारा 427 की उपधारा (1) में अंतर्विष्ट साधारण नियम के अनुसार पश्चात्वर्ती आजीवन कारावास के दंडादेश का क्रमवर्ती चलने का प्रश्न ही नहीं है । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

> "8. * * * * *
>
> जैसी कि श्री गर्ग द्वारा ठीक ही दलील दी गई है, और श्री ललित द्वारा विवादग्रस्त नहीं की गई है, कि पूर्ववर्ती आजीवन कारावास के दंडादेश का अर्थ शेष जीवन कारागार में बिताने वाले दंडादेश के रूप में समझा जाता है, जब तक कि समुचित प्राधिकारी द्वारा इसका लघुकरण या परिहार नहीं कर दिया जाए और व्यक्ति के पास केवल एक जीवनकाल होता है, इसलिए किसी पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि पर किसी अवधि या आजीवन कारावास का दंडादेश पूर्ववर्ती आजीवन कारावास के ऊपर अधिरोपित किया जा सकता है और इसे निश्चित रूप से उसके साथ जोड़ा नहीं जा सकता है, चूंकि अपराधी के जीवनकाल को बढ़ाना मानव की शक्ति या इस विषय के लिए किसी की शक्ति के बाहर की बात है । इसी स्पष्ट स्थिति का धारा 427 की उपधारा (2) में उल्लेख किया गया है, चूंकि इस धारा की उपधारा (1) में प्रतिपादित साधारण नियम यह है कि न्यायालय के निदेश के बिना पश्चात्वर्ती दंडादेश साथ-साथ नहीं अपितु क्रमवर्ती चलेगा । वह एकमात्र स्थिति, जिसमें पश्चात्वर्ती दंडादेश को पूर्ववर्ती दंडादेश के साथ-साथ चलने के लिए न्यायालय को निदेश देने की

आवश्यकता नहीं है, उपधारा (2) में उपबंधित है जिसे उपधारा (1) पर आधारित ऐसे किसी संभाव्य संविवाद से बचने के लिए अधिनियमित किया गया है, जब यदि इस आशय का न्यायालय द्वारा कोई अभिव्यक्त निदेश न दिया गया हो । उपधारा (2), उपधारा (1) में अधिनियमित इस साधारण नियम के अपवाद की प्रकृति की है कि पश्चात्वर्ती दोषसिद्धि पर दिया गया दंडादेश, जब तक न्यायालय यह निदेश न दे कि यह प्रथम दंडादेश के साथ-साथ चलेगा, यह प्रथम दंडादेश के पर्यवसान के पश्चात् प्रारंभ होगा । अतः, धारा 427 की उपधारा (1) और (2) का अर्थ और प्रयोजन तथा उपधारा (2) का अधिनियमित करने का उद्देश्य स्पष्ट है ।"

19. उक्त मत व्यक्त करते हुए इस न्यायालय ने यह घोषित किया कि जब कैदी को दिया गया पश्चात्वर्ती आजीवन कारावास पूर्ववर्ती आजीवन कारावास के ऊपर अधिरोपित किया जाता है तो कैदी को पूर्ववर्ती आजीवन कारावास के संबंध में अनुदत्त किसी परिहार या लघुकरण से पश्चात्वर्ती आजीवन कारावास के संबंध में स्वतः फायदा प्राप्त नहीं हो जाएगा । ऐसा पश्चात्वर्ती कारावास जारी रहेगा और पूर्ववर्ती कारावास के परिहार और लघुकरण से अप्रभावित बना रहेगा । इस न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

"* * * * *

दूसरे शब्दों में, एक के ऊपर दूसरा अधिरोपित पश्चात्वर्ती आजीवन कारावास का दंडादेश केवल इस कारण समाप्त नहीं हो जाएगा कि समरूपी आजीवन करावास के पूर्ववर्ती दंडादेश के संबंध में समुचित प्राधिकारी द्वारा कोई परिहार या लघुकरण प्रदान किया गया है । इसका परिणाम यह है कि याची को अपने पूर्ववर्ती दंडादेश के परिहार या लघुकरण का कोई व्यावहारिक फायदा उसके पूर्ववर्ती आजीवन कारावास के ऊपर पश्चात्वर्ती आजीवन कारावास अधिरोपित होने के कारण तब तक नहीं मिलेगा जब तक कि याची को उसी प्रकार का समरूपी फायदा पश्चात्वर्ती दंडादेश की बाबत भी प्रदान नहीं किया जाता है ।"

20. **रंजीत सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में जिस तथ्यात्मक स्थिति पर विचार किया गया था, वह प्रस्तुत मामले में हम जिस तथ्यात्मक स्थिति पर विचार कर रहे हैं, उससे निस्संदेह भिन्न है, क्योंकि **रंजीत सिंह**

(उपरोक्त) वाला मामला दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 427 के अंतर्गत आता था क्योंकि उस मामले में कैदी ने जब दूसरी हत्या कारित की और जिसके लिए उसकी दोषसिद्धि हुई तथा दूसरा आजीवन कारावास दिया गया उस समय वह पहले से ही आजीवन कारावास भुगत रहा था । प्रस्तुत मामलों में अपीलार्थी उनके द्वारा अनेक हत्याएं कारित करने के समय आजीवन कारावास भुगत रहे सिद्धदोष व्यक्ति नहीं थे । इसलिए उनके मामले अधिक समुचित रूप से दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 के अंतर्गत आते हैं जो एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्धि के संबंध में है । धारा 31(1) में, भारतीय दंड संहिता की धारा 71 के उपबंधों के अधीन रहते हुए, न्यायालय को ऐसे अपराधों के लिए विहित दंड अधिनिर्णीत करने के लिए सशक्त किया गया है और यह आज्ञापक किया गया है कि जब ऐसे दंड कारावास के रूप में हों तब, यदि न्यायालय ने यह निदेश न दिया हो कि ऐसे दंड साथ-साथ भोगे जाएंगे, तो वे ऐसे क्रम से एक के बाद एक प्रारंभ होंगे जिसका न्यायालय निदेश दे । अपराधियों द्वारा कारित किए गए कई अपराधों के लिए उपयुक्त दंडादेश देने की शक्ति विवादग्रस्त नहीं है और न ही की जा सकती है । न्यायालय द्वारा ऐसे दंडादेश अधिनिर्णीत करते समय वह क्रम, जिसमें ऐसे दंडादेश भोगे जाएंगे, अनुबंधित किया जा सकता है । इसी प्रकार न्यायालय अपने विवेक से यह निदेश देने के लिए भी सक्षम है कि अधिनिर्णीत दंडादेश साथ-साथ भोगे जाएंगे न कि क्रमवर्ती । तथापि, प्रश्न यह है कि क्या इस उपबंध के अधीन क्रमवर्ती भोगे जाने वाला एक से अधिक आजीवन कारावास दिया जा सकता है । इस प्रश्न का उत्तर तर्कसंगत आधार पर केवल तभी दिया जा सकता है जब इस वास्तविकता को स्वीकार किया जाए कि मानवों के पास केवल एक जीवन होता है और एक बार दिया गया आजीवन कारावास का दंडादेश कैदी से यह अपेक्षा करता है कि वह अपना शेष जीवन कारागार में बिताए जब तक कि सक्षम प्राधिकारी द्वारा दंडादेश का परिहार या लघुकरण नहीं कर दिया जाता है । हमारी राय में, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 427(2) में यह जो आज्ञापक किया गया है कि यदि पहले से ही आजीवन कारावास भुगत रहे कैदी को किसी पश्चात्वर्ती अपराध के लिए एक अन्य आजीवन कारावास से दंडादिष्ट किया जाता है तो इस प्रकार अधिनिर्णीत दोनों दंडादेश साथ-साथ भोगे जाएंगे न कि क्रमवर्ती, इसके पीछे यही तर्क है । धारा 427(2) में इस रीति में धारा 427(1) में मान्यताप्राप्त इस साधारण नियम का अपवाद उपबंधित है कि किसी पश्चात्वर्ती अपराध के लिए दोषसिद्धि पर अधिनिर्णीत दंडादेश क्रमवर्ती चलेंगे । धारा 427(2) के

उपबंधों से यह स्पष्ट होता है कि वह विसंगति पूरी तरह से संसद् के संज्ञान में थी जो आजीवन कारावास भुगत रहे किसी सिद्धदोष कैदी को दूसरी बार आजीवन कारावास भुगतने का निदेश देने पर उद्भूत होगी । इसलिए साधारण नियम का एक अपवाद स्पष्ट रूप से यह मान्यता देते हुए उपबंधित किया गया कि पृथक्-पृथक् रूप से विचारित और साबित ठहराए गए दो भिन्न अपराधों के लिए दिए गए आजीवन कारावास के मामले में दंडादेशों का क्रमवर्ती भोगने के लिए निदेश नहीं दिया जा सकता है । धारा 427(2) के उपबंधों के अतिरिक्त, **रंजीत सिंह** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय ने प्रमिततः यह अभिनिर्धारित किया कि चूंकि आजीवन कारावास से सिद्धदोष व्यक्ति के शेष जीवन के लिए कारावास विवक्षित है, इसलिए क्रमवर्ती आजीवन कारावास अधिनिर्णीत नहीं किया जा सकता है क्योंकि मानवों के पास केवल एक ही जीवन होता है । हमारे मत में, यह तर्क दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 पर भी विस्तारित होना चाहिए और यह बात मायने नहीं रखती कि धारा 31 में प्रमिततः धारा 427(2) के समरूप कोई उपबंध नहीं है । हमारी राय में, इस उपबंध का इस प्रकार निर्वचन किया जाना चाहिए जिससे कि किसी विसंगति या तर्कहीनता को निवारित किया जा सके । धारा 31(1) का इस प्रकार निर्वचन किए जाने पर यह अर्थ होना चाहिए कि कैदी द्वारा कारित किए गए कई अपराधों के लिए न्यायालय द्वारा अधिनिर्णीत दंडादेश क्रमवर्ती चलेंगे (जब तक कि न्यायालय अन्यथा निदेश नहीं दे) सिवाय वहां के जहां ऐसे दंडादेशों में आजीवन कारावास का दंडादेश सम्मिलित है जो साथ-साथ भोगे जा सकते हैं और भोगे जाने चाहिएं । हम यह भी अभिनिर्धारित करना चाहेंगे कि यदि कैदी को एक से अधिक आजीवन कारावास के दंडादेश दिए जाते हैं, तो वे एक-दूसरे पर अधिरोपित हो जाएंगे । इससे यह विवक्षित होगा कि यदि कैदी को ऐसे एक दंडादेश के संबंध में कोई परिहार या लघुकरण अनुदत्त किया जाता है तो ऐसे परिहार का फायदा स्वतः दूसरे दंडादेश पर विस्तारित नहीं होगा ।

21. अब हम निर्देश में उल्लिखित एक ओर **चेरियन** (उपरोक्त) और **दुर्योधन** (उपरोक्त) वाले मामलों में और दूसरी ओर **कमलनंथा** (उपरोक्त) और **सनौल्हा खान** (उपरोक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चयों के बीच विरोध पर विचार करेंगे ।

22. **ओ. एम. चेरियन** (उपरोक्त) वाले मामले में कैदी को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क और 306 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए

दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया गया था । निचले न्यायालयों ने उस मामले में दोषसिद्ध व्यक्तियों को भारतीय दंड संहिता की धारा 498क के अधीन दो वर्ष का कारावास और धारा 306 के अधीन सात वर्ष का कारावास दिया था और उन्हें क्रमवर्ती भोगने का निदेश दिया था । कैदियों ने उक्त निदेश से व्यथित होकर इस न्यायालय में अपील की और यह दलील दी कि उन्हें दिए गए दंडादेश साथ-साथ चलने चाहिएं न कि क्रमवर्ती । वह अपील **मोहम्मद अख्तर हुसैन** उर्फ **इब्राहिम अहमद भाट्टी** बनाम **सहायक समाहर्ता सीमा-शुल्क (निवारण), अहमदाबाद और एक अन्य**[1] वाले मामले को ध्यान में रखते हुए इस न्यायालय के तीन न्यायाधीशों की बृहत्तर न्यायपीठ को निर्दिष्ट की गई । कैदियों ने बृहत्तर न्यायपीठ के समक्ष **मोहम्मद अख्तर हुसैन** (उपरोक्त) और **मनोज** उर्फ **पानु** बनाम **हरियाणा राज्य**[2] वाले मामलों का यह दलील देने के लिए अवलंब लिया कि चूंकि कैदी एक ही घटना के अनुक्रम में कारित किए गए दो से अधिक अपराधों के लिए दोषी पाए गए हैं, इसलिए ऐसे दंडादेश साथ-साथ चलने चाहिएं । इस न्यायालय ने इस विषय पर निर्णयज विधि का पुनर्विलोकन करने के पश्चात् यह अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 में न्यायालय को स्वविवेकानुसार यह आदेश करने की शक्ति निहित की गई है कि दो या अधिक अपराधों के लिए दोषसिद्धि की दशा में दिए गए दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । इस न्यायालय ने यह उद्घोषित किया कि न्यायालयों द्वारा ऐसे विवेक का प्रयोग करने के लिए कोई कठोर नियम अधिकथित करना कठिन है । कोई दंडादेश साथ-साथ चलना चाहिए या क्रमवर्ती, यह अपराध की प्रकृति और मामले के तथ्यों और परिस्थितियों पर निर्भर करेगा । यही कहा जा सकता है कि विवेक का प्रयोग न्यायिक सिद्धांतों के अनुसार करना चाहिए न कि यंत्रवत । यह कहने के पश्चात्, न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया कि यदि किसी दोषसिद्ध व्यक्ति पर दो आजीवन कारावास अधिरोपित किए जाते हैं तो न्यायालय के लिए यह निदेश देना आवश्यक है कि दोनों दंडादेश साथ-साथ चलेंगे । कारण यह है कि क्योंकि आजीवन कारावास से अभिप्रेत दोषसिद्ध व्यक्ति के सामान्य जीवन के अंत तक कारावास है ।

23. जैसा कि ऊपर उल्लेख किया गया है, **चेरियन** (उपरोक्त) वाले मामले में कैदी को दो या अधिक आजीवन कारावास दिए जाने की बात

---

[1] (1988) 4 एस. सी. सी. 183.

[2] (2014) 2 एस. सी. सी. 153.

अंतर्वलित नहीं है । यह मामला एक ही घटना के अनुक्रम में कारित किए गए और एक ही विचारण में एक-साथ विचारित दो भिन्न अपराधों के लिए दो अलग-अलग अवधि के दंडादेश अधिनिर्णीत किए जाने का था । फिर भी, इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आजीवन कारावास के दंडादेशों को क्रमवर्ती चलना नहीं बनाया जा सकता है और इसका स्पष्ट कारण यह है कि क्योंकि आजीवन कारावास के एक ही दंडादेश में यह सुनिश्चित होता है कि कैदी द्वारा अपना शेष जीवन कारागार में बिताया जाए । ऐसी स्थिति में, ऐसा द्वितीय दंडादेश क्रमवर्ती भोगे जाने का प्रश्न ही उद्भूत नहीं होता ।

24. **दुर्योधन राउत** (उपरोक्त) वाले मामले में कैदी को भारतीय दंड संहिता की धारा 302, 376(2)(च) और 201 के अधीन दंडनीय अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया था और हत्या के लिए मृत्यु दंडादेश तथा धारा 376(2)(च) के अधीन दंडनीय अपराध के लिए कठोर कारावास से दंडादिष्ट किया गया था । भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के अधीन अतिरिक्त रूप से एक वर्ष की अवधि का कारावास इस निदेश के साथ अधिनिर्णीत किया गया था कि दंडादेश क्रमवर्ती चलेंगे । अपील में उच्च न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में तब्दील कर दिया और शेष कारावासों से कोई छेड़छाड़ नहीं की । इसके पश्चात् याची ने इस न्यायालय में समावेदन किया और यह दलील दी कि दंडादेश साथ-साथ चलने चाहिएं न कि क्रमवर्ती, जैसा कि निचले न्यायालयों द्वारा निदेश दिया गया है । **गोपाल विनायक** (उपरोक्त) वाले मामले में इस न्यायालय के विनिश्चय और इस विषय पर कई अन्य पश्चात्वर्ती विनिश्चयों का अवलंब लेते हुए इस न्यायालय ने यह अभिनिर्धारित किया कि आजीवन कारावास के दंडादेश से अभिप्रेत है कैदी के शेष बचे जीवन के लिए कारावास । इस न्यायालय ने यह भी अभिनिर्धारित किया कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 आजीवन कारावास के दंडादेश और आवधिक दंडादेश को क्रमवर्ती चलने की अनुज्ञा नहीं देती चूंकि याची का सकल दंड दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31(2) के परंतुक में अनुबंधित 14 वर्ष की बाह्य सीमा के परे हो जाएगा । न्यायालय ने यह मत व्यक्त किया :–

> "दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 एक ही विचारण में कई अपराधों की दोषसिद्धि के मामले में दंडादेश के संबंध में है । धारा 31 की उपधारा (2) के परंतुक में यह रोक अधिकथित है कि कैदी को दिया गया सकल दंड 14 वर्ष से अधिक अवधि का तो नहीं है । इस

वास्तविकता को ध्यान में रखते हुए कि आजीवन कारावास से अभिप्रेत जीवन के संपूर्ण काल के लिए कारावास है, इसलिए एक ही विचारण में कई अपराधों के लिए दोषसिद्धि के मामले में क्रमवर्ती दंडादेशों का प्रश्न ही उद्भूत नहीं होता । इसलिए, यदि कोई व्यक्ति कई अपराधों के लिए दंडादिष्ट किया जाता है, जिनमें आजीवन कारावास भी एक है, तो धारा 31(2) का परंतुक लागू होगा और कोई क्रमवर्ती दंडादेश अधिरोपित नहीं किया जा सकता ।"

25. जब हमें इस प्रतिपादना की सत्यता के बारे में कोई संदेह नहीं है कि दो आजीवन कारावासों को क्रमवर्ती चलने का निदेश नहीं दिया जा सकता है, हम नहीं समझते कि ऐसा कहने के जो कारण हैं वह धारा 31(2) के परंतुक में स्थित हैं । दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31(2) उन परिस्थितियों के संबंध में है जहां न्यायालय क्रमवर्ती दंडादेश अधिनिर्णीत करते हुए उन कई अपराधों के लिए संकलित दंड अधिनिर्णीत करने के लिए सक्षम नहीं है, जिनके लिए दोषसिद्ध करने पर कैदी को दिया जा रहा हो । उपधारा (2) से यह दर्शित होता है कि इस उपधारा का संबंध केवल उन परिस्थितियों से है जहां न्यायालय दंडादेश अधिनिर्णीत करते हुए और उन्हें क्रमवर्ती चलने का निदेश देते हुए एक अपराध के लिए दोषसिद्धि पर संकलित दंड अधिनिर्णीत करने के लिए सक्षम नहीं है । इस परंतुक में यह भी अनुबंधित है कि उपधारा (2) के अधीन आने वाले मामलों में दंडादेश किसी भी दशा में चौदह वर्ष से अधिक नहीं होगा और संकलित दंड उस दंड की मात्रा के दुगने से अधिक नहीं होगा जिसे देने के लिए वह न्यायालय सक्षम है । अब, सेशन न्यायालय द्वारा विचारण किए जाने वाले मामलों में विधि द्वारा स्वीकृत कोई भी दंड, जिसमें मृत्यु दंड भी सम्मिलित है, देने की न्यायालय की शक्ति के बारे में कोई सीमा नहीं है । इसलिए उपधारा (2) सेशन न्यायालय द्वारा विचारण किए जाने वाले मामले पर लागू नहीं होगी और न ही उपधारा (2) सेशन न्यायालय द्वारा दिए जाने वाले दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश देने में आड़े आएगी ।

26. **दुर्योधन राउत** (उपरोक्त) वाले मामले में इस निष्कर्ष का समर्थन करने के लिए कि दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश देना अननुज्ञेय है उपधारा (2) के परंतुक का जिस सीमा तक अवलंब लिया है, उस सीमा तक यह सही विधि नहीं है, यहां तक कि यह निष्कर्ष होने पर भी कि आजीवन कारावास से अभिप्राय व्यक्ति के संपूर्ण जीवन काल के लिए कारावास है और क्रमवर्ती आजीवन दंडादेशों को अन्यथा ठोस और स्वीकार्य

होने पर भी अधिनिर्णीत नहीं किया जा सकता है ।

27. **कमलनंथा और अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में कैदियों को भारतीय दंड संहिता की अन्य धाराओं के साथ-साथ धारा 376, 302 और 354 के अधीन अपराधों के लिए दोषसिद्ध किया गया था और धारा 376 तथा 302 के अधीन अपराधों के लिए कठोर आजीवन कारावास से और अन्य अपराधों के लिए विभिन्न अवधि के कारावास से दंडादिष्ट किया गया था और यह निदेश दिया गया था कि दिए गए दंडादेश क्रमवर्ती चलेंगे । अपील के समर्थन में उठाए गए विवाद्यकों में से एक विवाद्यक यह था कि निचले न्यायालयों ने क्रमवर्ती आजीवन कारावास के दंडादेश अधिनिर्णीत करके न्यायोचित नहीं किया है । इस दलील को इस न्यायालय की दो न्यायाधीशों की न्यायपीठ द्वारा निम्नलिखित शब्दों में नामंजूर कर दिया गया था :–

> "श्री जेठमलानी की यह दलील अस्वीकार्य है कि दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 में उपबंधित 'कारावास' पद में आजीवन कारावास सम्मिलित नहीं है । 'कारावास' पद को दंड प्रक्रिया संहिता में परिभाषित नहीं किया गया है । संहिता की धारा 31 संहिता के अध्याय 3 के अंतर्गत आती है जो न्यायालयों की शक्ति के संबंध में है । संहिता की धारा 28 उच्च न्यायालय को विधि द्वारा प्राधिकृत कोई दंडादेश पारित करने के लिए सशक्त करती है । इसी प्रकार, सेशन न्यायाधीश और अपर सेशन न्यायाधीश विधि द्वारा प्राधिकृत कोई दंडादेश पारित कर सकते हैं सिवाय मृत्यु दंडादेश के, जो उच्च न्यायालय द्वारा अभिपुष्टि के अध्यधीन होगा । हमारी राय में, 'कारावास' पद में आजीवन कारावास का दंडादेश सम्मिलित है ।"

28. उपरोक्त दृष्टिकोण **चेरियन** (उपरोक्त) और **दुर्योधन राउत** (उपरोक्त) वाले मामलों में इस न्यायालय के विनिश्चय के प्रतिकूल है । इसके अतिरिक्त, **कमलनंथा** (उपरोक्त) वाले मामले में अपनाए गए दृष्टिकोण में इस मूलभूत आधार को ध्यान में नहीं रखा गया था कि आजीवन कारावास का दंडादेश अधिनिर्णीत किए जाने पर इससे यह विवक्षित होगा कि कैदी अपना शेष जीवन कारागार में बिताएगा । ऐसा होने पर उसके द्वारा एक अन्य आजीवन कारावास भोगने का प्रश्न ही नहीं है । इस सीमा तक **कमलनंथा** (उपरोक्त) वाले मामले के विनिश्चय में यह मत

---

[1] (2005) 5 एस. सी. सी. 194.

अपनाया गया है कि न्यायालय प्रत्येक अपराध के लिए उपयुक्त दंड दे सकता है जिसमें मृत्यु से दंडनीय अनेक अपराधों के लिए आजीवन कारावास के दंडादेश सम्मिलित हो सकते हैं, इस मत का कथित प्रतिपादना के साथ कोई विरोध नहीं है और न ही हो सकता है । न्यायालय विधि द्वारा मंजूर दंडादेश, जिसके अंतर्गत आजीवन कारावास का दंडादेश भी है, अधिनिर्णीत करने की अपनी शक्ति का प्रयोग कर सकता है और वास्तव में करना चाहिए । किंतु, यदि **कमलनंथा** (उपरोक्त) वाले मामले के विनिश्चय का तात्पर्य यह अभिनिर्धारित करना था कि आजीवन कारावास के दंडादेश भी क्रमवर्ती चलने के लिए निदेशित किए जा सकते हैं, तो यह विनिश्चय हमारे द्वारा ऊपर पहले ही उपदर्शित कारणों से सटीक प्रतीत नहीं होता है । हमें यह स्मरण रखना होगा कि आजीवन करावास के अनेक दंडादेश अधिनिर्णीत करने, ताकि एक के बाद दूसरा दंडादेश अधिरोपित हो जाए, और ऐसे दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश देने से पूर्णतः भिन्न है ।

29. **सनौल्हा खान** बनाम **बिहार राज्य** (उपरोक्त) वाले मामले में स्पष्ट रूप से **कमलनंथा** (उपरोक्त) वाले मामले का अनुसरण किया गया है और इसलिए ऐसा कोई नया आयाम नहीं जुड़ा है जिससे इस विषय पर किसी और चर्चा की आवश्यकता हो ।

30. हम इस तथ्य से अनभिज्ञ नहीं हैं कि इस न्यायालय ने कई अन्य मामलों में कैदी द्वारा कारित किए गए अपराध की नृशंस और पैशाचिक प्रकृति को ध्यान में रखते हुए आजीवन कारावास के दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने को निदेश दिए हैं । उदाहरण के लिए, **रविन्द्र त्रिम्बक चौथमल** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[1] वाले मामले में इस न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश का आजीवन कारावास में लघुकरण करते हुए यह निदेश दिया कि भारतीय दंड संहिता की धारा 207 के अधीन दिया गया सात वर्ष का कठोर कारावास आजीवन कारावास की सम्यक् अवधि भोगे जाने के पश्चात् चलना आरंभ होगा । इसी प्रकार, **रोनी** बनाम **महाराष्ट्र राज्य**[2] वाले मामले में भी इस न्यायालय ने मृत्यु दंडादेश को आजीवन कारावास में तब्दील करते हुए यह निदेश दिया कि अन्य सभी अपराधों के लिए दिए गए दंडादेश साथ-साथ चलेंगे, जबकि धारा 376(2)(छ) के अधीन दिया गया दंडादेश अन्य अपराधों के

---

[1] (1996) 4 एस. सी. सी. 148.

[2] (1998) 3 एस. सी. सी. 625.

लिए दिए गए दंडादेशों के चलने के पश्चात् क्रमवर्ती चलेगा । इन विनिश्चयों से यह अभिनिर्धारित किया गया समझा जा सकता है कि आजीवन कारावास भी क्रमवर्ती चल सकता है और इस सीमा तक ये विनिश्चय सही विधि अधिकथित नहीं करते हैं और उलटे जाते हैं ।

31. निष्कर्षतः, हम प्रश्न का उत्तर नकारात्मक देते हैं । हम यह अभिनिर्धारित करते हैं कि जबकि अनेक हत्याओं या आजीवन कारावास से दंडनीय अन्य अपराधों के लिए आजीवन कारावास के अनेक दंडादेश अधिनिर्णीत किए जा सकते हैं, किंतु इस प्रकार अधिनिर्णीत आजीवन कारावास के दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश नहीं दिया जा सकता है । तथापि, ऐसे दंडादेश एक-दूसरे के ऊपर अधिरोपित होंगे ताकि एक मामले में सक्षम प्राधिकारी द्वारा अनुदत्त कोई परिहार या लघुकरण कैदी को अन्य मामले में दिए गए दंडादेश के लिए स्वतः परिहार न हो सके ।

32. हम विलग होते हुए इस मामले के एक अन्य आयाम, जिसकी हमारे समक्ष दलील दी गई है पर विचार कर सकते हैं अर्थात् क्या न्यायालय आजीवन कारावास के दंडादेश और आवधिक दंडादेशों को क्रमवर्ती चलने का निदेश दे सकता है या नहीं । इस पहलू पर दलील इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए दी गई है कि अपीलार्थियों को आजीवन कारावास अधिनिर्णीत करने के अतिरिक्त विभिन्न अवधियों के कारावास के लिए भी दंडादिष्ट किया गया है । विचारण न्यायालय का निदेश, जिसकी अभिपुष्टि उच्च न्यायालय द्वारा की गई है, यह है कि उक्त आवधिक दंडादेश क्रमवर्ती चलेंगे । अपीलार्थियों की ओर से यह दलील दी गई कि निदेश का यह भाग भी वैध रूप से तर्कसंगत नहीं है क्योंकि जब एक बार कैदी को आजीवन कारावास से दंडादिष्ट कर दिया जाता है, तो उसे दिए गए आवधिक कारावास अवश्य साथ-साथ चलने चाहिएं । तथापि, हम ऐसा नहीं मानते । उस क्रम का निदेश करने की न्यायालय की शक्ति, जिसमें दंडादेश चलेंगे, दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 31 में प्रयुक्त भाषा को ध्यान में रखते हुए अचुनौतीपूर्ण है । इसलिए न्यायालय विधिसम्मत रूप से यह निदेश दे सकता है कि कैदी अपना आजीवन कारावास प्रारंभ होने से पूर्व पहले आवधिक दंडादेश भुगतेगा । ऐसा निदेश पूर्णतः विधिसम्मत और धारा 31 के अनुरूप होगा । तथापि, इसके प्रतिकूल स्थिति सही नहीं हो सकेगी क्योंकि यदि न्यायालय आजीवन कारावास को पहले आरंभ होने का निदेश देता है तो इससे आवश्यक रूप से यह विवक्षित होगा कि आवधिक दंडादेश

साथ-साथ चलेगा । क्योंकि एक बार जब कैदी अपना जीवन कारागार में बिता देता है तो उसके द्वारा कोई और दंडादेश भुगतने का प्रश्न ही नहीं है । निचले न्यायालय के निदेश में किसी उपांतरण या परिवर्तन की आवश्यकता है या नहीं, ऐसा विषय है जिससे हमारा सरोकार नहीं है । अपीलों की सुनवाई कर रही नियमित न्यायपीठ हमने पूर्वगामी पैराओं में जो कुछ कहा है उसको ध्यान में रखते हुए मामले के इस पहलू पर विचार करने के लिए स्वतंत्र होगी ।

33. तद्नुसार, निर्देश का उत्तर दिया जाता है ।

निर्देश का उत्तर दिया गया ।

जस.

[2016] 4 उम. नि. प. 187

कला उर्फ **चंद्रकला**

बनाम

राज्य मार्फत **पुलिस निरीक्षक**

12 अगस्त, 2016

न्यायमूर्ति जगदीश सिंह खेहर और न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा

साक्ष्य अधिनियम, 1872 (1872 का 1) – धारा 24 – न्यायिकेतर संस्वीकृति – मृतक की बहिन द्वारा यह साक्ष्य दिया जाना कि अभियुक्त-अपीलार्थी (मृतक की पत्नी) ने उसके समक्ष यह संस्वीकृति की थी कि उसने, उसके भतीजे और पिता ने मृतक की हत्या की है और शव नहर के पुल के नीचे रख दिया है – अभिलेख के साक्ष्य से यह दर्शित होने पर कि साक्षी और अभियुक्त-अपीलार्थी के बीच संबंध सौहार्दपूर्ण नहीं थे, इसलिए दुश्मन व्यक्ति के समक्ष संस्वीकृति करने की बात अत्यधिक असंभाव्य है और ऐसी परिस्थितियों में मृतक की बहिन के समक्ष की गई संस्वीकृति विश्वासोत्पादक नहीं होने के कारण अभियुक्त-अपीलार्थी की दोषसिद्धि उचित नहीं है ।

दंड संहिता, 1860 (1860 का 45) – धारा 300 – हत्या – पारिस्थितिक साक्ष्य – अभियुक्त-अपीलार्थी (पत्नी) द्वारा अन्य व्यक्तियों

के साथ मिलकर अभिकथित रूप से साड़ी के टुकड़े से गला घोंटकर अपने पति की हत्या किया जाना और शव को एक मोपेड में डालकर नहर के पुल के नीचे रखा जाना – पुलिस द्वारा की गई शव की बरामदगी अभियुक्तों के बताने पर न होने, साड़ी के टुकड़े और मोपेड की बरामदगियों का अपराध से संबंध साबित न होने, अभियुक्त-अपीलार्थी द्वारा मृतक की बहिन से की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति संदेहास्पद और अन्य साक्ष्य से संपुष्टि न होने के कारण अभियोजन पक्ष अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए परिस्थितियों की शृंखला को पूर्ण करने में सफल नहीं रहा है इसलिए अभियुक्त-अपीलार्थी संदेह का फायदा प्राप्त करने की हकदार है ।

अपीलार्थी ने अभिकथित रूप से अपने पिता और भतीजे के साथ मिलकर अपने पति की एक साड़ी से उसका गला घोंटकर हत्या कर दी और उसके शव को एक नहर के पुल के नीचे रख दिया । ग्राम प्रशासनिक अधिकारी से प्राप्त इस इत्तिला के आधार पर शिकायत रजिस्ट्रीकृत की गई कि नहर के पुल के नीचे टाट का बना एक बोरा पड़ा हुआ है । शव अत्यधिक सड़ी अवस्था में पाया गया था, इसलिए प्रारंभ में उस व्यक्ति की शनाख्त नहीं की जा सकी । शव परीक्षा करने वाला डाक्टर मृत्यु के कारण को अभिनिश्चित करने में असमर्थ रहा क्योंकि शव अत्यधिक सड़ी अवस्था में था और उसके द्वारा यह राय व्यक्त की गई कि कंठिका अस्थि पर मृत्यु-पूर्व की कोई क्षति नहीं है । मृतक की बहिन (अभि. सा. 4) ने यह कथन किया कि अपीलार्थी ने उसके समक्ष यह संस्वीकृति की थी मृतक की हत्या अभियुक्तों ने की है । विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी और उसके पिता को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 201 के अधीन अपराध कारित करने के लिए दोषसिद्ध और दंडादिष्ट किया । उच्च न्यायालय के समक्ष की गई अपील अभियुक्त के पिता की बाबत तो मंजूर की गई किंतु अपीलार्थी की दोषसिद्धि और दंडादेश की अभिपुष्टि की गई । अपीलार्थी द्वारा व्यथित होकर उच्चतम न्यायालय में अपील फाइल की गई । उच्चतम न्यायालय द्वारा अपील मंजूर करते हुए,

अभिनिर्धारित – इस मामले की परिस्थितियों में, सुशीला, अभि. सा. 4 से की गई संस्वीकृति विश्वासोत्पादक नहीं है । उसके अभियुक्त के साथ अच्छे संबंध नहीं थे और अभिलेख के अन्य साक्ष्य द्वारा इसकी संपुष्टि नहीं होती है, इसलिए इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इस संस्वीकृति

के आधार पर कार्यवाही करना सुरक्षित नहीं होगा । पुलिस से की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति जानकारी के अनुसरण में की गई केवल मोपेड तथा नाइलोन की साड़ी के टुकड़े की बरामदगियों की बाबत ग्राह्य है और इन वस्तुओं का अपराध से संबद्ध होना साबित नहीं किया गया है । यद्यपि अभियोजन पक्ष ने यह अभिकथन किया है कि प्रकासम तथा अपीलार्थी द्वारा बजाज एम-80 यान मृतक का शव ले जाने के लिए प्रयुक्त किया गया था और उन्हें दो साक्षियों द्वारा नहर की ओर जाते हुए देखा था । किंतु अभियोजन पक्ष द्वारा उक्त साक्षियों की न्यायालय में परीक्षा नहीं कराई गई, जिसके कारण उन्हें ही ज्ञात हैं । इस प्रकार, अभियोजन पक्ष यह सिद्ध करने में असफल रहा है कि प्रश्नगत यान मृतक के शव को ले जाने के लिए प्रयुक्त किया गया था और अभिकथित अनुसार शव इस यान से ले जाया गया था । यान इसके स्वामी से बरामद किया गया था और उस पर कोई रक्त का धब्बा नहीं था । यह यान अपीलार्थी के कब्जे में नहीं था और गैस एजेंसी से, जहां यह अनुमित रूप से होना चाहिए था, बरामद किया गया था । मात्र यह तथ्य कि यान प्रकासम द्वारा रसोई गैस के वितरण के लिए प्रयुक्त किया जाता था, ऐसी परिस्थिति नहीं हो सकती है जिससे कि अपीलार्थी को दोषी ठहराया जा सके । यह एक भली-भांति ज्ञात तथ्य है कि प्रकासम द्वारा यान का प्रयोग रसोई गैस के वितरण के लिए किया जाता था । प्रश्नगत अपराध में इस यान के प्रयोग और इसकी बरामदगी जो अपीलार्थी के कब्जे से नहीं हुई थी, की बात साबित नहीं की गई है और इसे अपीलार्थी को दोषी ठहराने के लिए एक परिस्थिति के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है । अब नाइलोन की साड़ी के टुकड़े की बरामदगी पर आते हैं । शव परीक्षा करने वाले शल्य-चिकित्सक डा. शिवकुमार, अभि. सा. 20 के कथन से यह उपदर्शित होता है कि मृतक का शव सड़ गया था । रासायनिक परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार विष नहीं पाया गया था । गले पर मृत्यु-पूर्व कारित कोई घाव नहीं था । क्योंकि मृतक का शव पूरी तरह सड़ गया था, इसलिए डाक्टर, अभि. सा. 20 द्वारा मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में मृत्यु का कारण उल्लिखित नहीं किया गया था । पुलिस निरीक्षक द्वारा उससे मृत्यु के कारण के संबंध में पूछने पर उसने यह उत्तर दिया कि चूंकि शव सड़ गया है इसलिए वह कारण बताने में असमर्थ है, इस प्रकार मृत्यु का कारण सिद्ध नहीं हुआ है । शव परीक्षा रिपोर्ट में कोई बाह्य या आंतरिक क्षति का उल्लेख नहीं किया गया है । अतः अभियोजन पक्ष यह सिद्ध नहीं कर सका है कि मृतक का गला घोंटकर मृत्यु कारित की गई थी और नाइलोन की साड़ी का टुकड़ा मृत्यु

कारित करने के लिए प्रयुक्त किया गया था । इसलिए नाइलोन की साड़ी के टुकड़े की बरामदगी का कोई महत्व नहीं है क्योंकि अभियोजन पक्ष इसे अपराध के कारित करने से संबद्ध नहीं कर सका है । (पैरा 8, 10 और 11)

प्रस्तुत मामले में, जो कि पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है, विशिष्ट रूप से जब शव अभियुक्त के बताने पर बरामद नहीं किया गया था, मोपेड और नाइलोन की साड़ी के टुकड़े की जो बरामदगियां की गई थीं उनका अपराध कारित करने में संबंध होना साबित नहीं होता है और वे अपराध में आलिप्त करने वाली सामग्री के रूप में साबित नहीं होती हैं । अपीलार्थी द्वारा सुशीला, अभि. सा. 4 से की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति की बात प्रथमदृष्ट्या अप्रायिक और संदेहास्पद है और अभिलेख पर के अन्य साक्ष्य द्वारा संपुष्टि नहीं होती है । अपीलार्थी के बयान के अनुसार, मृतक तारीख 16 मई, 2005 को घर से गया था, केवल इस तथ्य को उसके विरुद्ध एक परिस्थिति के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है जिससे कि उसे दोषी ठहराया जा सके । मृतक शराब पीने का आदी था और बेतहाशा धन खर्च करता था । उसकी इन बुरी आदतों के कारण उसके बहुत सारे दुश्मन हो सकते थे । मृतक ने 1,30,000/- रुपए, जो उसे करार करने पर प्राप्त हुए थे, कैसे खर्च किए, यह बात अभिलेख पर नहीं है । अभियोजन पक्ष परिस्थितियों की शृंखला को पूर्ण करने और अपीलार्थी द्वारा अपराध करने की बात को संदेह के परे साबित करने में समर्थ नहीं रहा है ताकि उसे दोषी ठहराया जा सके । अपीलार्थी के पिता को भी संदेह का फायदा दिया गया है । इसलिए साक्ष्य, जो अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया है, को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी संदेह के फायदे की हकदार है । (पैरा 13)

निर्दिष्ट निर्णय

		पैरा
[2015]	(2015) 12 एस. सी. सी. 644 : **विजय शंकर** बनाम **हरियाणा राज्य** ;	7
[2012]	(2012) 6 एस. सी. सी. 403 : **सहदेवन और एक अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	7
[2010]	(2010) 10 एस. सी. सी. 604 : **संसार चंद** बनाम **राजस्थान राज्य** ;	7

[2009]	(2009) 5 एस. सी. सी. 740 : **रमेशभाई राठोड़** बनाम **गुजरात राज्य** ;	7
[2007]	(2007) 12 एस. सी. सी. 230 : **आलोक नाथ दत्ता** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य** ;	7
[2003]	(2003) 8 एस. सी. सी. 180 : **राजस्थान राज्य** बनाम **राजा राम** ;	7
[1998]	(1998) 6 एस. सी. सी. 108 : **कविता** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	7
[1997]	(1997) 8 एस. सी. सी. 158 : **पक्कीरीसामी** बनाम **तमिलनाडु राज्य** ;	7
[1995]	(1995) 4 (सप्ली.) एस. सी. सी. 259 : **बलविन्द्र सिंह** बनाम **पंजाब राज्य** ।	7

अपीली (दांडिक) अधिकारिता : 2010 की दांडिक अपील सं. 1791.

2007 की दांडिक अपील सं. 1022 में मद्रास उच्च न्यायालय के तारीख 24 जून, 2009 के निर्णय और आदेश के विरुद्ध अपील ।

अपीलार्थी की ओर से सर्वश्री सुनील फर्नांडीज, पुनीत के. जी., (सुश्री) आस्था शर्मा और पी. रमेश

प्रत्यर्थी की ओर से श्री एम. योगेश कन्ना और सुश्री नित्या

न्यायालय का निर्णय न्यायमूर्ति अरुण मिश्रा ने दिया ।

न्या. मिश्रा – अपीलार्थी मृतक मुरुजेशन की पत्नी है । अभियोजन पक्ष ने यह अभिकथन किया कि अपीलार्थी ने अपने पिता और भतीजे के साथ मिलकर तारीख 17 मई, 2005 को एक साड़ी से उसका गला घोंटकर हत्या कर दी और उसके शव को एक नहर के पुल के नीचे रख दिया । ग्राम प्रशासनिक अधिकारी से तारीख 20 मई, 2005 को प्राप्त इस इत्तिला के आधार पर शिकायत रजिस्ट्रीकृत की गई कि संधियापुरम के नजदीक एलबीपी नहर दक्षिण के नीचे टाट का बना एक बोरा पड़ा हुआ है । शव अत्यधिक सड़ी अवस्था में पाया गया था, इसलिए प्रारंभ में उस व्यक्ति की शनाख्त नहीं की जा सकी । डा. शिवकुमार, अभि. सा. 20 ने

तारीख 21 मई, 2005 को शव परीक्षा की । डाक्टर मृत्यु के कारण को अभिनिश्चित करने में असमर्थ था क्योंकि शव अत्यधिक सड़ी अवस्था में था और उसके द्वारा यह राय व्यक्त की गई कि कंठिका अस्थि पर मृत्यु-पूर्व की कोई क्षति नहीं है । मृतक की बहिन सुशीला, अभि. सा. 4 ने तारीख 31 मई, 2005 को एक शिकायत दर्ज कराई कि उसके भाई मुरुजेशन की हत्या उसकी पत्नी, उसके ससुर और पत्नी के भतीजे ने की है ।

2. विचारण न्यायालय ने अपीलार्थी और उसके पिता को भारतीय दंड संहिता की धारा 34 के साथ पठित धारा 302 और 201 के अधीन अपराध कारित करने के लिए दोषसिद्ध किया और उन्हें आजीवन कारावास भोगने का दंडादेश दिया तथा 1,000/- रुपए का जुर्माना अधिरोपित किया और जुर्माने के संदाय में व्यतिक्रम करने पर छह माह का साधारण कारावास भोगने और भारतीय दंड संहिता की धारा 201 के अधीन एक वर्ष का साधारण कारावास भोगने का भी दंडादेश दिया । उच्च न्यायालय के समक्ष की गई अपील अभियुक्त के पिता की बाबत तो मंजूर की गई किंतु अपीलार्थी की दोषसिद्धि और दंडादेश की अभिपुष्टि की गई । इससे व्यथित होकर यह अपील फाइल की गई ।

3. अपीलार्थी की ओर से यह दलील दी गई कि परिस्थितियों की शृंखला पूर्ण नहीं है जिससे कि उसे दोषी ठहराया जा सके । अपीलार्थी द्वारा अभि. सा. 4 से की गई संस्वीकृति की बात स्वीकार करने योग्य नहीं है और पुलिस से की गई संस्वीकृति साक्ष्य में अग्राह्य है । अपीलार्थी के लिए सुशीला, अभि. सा. 4 से संस्वीकृति करने का कोई कारण नहीं था क्योंकि अपीलार्थी के उसके साथ अच्छे संबंध नहीं थे । शव की बरामदगी अपीलार्थी के बताने पर नहीं की गई थी तथा मोटर बाइक और नाइलोन की साड़ी की बरामदगी का कोई महत्व नहीं है । अभियोजन पक्ष तात्विक साक्षियों की परीक्षा कराने में असफल रहा है । यह दलील दी गई कि अपीलार्थी ने दंड प्रक्रिया संहिता की धारा 313 के अधीन यह उल्लेख किया था कि गांव में मुनादी करने पर जब उसे पता चला कि नहर के पुल के नीचे एक शव पाया गया है तो वह तारीख 23 मई, 2005 को मृतक के फोटो के साथ पुलिस थाने गई थी । यह दलील दी गई कि अपीलार्थी निर्दोष है और उसे दोषमुक्त किया जाना चाहिए ।

4. तमिलनाडु राज्य की ओर से हाजिर होने वाले विद्वान् काउंसेल द्वारा यह दलील दी गई कि अभियुक्त और मृतक का प्रायः झगड़ा होता रहता था । मृतक शराब पीने और जुआ खेलने का आदी था । जब

अभियुक्त व्यक्तियों को मृतक द्वारा किए गए विक्रय करार का पता चला तो उन्होंने उससे छुटकारा पाने का विनिश्चय किया और उसकी हत्या कर दी तथा शव नहर के पुल के नीचे फेंक दिया । मृतक अंतिम बार अभियुक्त के साथ देखा गया था । यह दलील दी गई कि अपीलार्थी द्वारा अभि. सा. 4 से की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति और मोटर बाइक तथा नाइलोन की साड़ी, जो हत्या करने के लिए प्रयुक्त की गई थी, की बरामदगी से यह दर्शित होता है कि परिस्थितियों की शृंखला पूर्ण है । अपीलार्थी ने तारीख 16 मई, 2005 से 31 मई, 2005 तक मृतक के गायब हो जाने के तथ्य को पुलिस को नहीं बताया और मृतक की वस्तुओं की शनाख्त उसने नहीं की थी । वस्तुओं अर्थात् चप्पल, कमीज आदि द्वारा मृतक की शनाख्त सुशीला, अभि. सा. 4 द्वारा की गई थी । इसलिए यह दलील दी गई कि इस अपील में विचारण न्यायालय द्वारा की गई दोषसिद्धि और उच्च न्यायालय द्वारा की गई उसकी अभिपुष्टि में किसी हस्तक्षेप की आवश्यकता नहीं है ।

5. यह मामला पारिस्थितिक साक्ष्य और मृतका की बहिन सुशीला, अभि. सा. 4 से अपीलार्थी द्वारा की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति पर निर्भर है । यह घिसी-पिटी विधि है कि अभियुक्त को दोषी ठहराने के लिए परिस्थितियों की शृंखला पूर्ण होनी चाहिए ।

6. प्रथमतः, हम यह परीक्षा करेंगे कि क्या न्यायिकेतर संस्वीकृति, जो कि एक कमजोर साक्ष्य होता है, विश्वासोत्पादक है । सुशीला, अभि. सा. 4 ने यह कथन किया कि मुरुजेसन का अपीलार्थी के साथ विवाह घटना से 14 वर्ष पूर्व हुआ था । वह अपने भाई मुरुजेसन की तलाश में मृतक के घर आई । मुरुजेसन ने तारीख 12 मई, 2005 को उसे बताया था कि अपीलार्थी ने उसे जान से मारने की धमकी दी है क्योंकि वह शराब पीने का आदी है । जब इस साक्षी को 15 दिन तक मृतक का फोन नहीं आया तो वह उसके गांव गई । पूछताछ करने पर अपीलार्थी द्वारा उसे यह बताया गया कि उसने, उसके भतीजे प्रकासम और उसके पिता ने मृतक की हत्या कर दी है और उसके शव को पुल के नीचे फेंक दिया है । सुशीला, अभि. सा. 4 ने यह भी कथन किया कि अपीलार्थी ने उसके पैर छुए और यह कहा कि वह अपने पिता की संपत्ति दोनों बालकों को दे देगी और वह पुलिस को सूचित न करे । उसके पश्चात् अभि. सा. 4 उसी दिन पुलिस थाने गई और शिकायत, प्रदर्श पी-2 दर्ज की । पुलिस ने उसे फोटो, कमीज और चप्पल दिखाई और उसे उनकी शनाख्त करने के लिए कहा । उसने शनाख्त की कि वे वस्तुएं उसके भाई की हैं । उसने यह भी कथन

किया कि पांच दिन के पश्चात् मृतक का फोटो लेकर पुलिस थाने गई थी । इस साक्षी ने प्रतिपरीक्षा में भी यह कथन किया कि उसने मृतक द्वारा निष्पादित भूमि के विक्रय करार पर हस्ताक्षर किए थे । यह स्पष्ट है कि अभियुक्त के सुशीला, अभि. सा. 4 के साथ अच्छे संबंध नहीं थे । ऐसे विद्वेषी व्यक्ति से संस्वीकृति करना बहुत ही असंभाव्य बात है । जब यह साक्षी मृतक की तलाश में अभियुक्त के घर गई थी, तब यह बात बहुत ही असंभाव्य है कि उससे इतनी आसानी से संस्वीकृति कथन किया गया होगा । यह बात नहीं है कि अपीलार्थी संस्वीकृति करने के लिए अभि. सा. 4 के घर गई थी । दूसरी ओर, मृतक के ठोर-ठिकाने के बारे में सुशीला, अभि. सा. 4 से पूछताछ मृतक की पुत्री द्वारा की गई थी, जिसका यह अर्थ है कि मृतक के ठोर-ठिकाने की जानकारी उसकी पुत्री को भी नहीं थी । यदि मृतक की हत्या घर में की गई होती तो शायद पुत्री को अभियुक्त द्वारा कारित किए गए अपराध के बारे में ज्ञात होता ।

7. **सहदेवन और एक अन्य** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया कि न्यायिकेतर संस्वीकृति कमजोर साक्ष्य होता है । न्यायालय को इसके आधार पर कार्यवाही करने से पूर्व यह सुनिश्चित कर लेना चाहिए कि यह विश्वासोत्पादक है और इसकी संपुष्टि अन्य अभियोजन साक्ष्य द्वारा होती है । **बलविन्द्र सिंह** बनाम **पंजाब राज्य**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया कि न्यायिकेतर संस्वीकृति को स्वीकार करने से पूर्व अत्यधिक सावधानी बरतने की आवश्यकता होती है । इसको परिवेष्टित करने वाली कोई संदिग्ध परिस्थिति नहीं होनी चाहिए । **पक्कीरीसामी** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[3] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया कि न्यायिकेतर संस्वीकृति पर किसी प्रकार का अवलंब लेने के लिए उसकी स्वतंत्र साक्ष्य से संपुष्टि की जानी चाहिए । **कविता** बनाम **तमिलनाडु राज्य**[4] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया कि इसकी विश्वसनीयता उस साक्षी की सत्यता पर निर्भर करती है जिससे यह संस्वीकृति की जाती है । इसी प्रकार का मत **राजस्थान राज्य** बनाम **राजा राम**[5] वाले मामले में व्यक्त किया गया, जिसमें इस न्यायालय ने यह भी

---

[1] (2012) 6 एस. सी. सी. 403.
[2] (1995) 4 (सप्ली.) एस. सी. सी. 259.
[3] (1997) 8 एस. सी. सी. 158.
[4] (1998) 6 एस. सी. सी. 108.
[5] (2003) 8 एस. सी. सी. 180.

मत व्यक्त किया कि साक्षी अवश्य निष्पक्ष होना चाहिए और दूर-दूर तक भी अभियुक्त से विद्वेष न हो । **आलोक नाथ दत्ता** बनाम **पश्चिमी बंगाल राज्य**[1] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया कि संस्वीकृति की मुख्य विशेषताओं का सत्यापन किया जाना चाहिए । **संसार चंद** बनाम **राजस्थान राज्य**[2] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया कि न्यायिकेतर संस्वीकृति की संपुष्टि अभिलेख पर की किसी अन्य सामग्री से होनी चाहिए । **रमेशभाई राठोड़** बनाम **गुजरात राज्य**[3] वाले मामले में यह मत व्यक्त किया गया कि मुकरी हुई संस्वीकृति के मामले में न्यायालय के लिए इसका अवलंब लेना असुरक्षित है । **विजय शंकर** बनाम **हरियाणा राज्य**[4] वाले मामले में इस न्यायालय ने **सहदेवन** (उपरोक्त) वाले मामले का अनुसरण किया ।

8. इस मामले की परिस्थितियों में, सुशीला, अभि. सा. 4 से की गई संस्वीकृति विश्वासोत्पादक नहीं है । उसके अभियुक्त के साथ अच्छे संबंध नहीं थे और अभिलेख के अन्य साक्ष्य द्वारा इसकी संपुष्टि नहीं होती है, इसलिए इस मामले के तथ्यों और परिस्थितियों में इस संस्वीकृति के आधार पर कार्यवाही करना सुरक्षित नहीं होगा । पुलिस से की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति, जानकारी के अनुसरण में की गई केवल मोपेड तथा नाइलोन की साड़ी के टुकड़े की बरामदगियों की बाबत ग्राह्य है और इन वस्तुओं का अपराध से संबद्ध होना साबित नहीं किया गया है ।

9. प्रथमतः, हम अपीलार्थी के बताने पर बजाज मोपेड की बरामदगी पर विचार करेंगे । सौंद्रराजन, अभि. सा. 12 द्वारा यह अभिसाक्ष्य दिया गया कि वह एक रसोई गैस एजेंसी चला रहा था और भगौड़ा अभियुक्त प्रकासम बजाज एम-80 मोटरसाइकिल गैस सिलेंडरों का परिदान करने के लिए प्रयुक्त कर रहा था । अपीलार्थी-अभियुक्त को पुलिस द्वारा पहले उसके निवास पर लाया गया था और बाद में दुकान पर ले जाया गया था तथा पुलिस द्वारा यान, रजिस्ट्रीकरण प्रमाणपत्र सहित, उसकी दुकान से बरामद किया गया था । प्रकासम ने उससे एक सप्ताह की छुट्टी ली थी और उसके पश्चात् वह लौटकर नहीं आया ।

---

[1] (2007) 12 एस. सी. सी. 230.
[2] (2010) 10 एस. सी. सी. 604.
[3] (2009) 5 एस. सी. सी. 740.
[4] (2015) 12 एस. सी. सी. 644.

यद्यपि अभियोजन पक्ष ने यह अभिकथन किया है कि प्रकासम तथा अपीलार्थी द्वारा बजाज एम-80 यान मृतक का शव ले जाने के लिए प्रयुक्त किया गया था और उन्हें दो साक्षियों द्वारा नहर की ओर जाते हुए देखा था । किंतु अभियोजन पक्ष द्वारा उक्त साक्षियों की न्यायालय में परीक्षा नहीं कराई गई, जिसके कारण उन्हें ही ज्ञात हैं । इस प्रकार, अभियोजन पक्ष यह सिद्ध करने में असफल रहा है कि प्रश्नगत यान मृतक के शव को ले जाने के लिए प्रयुक्त किया गया था और अभिकथित अनुसार शव इस यान से ले जाया गया था । यान इसके स्वामी से बरामद किया गया था और उस पर कोई रक्त का धब्बा नहीं था । यह यान अपीलार्थी के कब्जे में नहीं था और गैस एजेंसी से, जहां यह अनुमित रूप से होना चाहिए था, बरामद किया गया था । मात्र यह तथ्य कि यान प्रकासम द्वारा रसोई गैस के वितरण के लिए प्रयुक्त किया जाता था, ऐसी परिस्थिति नहीं हो सकती है जिससे कि अपीलार्थी को दोषी ठहराया जा सके । यह एक भली-भांति ज्ञात तथ्य है कि प्रकासम द्वारा यान का प्रयोग रसोई गैस के वितरण के लिए किया जाता था । प्रश्नगत अपराध में इस यान के प्रयोग और इसकी बरामदगी जो अपीलार्थी के कब्जे से नहीं हुई थी, की बात साबित नहीं की गई है और इसे अपीलार्थी को दोषी ठहराने के लिए एक परिस्थिति के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है ।

10. अब नाइलोन की साड़ी के टुकड़े की बरामदगी पर आते हैं । शव परीक्षा करने वाले सर्जन डा. शिवकुमार, अभि. सा. 20 के कथन से यह उपदर्शित होता है कि मृतक का शव सड़ गया था । रासायनिक परीक्षण रिपोर्ट के अनुसार विष नहीं पाया गया था । गले पर मृत्यु पूर्व कारित कोई घाव नहीं था । क्योंकि मृतक का शव पूरी तरह सड़ गया था, इसलिए डाक्टर, अभि. सा. 20 द्वारा मरणोत्तर परीक्षा रिपोर्ट में मृत्यु का कारण उल्लिखित नहीं किया गया था । पुलिस निरीक्षक द्वारा उससे मृत्यु के कारण के संबंध में पूछने पर उसने यह उत्तर दिया कि चूंकि शव सड़ गया है इसलिए वह कारण बताने में असमर्थ है, इस प्रकार मृत्यु का कारण सिद्ध नहीं हुआ है । शव परीक्षा रिपोर्ट में कोई बाह्य या आंतरिक क्षति का उल्लेख नहीं किया गया है । अतः अभियोजन पक्ष यह सिद्ध नहीं कर सका है कि मृतक का गला घोंटकर मृत्यु कारित की गई थी और नाइलोन की साड़ी का टुकड़ा मृत्यु कारित करने के लिए प्रयुक्त किया गया था । इसलिए नाइलोन की साड़ी के टुकड़े की बरामदगी का कोई महत्व नहीं है क्योंकि अभियोजन पक्ष इसे अपराध के कारित करने से संबद्ध नहीं कर सका है ।

11. अपीलार्थी तारीख 16 मई, 2005 से 31 मई, 2005 तक चुप नहीं थी । उसने धारा 313 के अधीन अपने कथन में स्पष्ट रूप से यह कहा कि वह तारीख 23 मई, 2005 को मृतक के फोटो के साथ पुलिस थाने गई थी और उसने यह भी कथन किया कि मृतक प्रायिक तौर पर 2 से 5 दिनों के लिए बाहर जाता रहता था । इस कथन से अपीलार्थी का आचरण स्पष्ट होता है और विशेष ज्ञान होने के बारे में, जो उसके लिए साक्ष्य अधिनियम की धारा 106 की परिधि के अंतर्गत स्पष्ट करना अपेक्षित था, उस पर इससे अधिक दायित्व नहीं डाला जा सकता है । मामले में प्रस्तुत किए गए साक्ष्य को देखते हुए उसे किसी अन्य तथ्य का ज्ञान होना नहीं माना जा सकता है । इस प्रकार, धारा 106 में अंतर्विष्ट उपबंधों पर आधारित दलील से प्रत्यर्थी को कोई सहायता नहीं मिलती है ।

12. अभियोजन पक्ष ने ऐसा साक्ष्य भी प्रस्तुत नहीं किया कि कभी अपीलार्थी से मृतक की वस्तुओं की शनाख्त करने की अपेक्षा की गई हो । अभिलेख पर यह उपदर्शित करने के लिए कुछ नहीं है कि उसे शनाख्त करने के लिए वे वस्तुएं दिखाई गई हों और उसने उनकी शनाख्त करने से इनकार किया हो । सुशीला, अभि. सा. 4 के बयान में इस बारे में विरोधाभास है कि उसने कब मृतक की शनाख्त की थी । एक ओर तो इस साक्षी ने यह कथन किया कि उसने शनाख्त तारीख 31 मई, 2005 को की थी, दूसरी ओर उसने यह कथन किया कि वह उसके पांच दिन पश्चात् मृतक के फोटो के साथ पुलिस थाने गई थी ।

13. प्रस्तुत मामले में, जो कि पारिस्थितिक साक्ष्य पर आधारित है, विशिष्ट रूप से जब शव अभियुक्त के बताने पर बरामद नहीं किया गया था, मोपेड और नाइलोन की साड़ी के टुकड़े की जो बरामदगियां की गईं थीं उनका अपराध कारित करने में संबंध होना साबित नहीं होता है और वे अपराध में आलिप्त करने वाली सामग्री के रूप में साबित नहीं होती हैं । अपीलार्थी द्वारा सुशीला, अभि. सा. 4 से की गई न्यायिकेतर संस्वीकृति की बात प्रथमदृष्ट्या अप्रायिक और संदेहास्पद है और अभिलेख पर के अन्य साक्ष्य द्वारा संपुष्टि नहीं होती है । अपीलार्थी के बयान के अनुसार, मृतक तारीख 16 मई, 2005 को घर से गया था, केवल इस तथ्य को उसके विरुद्ध एक परिस्थिति के रूप में प्रयुक्त नहीं किया जा सकता है जिससे कि उसे दोषी ठहराया जा सके । मृतक शराब पीने का आदी था और बेतहाशा धन खर्च करता था । उसकी इन बुरी आदतों के कारण उसके बहुत सारे दुश्मन हो सकते थे । मृतक ने 1,30,000/- रुपए, जो उसे

करार करने पर प्राप्त हुए थे, कैसे खर्च किए, यह बात अभिलेख पर नहीं है । अभियोजन पक्ष परिस्थितियों की शृंखला को पूर्ण करने और अपीलार्थी द्वारा अपराध करने की बात को संदेह के परे साबित करने में समर्थ नहीं रहा है ताकि उसे दोषी ठहराया जा सके । अपीलार्थी के पिता को भी संदेह का फायदा दिया गया है । इसलिए साक्ष्य, जो अभियोजन पक्ष द्वारा प्रस्तुत किया गया है, को ध्यान में रखते हुए अपीलार्थी संदेह के फायदे की हकदार है ।

14. परिणामतः, यह अपील मंजूर की जाती है । अपीलार्थी को संदेह का फायदा देते हुए दोषमुक्त किया जाता है । निचले न्यायालयों के दोषसिद्धि और दंडादेश के निर्णयों और आदेशों को अभिखंडित और अपास्त किया जाता है ।

अपील मंजूर की गई ।

जस.

घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005

(2005 का अधिनियम संख्यांक 43)

[13 सितम्बर, 2005]

ऐसी महिलाओं के, जो कुटुंब के भीतर होने वाली किसी प्रकार की हिंसा से पीड़ित हैं, संविधान के अधीन प्रत्याभूत अधिकारों के अधिक प्रभावी संरक्षण और उससे संबंधित या उसके आनुषंगिक विषयों का उपबंध करने के लिए

अधिनियम

भारत गणराज्य के छप्पनवें वर्ष में संसद् द्वारा निम्नलिखित रूप में यह अधिनियमित हो :–

अध्याय 1

प्रारंभिक

1. **संक्षिप्त नाम, विस्तार और प्रारंभ** – (1) इस अधिनियम का संक्षिप्त नाम घरेलू हिंसा से महिला संरक्षण अधिनियम, 2005 है ।

(2) इसका विस्तार जम्मू-कश्मीर राज्य के सिवाय संपूर्ण भारत पर है ।

(3) यह उस तारीख* को प्रवृत्त होगा, जिसे केंद्रीय सरकार, राजपत्र में अधिसूचना द्वारा, नियत करे ।

2. **परिभाषाएं** – इस अधिनियम में जब तक कि संदर्भ से अन्यथा अपेक्षित न हो,–

(क) "व्यथित व्यक्ति" से कोई ऐसी महिला अभिप्रेत है जो प्रत्यर्थी की घरेलू नातेदारी में है या रही है और जिसका अभिकथन है कि वह प्रत्यर्थी द्वारा किसी घरेलू हिंसा का शिकार रही है ;

(ख) "बालक" से कोई ऐसा व्यक्ति अभिप्रेत है जो अठारह वर्ष से कम आयु का है और जिसके अंतर्गत कोई दत्तक, सौतेला या पोषित बालक है ;

(ग) "प्रतिकर आदेश" से, धारा 22 के निबंधनों के अनुसार अनुदत्त कोई आदेश अभिप्रेत है ;

---

* 17-10-2006 से प्रवृत्त ।

(घ) "अभिरक्षा आदेश" से धारा 21 के निबंधनों के अनुसार अनुदत्त कोई आदेश अभिप्रेत है ;

(ङ) "घरेलू घटना रिपोर्ट" से ऐसी रिपोर्ट अभिप्रेत है जो, किसी व्यथित व्यक्ति से घरेलू हिंसा की किसी शिकायत की प्राप्ति पर, विहित प्ररूप में तैयार की गई हो ;

(च) "घरेलू नातेदारी" से ऐसे दो व्यक्तियों के बीच नातेदारी अभिप्रेत है, जो साझी गृहस्थी में एक साथ रहते हैं या किसी समय एक साथ रह चुके हैं, जब वे, समरक्तता, विवाह द्वारा या विवाह, दत्तक ग्रहण की प्रकृति की किसी नातेदारी द्वारा संबंधित हैं या एक अविभक्त कुटुंब के रूप में एक साथ रहने वाले कुटुंब के सदस्य हैं ;

(छ) "घरेलू हिंसा" का वही अर्थ है जो उसका धारा 3 में है ;

(ज) "दहेज" का वही अर्थ होगा, जो दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) की धारा 2 में है ;

(झ) "मजिस्ट्रेट" से उस क्षेत्र पर, जिसमें व्यथित व्यक्ति अस्थायी रूप से या अन्यथा निवास करता है या जिसमें प्रत्यर्थी निवास करता है या जिसमें घरेलू हिंसा का होना अभिकथित किया गया है, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अधीन अधिकारिता का प्रयोग करने वाला, यथास्थिति, प्रथम वर्ग न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट अभिप्रेत है ;

(ञ) "चिकित्सीय सुविधा" से ऐसी सुविधा अभिप्रेत है जो इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए, राज्य सरकार द्वारा चिकित्सीय सुविधा अधिसूचित की जाए ;

(ट) "धनीय अनुतोष" से ऐसा प्रतिकर अभिप्रेत है जिसके लिए कोई मजिस्ट्रेट, घरेलू हिंसा के परिणामस्वरूप व्यथित व्यक्ति द्वारा उपगत व्ययों और सहन की गई हानियों को पूरा करने के लिए, इस अधिनियम के अधीन किसी अनुतोष की ईप्सा करने वाले आवेदन की सुनवाई के दौरान, किसी प्रक्रम पर, व्यथित व्यक्ति को संदाय करने के लिए, प्रत्यर्थी को आदेश दे सकेगा ;

(ठ) "अधिसूचना" से राजपत्र में प्रकाशित कोई अधिसूचना अभिप्रेत है और "अधिसूचित" पद का तद्नुसार अर्थ लगाया जाएगा ;

(ड) "विहित" से इस अधिनियम के अधीन बनाए गए नियमों द्वारा विहित अभिप्रेत है ;

(ढ) "संरक्षण अधिकारी" से धारा 8 की उपधारा (1) के अधीन राज्य सरकार द्वारा नियुक्त कोई अधिकारी अभिप्रेत है ;

(ण) "संरक्षण आदेश" से धारा 18 के निबंधनों के अनुसार किया गया कोई आदेश, अभिप्रेत है ;

(त) "निवास आदेश" से धारा 19 की उपधारा (1) के निबंधनों के अनुसार दिया गया कोई आदेश अभिप्रेत है ;

(थ) "प्रत्यर्थी" से कोई वयस्क पुरुष अभिप्रेत है जो व्यथित व्यक्ति की घरेलू नातेदारी में है या रहा है और जिसके विरुद्ध व्यथित व्यक्ति ने, इस अधिनियम के अधीन कोई अनुतोष चाहा है :

परंतु यह कि कोई व्यथित पत्नी या विवाह की प्रकृति की किसी नातेदारी में रहने वाली कोई महिला भी पति या पुरुष भागीदार के किसी नातेदार के विरुद्ध शिकायत फाइल कर सकेगी ;

(द) "सेवा प्रदाता" से धारा 10 की उपधारा (1) के अधीन रजिस्ट्रीकृत कोई अस्तित्व अभिप्रेत है ;

(ध) "साझी गृहस्थी" से ऐसी गृहस्थी अभिप्रेत है, जहां व्यथित व्यक्ति रहता है या किसी घरेलू नातेदारी में या तो अकेले या प्रत्यर्थी के साथ किसी प्रक्रम पर रह चुका है, और जिसके अंतर्गत ऐसी गृहस्थी भी है जो चाहे उस व्यथित व्यक्ति और प्रत्यर्थी के संयुक्ततः स्वामित्व या किरायेदारी में है, या उनमें से किसी के स्वामित्व या किरायेदारी में है, जिसके संबंध में या तो व्यथित व्यक्ति या प्रत्यर्थी या दोनों संयुक्त रूप से या अकेले, कोई अधिकार, हक, हित या साम्या रखते हैं और जिसके अंतर्गत ऐसी गृहस्थी भी है जो ऐसे अविभक्त कुटुंब का अंग हो सकती है जिसका प्रत्यर्थी, इस बात पर ध्यान दिए बिना कि प्रत्यर्थी या व्यथित व्यक्ति का उस गृहस्थी में कोई अधिकार, हक या हित है, एक सदस्य है ;

(न) "आश्रय गृह" से ऐसा कोई आश्रय गृह अभिप्रेत है, जिसको इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए राज्य सरकार द्वारा एक आश्रय गृह के रूप में, अधिसूचित किया जाए ।

अध्याय 2

घरेलू हिंसा

3. **घरेलू हिंसा की परिभाषा** – इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए

प्रत्यर्थी का कोई कार्य, लोप या किसी कार्य का करना या आचरण, घरेलू हिंसा गठित करेगा यदि वह, –

(क) व्यथित व्यक्ति के स्वास्थ्य, सुरक्षा, जीवन, अंग की या चाहे उसकी मानसिक या शारीरिक भलाई की अपहानि करता है, या उसे कोई क्षति पहुंचाता है या उसे संकटापन्न करता है या उसकी ऐसा करने की प्रवृत्ति है और जिसके अंतर्गत शारीरिक दुरुपयोग, लैंगिक दुरुपयोग, मौखिक और भावनात्मक दुरुपयोग और आर्थिक दुरुपयोग कारित करना भी है ; या

(ख) किसी दहेज या अन्य संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति के लिए किसी विधिविरुद्ध मांग की पूर्ति के लिए उसे या उससे संबंधित किसी अन्य व्यक्ति को प्रपीड़ित करने की दृष्टि से व्यथित व्यक्ति का उत्पीड़न करता है या उसकी अपहानि करता है या उसे क्षति पहुंचाता है या संकटापन्न करता ; या

(ग) खंड (क) या खंड (ख) में वर्णित किसी आचरण द्वारा व्यथित व्यक्ति या उससे संबंधित किसी व्यक्ति पर धमकी का प्रभाव रखता है ; या

(घ) व्यथित व्यक्ति को, अन्यथा क्षति पहुंचाता है या उत्पीड़न कारित करता है, चाहे वह शारीरिक हो या मानसिक ।

स्पष्टीकरण 1 – इस धारा के प्रयोजनों के लिए –

(i) "शारीरिक दुरुपयोग" से ऐसा कोई कार्य या आचरण अभिप्रेत है जो ऐसी प्रकृति का है, जो व्यथित व्यक्ति को शारीरिक पीड़ा, अपहानि या उसके जीवन, अंग या स्वास्थ्य को खतरा कारित करता है या उससे उसके स्वास्थ्य या विकास का ह्रास होता है और इसके अंतर्गत हमला, आपराधिक अभित्रास और आपराधिक बल भी है;

(ii) "लैंगिक दुरुपयोग" से लैंगिक प्रकृति का कोई आचरण अभिप्रेत है, जो महिला की गरिमा का दुरुपयोग, अपमान, तिरस्कार करता है या उसका अन्यथा अतिक्रमण करता है ;

(iii) "मौखिक और भावनात्मक दुरुपयोग" के अन्तर्गत निम्नलिखित हैं, –

(क) अपमान, उपहास, तिरस्कार, गाली और विशेष रूप

से संतान या नर बालक के न होने के संबंध में अपमान या उपहास; और

(ख) किसी ऐसे व्यक्ति को शारीरिक पीड़ा कारित करने की लगातार धमकियां देना, जिसमें व्यथित व्यक्ति हितबद्ध है ;

(iv) "आर्थिक दुरुपयोग" के अंतर्गत निम्नलिखित हैं :–

(क) ऐसे सभी या किन्हीं आर्थिक या वित्तीय संसाधनों, जिनके लिए व्यथित व्यक्ति किसी विधि या रूढ़ि के अधीन हकदार है, चाहे वे किसी न्यायालय के किसी आदेश के अधीन या अन्यथा संदेय हों या जिनकी व्यथित व्यक्ति, किसी आवश्यकता के लिए, जिसके अंतर्गत व्यथित व्यक्ति और उसके बालकों, यदि कोई हों, के लिए घरेलू आवश्यकताएं भी हैं, अपेक्षा करता है, किन्तु जो उन तक सीमित नहीं हैं, स्त्रीधन, व्यथित व्यक्ति के संयुक्त रूप से या पृथक्त: स्वामित्वाधीन संपत्ति, साझी गृहस्थी और उसके रखरखाव से संबंधित भाटक का संदाय, से वंचित करना ;

(ख) गृहस्थी की चीजबस्त का व्ययन, आस्तियों का चाहे, वे जंगम हों या स्थावर, मूल्यवान वस्तुओं, शेयरों, प्रतिभूतियों, बंधपत्रों और उसके सदृश या अन्य संपत्ति का, जिसमें व्यथित व्यक्ति कोई हित रखता है या घरेलू नातेदारी के आधार पर उसके प्रयोग के लिए हकदार है या जिसकी व्यथित व्यक्ति या उसकी संतानों द्वारा युक्तियुक्त रूप से अपेक्षा की जा सकती है या उसके स्त्रीधन या व्यथित व्यक्ति द्वारा संयुक्तत: या पृथक्त: धारित किसी अन्य संपत्ति का कोई अन्यसंक्रामण ; और

(ग) ऐसे संसाधनों या सुविधाओं तक, जिनका घरेलू नातेदारी के आधार पर कोई व्यथित व्यक्ति, उपयोग या उपभोग करने के लिए हकदार है, जिसके अंतर्गत साझी गृहस्थी तक पहुंच भी है, लगातार पहुंच के लिए प्रतिषेध या निर्बन्धन ।

स्पष्टीकरण 2 – यह अवधारित करने के प्रयोजन के लिए कि क्या प्रत्यर्थी को कोई कार्य, लोप या किसी कार्य का करना या आचरण इस धारा के अधीन "घरेलू हिंसा" का गठन करता है, मामले के संपूर्ण तथ्यों और परिस्थितियों पर विचार किया जाएगा ।

अध्याय 3

संरक्षण अधिकारियों, सेवा प्रदाताओं आदि की शक्तियां और कर्तव्य

4. **संरक्षण अधिकारी को जानकारी का दिया जाना और जानकारी देने वाले के दायित्व का अपवर्जन** – (1) कोई व्यक्ति, जिसके पास ऐसा विश्वास करने का कारण है कि घरेलू हिंसा का कोई कार्य हो चुका है या हो रहा है या किए जाने की संभावना है, तो वह संबद्ध संरक्षण अधिकारी को इसके बारे में जानकारी दे सकेगा ।

(2) उपधारा (1) के प्रयोजन के लिए, किसी व्यक्ति द्वारा, सद्भाविक रूप से दी जाने वाली जानकारी के लिए, सिविल या दांडिक कोई दायित्व उपगत नहीं होगा ।

5. **पुलिस अधिकारियों, सेवा प्रदाताओं और मजिस्ट्रेट के कर्तव्य –** कोई पुलिस अधिकारी, संरक्षण अधिकारी, सेवा प्रदाता या मजिस्ट्रेट, जिसे घरेलू हिंसा की कोई शिकायत प्राप्त हुई है या जो घरेलू हिंसा की किसी घटना के स्थान पर अन्यथा उपस्थित है या जब घरेलू हिंसा की किसी घटना की रिपोर्ट उसको दी जाती है तो वह, व्यथित व्यक्ति को –

(क) इस अधिनियम के अधीन, किसी संरक्षण आदेश, धनीय राहत के लिए किसी आदेश, किसी अभिरक्षा आदेश, किसी निवास आदेश, किसी प्रतिकर आदेश या ऐसे एक आदेश से अधिक के रूप में किसी अनुतोष को अभिप्राप्त करने के लिए आवेदन करने के उसके अधिकार की ;

(ख) सेवा प्रदाताओं की सेवाओं की उपलब्धता की ;

(ग) संरक्षण अधिकारियों की सेवाओं की उपलब्धता की ;

(घ) विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) के अधीन नि:शुल्क विधिक सेवा के उसके अधिकार की ;

(ङ) जहां कहीं सुसंगत हो, भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 498क के अधीन किसी परिवाद के फाइल करने के उसके अधिकार की,

जानकारी देगा :

परन्तु इस अधिनियम की किसी बात का किसी रीति में यह अर्थ नहीं

लगाया जाएगा कि वह किसी पुलिस अधिकारी को किसी संज्ञेय अपराध के किए जाने के बारे में जानकारी प्राप्त होने पर विधि के अनुसार कार्यवाही करने के लिए, अपने कर्तव्य से अवमुक्त करती है ।

6. **आश्रय गृहों के कर्तव्य –** यदि, कोई व्यथित व्यक्ति या उसकी ओर से कोई संरक्षण अधिकारी या कोई सेवा प्रदाता किसी आश्रय गृह के भारसाधक व्यक्ति से, उसको आश्रय उपलब्ध करने का अनुरोध करता है तो आश्रय गृह का ऐसा भारसाधक व्यक्ति, व्यथित व्यक्ति को, आश्रय गृह में आश्रय उपलब्ध कराएगा ।

7. **चिकित्सीय सुविधाओं के कर्तव्य –** यदि, कोई व्यथित व्यक्ति या उसकी ओर से कोई संरक्षण अधिकारी या कोई सेवा प्रदाता, किसी चिकित्सीय सुविधा के भारसाधक व्यक्ति से, उसको कोई चिकित्सीय सहायता उपलब्ध कराने का अनुरोध करता है तो चिकित्सीय सुविधा को ऐसा भारसाधक व्यक्ति, व्यथित व्यक्ति को उस चिकित्सीय सुविधा में चिकित्सीय सहायता उपलब्ध कराएगा ।

8. **संरक्षण अधिकारियों की नियुक्ति –** (1) राज्य सरकार, अधिसूचना द्वारा प्रत्येक जिले में उतने संरक्षण अधिकारी नियुक्त करेगी जितने वह आवश्यक समझे और वह उन क्षेत्र या क्षेत्रों को भी अधिसूचित करेगी, जिनके भीतर संरक्षण अधिकारी इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन उसको प्रदत्त शक्तियों का प्रयोग और कर्तव्यों का पालन करेगा ।

(2) ऐसे संरक्षण अधिकारी, जहां तक संभव हो, महिलाएं होंगी और उनके पास ऐसी अर्हताएं और अनुभव होगा, जो विहित किया जाए ।

(3) संरक्षण अधिकारी और उसके अधीनस्थ अन्य अधिकारियों की सेवा के निबंधन और शर्तें ऐसी होंगी जो विहित की जाएं ।

9. **संरक्षण अधिकारियों के कर्तव्य और कृत्य** – (1) संरक्षण अधिकारी के निम्नलिखित कर्तव्य होंगे –

(क) किसी मजिस्ट्रेट को, इस अधिनियम के अधीन उसके कृत्यों के निर्वहन में सहायता करना ;

(ख) किसी घरेलू हिंसा की शिकायत की प्राप्ति पर, किसी मजिस्ट्रेट को, ऐसे प्ररूप और रीति में जो विहित की जाए, घरेलू हिंसा की रिपोर्ट करना और उस पुलिस थाने के, जिसकी अधिकारिता की स्थानीय सीमा के भीतर, घरेलू हिंसा का होना

अभिकथित किया गया है, भारसाधक पुलिस अधिकारी और उस क्षेत्र के सेवा प्रदाताओं को, उस रिपोर्ट की प्रतियां अग्रेषित करना ;

(ग) किसी मजिस्ट्रेट को, यदि व्यथित व्यक्ति, किसी संरक्षण आदेश के जारी करने के लिए, अनुतोष का दावा करने की वांछा करता हो, तो ऐसे प्ररूप और ऐसी रीति में जो विहित की जाए, आवेदन करना ;

(घ) यह सुनिश्चित करना कि किसी व्यथित व्यक्ति को विधिक सेवा प्राधिकरण अधिनियम, 1987 (1987 का 39) के अधीन विधिक सहायता उपलब्ध कराई गई है और उस विहित प्ररूप को, जिसमें शिकायत की जानी है, मुफ्त उपलब्ध कराना ;

(ङ) मजिस्ट्रेट की अधिकारिता वाले स्थानीय क्षेत्र में ऐसे सभी सेवा प्रदाताओं की, जो विधिक सहायता या परामर्श आश्रय गृह चिकित्सीय सुविधाएं उपलब्ध कराते हैं, एक सूची बनाए रखना ;

(च) यदि व्यथित व्यक्ति ऐसी अपेक्षा करता है तो कोई सुरक्षित आश्रय गृह का उपलब्ध कराना और किसी व्यक्ति को आश्रय गृह में सौंपते हुए, अपनी रिपोर्ट की एक प्रति पुलिस थाने को और उस क्षेत्र में, जहां वह आश्रय गृह अवस्थित है, अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट को अग्रेषित करना ;

(छ) व्यथित व्यक्ति को शारीरिक क्षतियां हुई हैं तो उसका चिकित्सीय परीक्षण कराना, और उस क्षेत्र में, जहां घरेलू हिंसा का होना अभिकथित किया गया है, पुलिस थाने को और अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट को उस चिकित्सीय रिपोर्ट की एक प्रति अग्रेषित करना ;

(ज) यह सुनिश्चित करना कि धारा 20 के अधीन अनुतोष के लिए आदेश का, दंड प्रक्रिया संहिता,1973 (1974 का 2) के अधीन विहित प्रक्रिया के अनुसार अनुपालन और निष्पादन हो गया है ;

(झ) ऐसे अन्य कर्तव्यों का, जो विहित किए जाएं, पालन करना ।

(2) संरक्षण अधिकारी, मजिस्ट्रेट के नियंत्रण और पर्यवेक्षण के अधीन होगा और वह, इस अधिनियम द्वारा या उसके अधीन मजिस्ट्रेट और सरकार द्वारा उस पर अधिरोपित कर्तव्यों का पालन करेगा ।

10. **सेवा प्रदाता** – (1) ऐसे नियमों के अधीन रहते हुए जो इस

निमित्त बनाए जाएं, सोसाइटी रजिस्ट्रीकरण अधिनियम, 1860 (1860 का 21) के अधीन रजिस्ट्रीकृत कोई स्वैच्छिक संगम या कंपनी अधिनियम, 1956 (1956 का 1) के अधीन या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन रजिस्ट्रीकृत कोई कंपनी, जिसका उद्देश्य किसी विधिपूर्ण साधन द्वारा, महिलाओं के अधिकारों और हितों का संरक्षण करना है, जिसके अंतर्गत विधिक सहायता, चिकित्सीय सहायता या अन्य सहायता उपलब्ध कराना भी है, स्वयं को इस अधिनियम के प्रयोजनों के लिए एक सेवा प्रदाता के रूप में राज्य सरकार के पास रजिस्टर कराएगी ।

(2) किसी सेवा प्रदाता के पास, जो उपधारा (1) के अधीन रजिस्ट्रीकृत है, निम्नलिखित शक्तियां होंगी –

(क) यदि व्यथित व्यक्ति ऐसी वांछा करता हो तो विहित प्ररूप में घरेलू हिंसा की रिपोर्ट अभिलिखित करना और उसकी एक प्रति, उस क्षेत्र में, जहां घरेलू हिंसा हुई है, अधिकारिता रखने वाले मजिस्ट्रेट और संरक्षण अधिकारी को अग्रेषित करना ;

(ख) व्यथित व्यक्ति का चिकित्सीय परीक्षण कराना और उस संरक्षण अधिकारी और पुलिस थाने को, जिसकी स्थानीय सीमा के भीतर, घरेलू हिंसा हुई है, चिकित्सीय रिपोर्ट की प्रति अग्रेषित करना ;

(ग) यह सुनिश्चित करना कि व्यथित व्यक्ति को, यदि वह ऐसी वांछा करे तो, आश्रय गृह में आश्रय उपलब्ध कराया गया है और व्यथित व्यक्ति को, आश्रय गृह में सौंपे जाने की रिपोर्ट, उस पुलिस थाने को, जिसकी स्थानीय सीमा के भीतर घरेलू हिंसा हुई है, अग्रेषित करना ।

(3) इस अधिनियम के अधीन, घरेलू हिंसा के निवारण हेतु शक्तियों के प्रयोग या कृत्यों के निर्वहन में, सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात के लिए कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही, किसी सेवा प्रदाता या सेवा प्रदाता के किसी सदस्य के, जो इस अधिनियम के अधीन कार्य कर रहा है या करने वाला समझा जाता है या करने के लिए तात्पर्यित है, विरुद्ध नहीं होगी ।

11. **सरकार के कर्तव्य** – केन्द्रीय सरकार और प्रत्येक राज्य सरकार यह सुनिश्चित करने के लिए सभी उपाय करेगी कि –

(क) इस अधिनियम के उपबंधों का नियमित अंतरालों पर, लोक

मीडिया के माध्यम से जिसके अंतर्गत टेलीविजन, रेडियो और प्रिंट मीडिया भी है, व्यापक प्रचार किया जाता है ;

(ख) केन्द्रीय सरकार और राज्य सरकार के अधिकारियों को, जिसके अंतर्गत पुलिस अधिकारी और न्यायिक सेवाओं के सदस्य भी हैं इस अधिनियम द्वारा उठाए गए विवाद्यकों पर समय-समय पर सुग्राहीकरण और जानकारी प्रशिक्षण दिया जाता है ;

(ग) घरेलू हिंसा के विवाद्यकों को संबोधित करने के लिए विधि, गृह कार्यों जिनके अंतर्गत विधि और व्यवस्था भी है, स्वास्थ्य और मानव संसाधनों के संबंध में कार्रवाई करने वाले संबंधित मंत्रालयों और विभागों द्वारा दी जाने वाली सेवाओं के बीच प्रभावी समन्वय स्थापित किया गया है और उनका कालिक पुनर्विलोकन किया जाता है ;

(घ) इस अधिनियम के अधीन महिलाओं के लिए सेवाओं के परिदान से संबद्ध विभिन्न मंत्रालयों के लिए प्रोटोकाल, जिसके अंतर्गत न्यायालयों को तैयार करना और किसी स्थान पर स्थापित करना भी है ।

अध्याय 4

अनुतोषों के आदेश अभिप्राप्त करने के लिए प्रक्रिया

12. **मजिस्ट्रेट को आवेदन** – (1) कोई व्यथित व्यक्ति या संरक्षण अधिकारी या व्यथित व्यक्ति की ओर से कोई अन्य व्यक्ति, इस अधिनियम के अधीन एक या अधिक अनुतोष प्राप्त करने के लिए मजिस्ट्रेट को आवेदन प्रस्तुत कर सकेगा :

परन्तु मजिस्ट्रेट, ऐसे आवेदन पर कोई आदेश पारित करने से पहले, किसी संरक्षण अधिकारी या सेवा प्रदाता से उसके द्वारा प्राप्त, किसी घरेलू हिंसा की रिपोर्ट पर विचार करेगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन ईप्सित किसी अनुतोष में वह अनुतोष भी सम्मिलित हो सकेगा जिसके लिए किसी प्रत्यर्थी द्वारा की गई घरेलू हिंसा के कार्यों द्वारा कारित की गई क्षतियों के लिए प्रतिकर या नुकसान के लिए वाद संस्थित करने के ऐसे व्यक्ति के अधिकार पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना, किसी प्रतिकर या नुकसान के संदाय के लिए कोई आदेश जारी किया जाता है :

परन्तु जहां किसी न्यायालय द्वारा, प्रतिकर या नुकसानी के रूप में किसी रकम के लिए, व्यथित व्यक्ति के पक्ष में कोई डिक्री पारित की गई है यदि इस अधिनियम के अधीन, मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए किसी आदेश के अनुसरण में कोई रकम संदत्त की गई है या संदेय है तो ऐसी डिक्री के अधीन संदेय रकम के विरुद्ध मुजरा होगी और सिविल प्रक्रिया संहिता, 1908 (1908 का 5) में या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में किसी बात के होते हुए भी, यह डिक्री, इस प्रकार मुजरा किए जाने के पश्चात् अतिशेष रकम के लिए, यदि कोई हो, निष्पादित की जाएगी ।

(3) उपधारा (1) के अधीन प्रत्येक आवेदन, ऐसे प्ररूप में और ऐसी विशिष्टियां जो विहित की जाएं या यथासंभव उसके निकटतम रूप में अंतर्विष्ट होगा ।

(4) मजिस्ट्रेट, सुनवाई की पहली तारीख नियत करेगा जो न्यायालय द्वारा आवेदन की प्राप्ति की तारीख से सामान्यत: तीन दिन से अधिक नहीं होगी ।

(5) मजिस्ट्रेट, उपधारा (1) के अधीन दिए गए प्रत्येक आवेदन का, प्रथम सुनवाई की तारीख से साठ दिन की अवधि के भीतर निपटारा करने का प्रयास करेगा ।

13. **सूचना की तामील** – (1) धारा 12 के अधीन नियत की गई सुनवाई की तारीख की सूचना मजिस्ट्रेट द्वारा संरक्षण अधिकारी को दी जाएगी जो प्रत्यर्थी पर और मजिस्ट्रेट द्वारा निदेशित किसी अन्य व्यक्ति पर, ऐसे साधनों द्वारा जो विहित किए जाएं, उसकी प्राप्ति की तारीख से अधिकतम दो दिन की अवधि के भीतर या ऐसे अतिरिक्त युक्तियुक्त समय के भीतर जो मजिस्ट्रेट द्वारा अनुज्ञात किया जाए, तामील करवाएगा ।

(2) संरक्षण अधिकारी द्वारा की गई सूचना की तामील की घोषणा, ऐसे प्ररूप में जो विहित किया जाए इस बात का सबूत होगी कि ऐसी सूचना की तामील प्रत्यर्थी पर और मजिस्ट्रेट द्वारा निदेशित किसी अन्य व्यक्ति पर कर दी गई है, जब तक कि प्रतिकूल साबित नहीं कर दिया जाता है ।

14. **परामर्श** – (1) मजिस्ट्रेट, इस अधिनियम के अधीन कार्यवाहियों के किसी प्रक्रम पर, प्रत्यर्थी या व्यथित व्यक्ति को, अकेले या संयुक्ततः सेवा प्रदाता के किसी सदस्य से, जो परामर्श में ऐसी अर्हताएं और अनुभव रखता है, जो विहित की जाएं, परामर्श लेने का निदेश दे सकेगा ।

(2) जहां मजिस्ट्रेट ने उपधारा (1) के अधीन कोई निदेश जारी किया है, वहां वह मामले की सुनवाई की अगली तारीख, दो मास से अनधिक अवधि के भीतर नियत करेगा ।

15. **कल्याण विशेषज्ञ की सहायता** – इस अधिनियम के अधीन किन्हीं कार्यवाहियों में, मजिस्ट्रेट अपने कृत्यों के निर्वहन में अपनी सहायता के प्रयोजन के लिए, ऐसे व्यक्ति की, अधिमानतः किसी महिला की, चाहे वह व्यथित व्यक्ति की नातेदार हो या नहीं, जो वह ठीक समझे, जिसके अंतर्गत ऐसा व्यक्ति भी है जो परिवार कल्याण के संवर्धन में लगा हुआ है, सेवाएं प्राप्त कर सकेगा ।

16. **कार्यवाहियों का बंद कमरे में किया जाना** – यदि मजिस्ट्रेट ऐसा समझता है कि मामले की परिस्थितियों के कारण ऐसा आवश्यक है और यदि कार्यवाहियों का कोई पक्षकार ऐसी वांछा करे, तो वह इस अधिनियम के अधीन, कार्यवाहियां बंद कमरे में संचालित कर सकेगा ।

17. **साझी गृहस्थी में निवास करने का अधिकार** – (1) तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, घरेलू नातेदारी में प्रत्येक महिला को साझी गृहस्थी में निवास करने का अधिकार होगा चाहे वह उसमें कोई अधिकार, हक या फायदाप्रद हित रखती हो या नहीं ।

(2) विधि द्वारा स्थापित प्रक्रिया के अनुसरण में के सिवाय, कोई व्यथित व्यक्ति, प्रत्यर्थी द्वारा किसी साझी गृहस्थी या उसके किसी भाग से बेदखल या अपवर्जित नहीं किया जाएगा ।

18. **संरक्षण आदेश** – मजिस्ट्रेट, व्यथित व्यक्ति और प्रत्यर्थी को सुनवाई का एक अवसर दिए जाने के पश्चात् और उसका प्रथमदृष्ट्या समाधान होने पर कि घरेलू हिंसा हुई है या होने वाली है, व्यथित व्यक्ति के पक्ष में एक संरक्षण आदेश पारित कर सकेगा तथा प्रत्यर्थी को निम्नलिखित से प्रतिषिद्ध कर सकेगा, –

(क) घरेलू हिंसा के किसी कार्य को करना ;

(ख) घरेलू हिंसा के कार्यों के कारित करने में सहायता या दुष्प्रेरण करना ;

(ग) व्यथित व्यक्ति के नियोजन के स्थान में या यदि व्यथित व्यक्ति बालक है, तो उसके विद्यालय में या किसी अन्य स्थान में जहां व्यथित व्यक्ति बार-बार आता जाता है, प्रवेश करना ;

(घ) व्यथित व्यक्ति से संपर्क करने का प्रयत्न करना, चाहे वह किसी रूप में हो, इसके अंतर्गत वैयक्तिक, मौखिक या लिखित या इलैक्ट्रोनिक या दूरभाषीय संपर्क भी है ;

(ङ) किन्हीं आस्तियों का अन्यसंक्रामण करना; उन बैंक लाकरों या बैंक खातों का प्रचालन करना जिनका दोनों पक्षों द्वारा प्रयोग या धारण या उपयोग, व्यथित व्यक्ति और प्रत्यर्थी द्वारा संयुक्ततः या प्रत्यर्थी द्वारा अकेले किया जा रहा है, जिसके अंतर्गत उसका स्त्रीधन या अन्य कोई संपत्ति भी है, जो मजिस्ट्रेट की इजाजत के बिना या तो पक्षकारों द्वारा संयुक्ततः या उनके द्वारा पृथक्तः धारित की हुई है ;

(च) आश्रितों, अन्य नातेदारों या किसी ऐसे व्यक्ति को जो व्यथित व्यक्ति को घरेलू हिंसा के विरुद्ध सहायता देता है, के साथ हिंसा कारित करना ;

(छ) ऐसा कोई अन्य कार्य करना जो संरक्षण आदेश में विनिर्दिष्ट किया गया है ।

19. **निवास आदेश** – (1) धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन किसी आवेदन का निपटारा करते समय, मजिस्ट्रेट, यह समाधान होने पर कि घरेलू हिंसा हुई है तो निम्नलिखित निवास आदेश पारित कर सकेगा :–

(क) प्रत्यर्थी को साझी गृहस्थी से, किसी व्यक्ति के कब्जे को बेकब्जा करने से या किसी अन्य रीति में उस कब्जे में विघ्न डालने से अवरुद्ध करना, चाहे प्रत्यर्थी, उस साझी गृहस्थी में विधिक या साधारण रूप से हित रखता है या नहीं ;

(ख) प्रत्यर्थी को, उस साझी गृहस्थी से स्वयं को हटाने का निदेश देना ;

(ग) प्रत्यर्थी या उसके किसी नातेदारों को साझी गृहस्थी के किसी भाग में, जिसमें व्यथित व्यक्ति निवास करता है, प्रवेश करने से अवरुद्ध करना ;

(घ) प्रत्यर्थी को, किसी साझी गृहस्थी के अन्यसंक्रांत करने या व्ययनित करने या उसे विल्लंगमित करने से अवरुद्ध करना ;

(ङ) प्रत्यर्थी को, मजिस्ट्रेट की इजाजत के सिवाय, साझी गृहस्थी में अपने अधिकार त्यजन से, अवरुद्ध करना ; या

(च) प्रत्यर्थी को, व्यथित व्यक्ति के लिए उसी स्तर की आनुकल्पिक वास सुविधा जैसी वह साझी गृहस्थी में उपयोग कर रही थी या उसके लिए किराए का संदाय करने, यदि परिस्थितियां ऐसी अपेक्षा करे, सुनिश्चित करने के लिए निदेश करना :

परन्तु यह कि खंड (ख) के अधीन कोई आदेश किसी व्यक्ति के, जो महिला है, विरुद्ध पारित नहीं किया जाएगा ।

(2) मजिस्ट्रेट, व्यथित व्यक्ति या ऐसे व्यथित व्यक्ति की किसी संतान की सुरक्षा के लिए, संरक्षण देने या सुरक्षा की व्यवस्था करने के लिए कोई अतिरिक्त शर्त अधिरोपित कर सकेगा या कोई अन्य निदेश पारित कर सकेगा जो वह युक्तियुक्त रूप से आवश्यक समझे ।

(3) मजिस्ट्रेट घरेलू हिंसा किए जाने का निवारण करने के लिए प्रत्यर्थी से, एक बंधपत्र, प्रतिभुओं सहित या उनके बिना निष्पादित करने की अपेक्षा कर सकेगा ।

(4) उपधारा (3) के अधीन कोई आदेश दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के अध्याय 8 के अधीन किया गया कोई आदेश समझा जाएगा और तद्नुसार कार्रवाई की जाएगी ।

(5) उपधारा (1), उपधारा (2) या उपधारा (3) के अधीन किसी आदेश को पारित करते समय, न्यायालय, उस व्यथित व्यक्ति को संरक्षण देने के लिए या उसकी सहायता के लिए या आदेश के क्रियान्वयन में उसकी ओर से आवेदन करने वाले व्यक्ति की सहायता करने के लिए, निकटतम पुलिस थाने में भारसाधक अधिकारी को निदेश देते हुए आदेश भी पारित कर सकेगा ।

(6) उपधारा (1) के अधीन कोई आदेश करते समय, मजिस्ट्रेट, पक्षकारों की वित्तीय आवश्यकताओं और संसाधनों को ध्यान में रखते हुए किराए और अन्य संदायों के उन्मोचन से संबंधित बाध्यताओं को प्रत्यर्थी पर अधिरोपित कर सकेगा ।

(7) मजिस्ट्रेट, उस पुलिस थाने के भारसाधक अधिकारी को, जिसकी अधिकारिता में, संरक्षण आदेश के कार्यान्वयन में सहायता करने के लिए मजिस्ट्रेट से निवेदन किया गया है, निदेश कर सकेगा ।

(8) मजिस्ट्रेट, व्यथित व्यक्ति को उसके स्त्रीधन या किसी अन्य संपत्ति या मूल्यवान प्रतिभूति का, जिसके लिए वह हकदार है, कब्जा

लौटाने के लिए प्रत्यर्थी को निदेश दे सकेगा ।

20. **धनीय अनुतोष** – (1) धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन किसी आवेदन का निपटारा करते समय, मजिस्ट्रेट घरेलू हिंसा के परिणामस्वरूप व्यथित व्यक्ति और व्यथित व्यक्ति की किसी संतान द्वारा उपगत व्यय और सहन की गई हानियों की पूर्ति के लिए धनीय अनुतोष का संदाय करने के लिए प्रत्यर्थी को निदेश दे सकेगा और ऐसे अनुतोष में निम्नलिखित सम्मिलित हो सकेंगे किन्तु वह निम्नलिखित तक ही सीमित नहीं होगा –

(क) उपार्जनों की हानि ;

(ख) चिकित्सीय व्ययों ;

(ग) व्यथित व्यक्ति के नियंत्रण में से किसी संपत्ति के नाश, नुकसानी या हटाए जाने के कारण हुई हानि ; और

(घ) व्यथित व्यक्ति के साथ-साथ उसकी संतान, यदि कोई हों, के लिए भरण-पोषण, जिसमें दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) की धारा 125 या तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के अधीन कोई आदेश या भरण-पोषण के आदेश के अतिरिक्त कोई आदेश सम्मिलित है ।

(2) इस धारा के अधीन अनुदत्त धनीय अनुतोष, पर्याप्त, उचित और युक्तियुक्त होगा तथा उस जीवनस्तर से, जिसका व्यथित व्यक्ति अभ्यस्त है, संगत होगा ।

(3) मजिस्ट्रेट को, जैसा मामले की प्रकृत्ति और परिस्थितियां, अपेक्षा करें, भरण-पोषण के एक समुचित एकमुश्त संदाय या मासिक संदाय का आदेश देने की शक्ति होगी ।

(4) मजिस्ट्रेट, आवेदन के पक्षकारों को और पुलिस थाने के भारसाधक को, जिसकी स्थानीय सीमाओं की अधिकारिता में प्रत्यर्थी निवास करता है, उपधारा (1) के अधीन दिए गए धनीय अनुतोष के आदेश की एक प्रति भेजेगा ।

(5) प्रत्यर्थी, उपधारा (1) के अधीन आदेश में विनिर्दिष्ट अवधि के भीतर व्यथित व्यक्ति को अनुदत्त धनीय अनुतोष का संदाय करेगा ।

(6) उपधारा (1) के अधीन आदेश के निबंधनों में संदाय करने के लिए प्रत्यर्थी की ओर से असफलता पर, मजिस्ट्रेट, प्रत्यर्थी के नियोजक या

ऋणी को, व्यथित व्यक्ति को प्रत्यक्षतः संदाय करने या मजदूरी या वेतन का एक भाग न्यायालय में जमा करने या शोध्य ऋण या प्रत्यर्थी के खाते में शोध्य या उद्भूत ऋण को, जो प्रत्यर्थी द्वारा संदेय धनीय अनुतोष में समायोजित कर ली जाएगी, जमा करने का निदेश दे सकेगा ।

21. **अभिरक्षा आदेश** – तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी, मजिस्ट्रेट, इस अधिनियम के अधीन संरक्षण आदेश या किसी अन्य अनुतोष के लिए आवेदन की सुनवाई के किसी प्रक्रम पर व्यथित व्यक्ति को या उसकी ओर से आवेदन करने वाले व्यक्ति को किसी संतान की अस्थायी अभिरक्षा दे सकेगा और यदि आवश्यक हो तो प्रत्यर्थी द्वारा ऐसी संतान या संतानों से भेंट के इंतजाम को विनिर्दिष्ट कर सकेगा :

परन्तु, यदि मजिस्ट्रेट की यह राय है कि प्रत्यर्थी की कोई भेंट संतान या संतानों के हितों के लिए हानिकारक हो सकती है तो मजिस्ट्रेट ऐसी भेंट करने को अनुज्ञात करने से इनकार करेगा ।

22. **प्रतिकर आदेश** – अन्य अनुतोष के अतिरिक्त, जो इस अधिनियम के अधीन अनुदत्त की जाएं, मजिस्ट्रेट, व्यथित व्यक्ति द्वारा किए गए आवेदन पर, प्रत्यर्थी को क्षतियों के लिए, जिसके अंतर्गत उस प्रत्यर्थी द्वारा की गई घरेलू हिंसा के कार्यों द्वारा मानसिक यातना और भावनात्मक कष्ट सम्मिलित हैं, प्रतिकर और नुकसानी का संदाय करने के लिए प्रत्यर्थी को निदेश देने का आदेश पारित कर सकेगा ।

23. **अंतरिम और एकपक्षीय आदेश देने की शक्ति** – (1) मजिस्ट्रेट, इस अधिनियम के अधीन उसके समक्ष किसी कार्यवाही में, ऐसा अंतरिम आदेश, जो न्यायसंगत और उपयुक्त हो, पारित कर सकेगा ।

(2) यदि मजिस्ट्रेट का यह समाधान हो जाता है कि प्रथमदृष्ट्या उसने कोई आवेदन यह प्रकट करता है कि प्रत्यर्थी घरेलू हिंसा का कोई कार्य कर रहा है या उसने किया है, या यह संभावना है कि प्रत्यर्थी घरेलू हिंसा का कोई कार्य कर सकता है, तो वह व्यथित व्यक्ति के ऐसे प्ररूप में जो विहित किया जाए, शपथपत्र के आधार पर, यथास्थिति, धारा 18, धारा 19, धारा 20, धारा 21 या धारा 22 के अधीन प्रत्यर्थी के विरुद्ध एकपक्षीय आदेश दे सकेगा ।

24. **न्यायालय द्वारा आदेश की प्रतियों का निःशुल्क दिया जाना** – मजिस्ट्रेट, सभी मामलों में जहां उसने इस अधिनियम के अधीन कोई

आदेश पारित किया है, वहां यह आदेश देगा कि ऐसे आदेश की एक प्रति निःशुल्क आवेदन के पक्षकारों को, उस पुलिस थाने के भारसाधक पुलिस अधिकारी को, जिसकी अधिकारिता में मजिस्ट्रेट के पास पहुंच की गई है और न्यायालय की अधिकारिता की स्थानीय सीमाओं के भीतर अवस्थित किसी सेवा प्रदाता को और यदि किसी सेवा प्रदाता ने किसी घरेलू घटना की रिपोर्ट को रजिस्ट्रीकृत किया है तो उस सेवा प्रदाता को दी जाएगी ।

25. **आदेशों की अवधि और उनमें परिवर्तन** – (1) धारा 18 के अधीन किया गया संरक्षण आदेश व्यथित व्यक्ति द्वारा निर्मोचन के लिए आवेदन किए जाने तक प्रवृत्त रहेगा ।

(2) यदि मजिस्ट्रेट का, व्यथित व्यक्ति या प्रत्यर्थी से किसी आवेदन की प्राप्ति पर यह समाधान हो जाता है कि इस अधिनियम के अधीन किए गए किसी आदेश में परिस्थितियों में परिवर्तन के कारण परिवर्तन, उपांतरण या प्रतिसंहरण अपेक्षित है तो वह लेखबद्ध किए जाने वाले कारणों से ऐसा आदेश, जो वह समुचित समझे, पारित कर सकेगा ।

26. **अन्य वादों और विधिक कार्यवाहियों में अनुतोष** – (1) धारा 18, धारा 19, धारा 20, धारा 21 और धारा 22 के अधीन उपलब्ध कोई अनुतोष, किसी सिविल न्यायालय, कुटुम्ब न्यायालय या किसी दंड न्यायालय के समक्ष किसी व्यथित व्यक्ति और प्रत्यर्थी को प्रभावित करने वाली किसी विधिक कार्यवाही में भी, चाहे ऐसी कार्यवाही इस अधिनियम के प्रारंभ से पूर्व या उसके पश्चात् आरंभ की गई हो, मांगा जा सकेगा ।

(2) उपधारा (1) में निर्दिष्ट कोई अनुतोष, किसी अन्य अनुतोष के अतिरिक्त और उसके साथ-साथ जिसकी व्यथित व्यक्ति, किसी सिविल या दंड न्यायालय के समक्ष ऐसे वाद या विधिक कार्यवाही में वांछा करे, मांगा जा सकेगा ।

(3) यदि इस अधिनियम के अधीन किसी कार्यवाही से भिन्न किन्हीं कार्यवाहियों में व्यथित व्यक्ति द्वारा कोई अनुतोष अभिप्राप्त कर लिया गया है, तो वह ऐसे अनुतोष को अनुदत्त करने वाले मजिस्ट्रेट को सूचित करने के लिए बाध्य होगा ।

27. **अधिकारिता** – (1) यथास्थिति, प्रथम वर्ग के न्यायिक मजिस्ट्रेट या महानगर मजिस्ट्रेट का न्यायालय, जिसकी स्थानीय सीमाओं के भीतर –

(क) व्यथित व्यक्ति स्थायी रूप से या अस्थायी रूप से निवास

करता है या कारबार करता है या नियोजित है ; या

(ख) प्रत्यर्थी निवास करता है या कारबार करता है या नियोजित है ; या

(ग) हेतुक उद्भूत होता है,

इस अधिनियम के अधीन कोई संरक्षण आदेश और अन्य आदेश अनुदत्त करने और इस अधिनियम के अधीन अपराधों का विचारण करने के लिए सक्षम न्यायालय होगा ।

(2) इस अधिनियम के अधीन किया गया कोई आदेश समस्त भारत में प्रवर्तनीय होगा ।

28. **प्रक्रिया** – (1) इस अधिनियम में अन्यथा उपबंधित के सिवाय धारा 12, धारा 18, धारा 19, धारा 20, धारा 21, धारा 22 और धारा 23 के अधीन सभी कार्यवाहियां और धारा 31 के अधीन अपराध, दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) के उपबंधों द्वारा शासित होंगे ।

(2) उपधारा (1) की कोई बात, धारा 12 के अधीन या धारा 23 की उपधारा (2) के अधीन किसी आवेदन के निपटारे के लिए अपनी स्वयं की प्रक्रिया अधिकथित करने से न्यायालय को निवारित नहीं करेगी ।

29. **अपील** – उस तारीख से, जिसको मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए आदेश की, यथास्थिति, व्यथित व्यक्ति या प्रत्यर्थी पर जिस पर भी पश्चात्वर्ती हो, तामील की जाती है, तीस दिनों के भीतर सेशन न्यायालय में कोई अपील हो सकेगी ।

अध्याय 5

प्रकीर्ण

30. **संरक्षण अधिकारियों और सेवा प्रदाताओं के सदस्यों का लोक सेवक होना** – संरक्षण अधिकारी और सेवा प्रदाताओं के सदस्य जब वे इस अधिनियम के उपबंधों में से किसी उपबन्ध या उसके अधीन बनाए गए किन्हीं नियमों या आदेशों के अनुसरण में कोई कार्य कर रहे हों या उनका कार्य करना तात्पर्यित हो, तब यह समझा जाएगा कि वे भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 21 के अर्थान्तर्गत लोक सेवक है ।

31. **प्रत्यर्थी द्वारा संरक्षण आदेश के भंग के लिए शास्ति** – (1) प्रत्यर्थी द्वारा संरक्षण आदेश या किसी अंतरिम संरक्षण आदेश का भंग, इस

अधिनियम के अधीन एक अपराध होगा और वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी, या जुर्माने से, जो बीस हजार रुपए तक का हो सकेगा, या दोनों से, दंडनीय होगा ।

(2) उपधारा (1) के अधीन अपराध का विचारण यथासाध्य उस मजिस्ट्रेट द्वारा किया जाएगा जिसने वह आदेश पारित किया था, जिसका भंग अभियुक्त द्वारा कारित किया जाना अभिकथित किया गया है ।

(3) उपधारा (1) के अधीन आरोपों को विरचित करते समय, मजिस्ट्रेट, यथास्थिति, भारतीय दंड संहिता (1860 का 45) की धारा 498क, या उस संहिता के किसी अन्य उपबंध, या दहेज प्रतिषेध अधिनियम, 1961 (1961 का 28) के अधीन आरोपों को भी विरचित कर सकेगा, यदि तथ्यों से यह प्रकट होता है कि उन उपबंधों के अधीन कोई अपराध हुआ है ।

32. **संज्ञान और सबूत** द्ध (1) दंड प्रक्रिया संहिता, 1973 (1974 का 2) में अंतर्विष्ट किसी बात के होते हुए भी धारा 31 की उपधारा (1) के अधीन अपराध संज्ञेय और अजमानतीय होगा ।

(2) व्यथित व्यक्ति के एकमात्र परिसाक्ष्य पर, न्यायालय यह निष्कर्ष निकाल सकेगा कि धारा 31 की उपधारा (1) के अधीन अभियुक्त द्वारा कोई अपराध किया गया है ।

33. **संरक्षण अधिकारी द्वारा कर्तव्यों का निर्वहन न करने के लिए शास्ति** – यदि कोई संरक्षण अधिकारी, संरक्षण आदेश में मजिस्ट्रेट द्वारा यथा निदेशित अपने कर्तव्यों का, किसी पर्याप्त हेतुक के बिना, निर्वहन करने में असफल रहता है या इंकार करता है, तो वह दोनों में से किसी भांति के कारावास से, जिसकी अवधि एक वर्ष तक की हो सकेगी या जुर्माने से, जो बीस हजार रुपए तक का हो सकेगा या दोनों से, दंडित किया जाएगा ।

34. **संरक्षण अधिकारी द्वारा किए गए अपराध का संज्ञान** – संरक्षण अधिकारी के विरुद्ध कोई अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही तब तक नहीं होगी जब तक राज्य सरकार या इस निमित्त उसके द्वारा प्राधिकृत किसी अधिकारी की पूर्व मंजूरी से कोई परिवाद फाइल नहीं किया जाता है ।

35. **सद्भावपूर्वक की गई कार्रवाई के लिए संरक्षण** – इस अधिनियम या उसके अधीन बनाए गए किसी नियम या किए गए आदेश के अधीन

सद्भावपूर्वक की गई या की जाने के लिए आशयित किसी बात से कारित या कारित होने के लिए संभाव्य किसी नुकसान के लिए कोई भी वाद, अभियोजन या अन्य विधिक कार्यवाही संरक्षण अधिकारी के विरुद्ध नहीं होगी ।

36. **अधिनियम का किसी अन्य विधि के अल्पीकरण में न होना** – इस अधिनियम के उपबंध, तत्समय प्रवृत्त किसी अन्य विधि के उपबंधों के अतिरिक्त होंगे और न कि उनके अल्पीकरण में ।

37. **केन्द्रीय सरकार की नियम बनाने की शक्ति** – (1) केन्द्रीय सरकार, अधिसूचना द्वारा, इस अधिनियम के उपबंधों को कार्यान्वित करने के लिए नियम, बना सकेगी ।

(2) विशिष्टतया और पूर्वगामी शक्ति की व्यापकता पर प्रतिकूल प्रभाव डाले बिना ऐसे नियम निम्नलिखित सभी या किन्हीं विषयों के लिए उपबंध कर सकेंगे, अर्थात :–

(क) वे अर्हताएं और अनुभव, जो धारा 8 की उपधारा (2) के अधीन किसी संरक्षण अधिकारी के पास होंगे ;

(ख) धारा 8 की उपधारा (3) के अधीन संरक्षण अधिकारियों और उसके अधीनस्थ अन्य अधिकारियों की सेवा के निबंधन और शर्तें ;

(ग) वह प्ररूप और रीति जिसमें धारा 9 की उपधारा (1) के खंड (ख) के अधीन कोई घरेलू घटना रिपोर्ट बनाई जा सकेगी ;

(घ) वह प्ररूप और रीति जिसमें, धारा 9 की उपधारा (1) के खंड (ग) के अधीन संरक्षण आदेश के लिए मजिस्ट्रेट को कोई आवेदन किया जा सकेगा ;

(ङ) वह प्ररूप जिसमें, धारा 9 की उपधारा (1) के खंड (घ) के अधीन कोई परिवाद फाइल किया जाएगा ;

(च) धारा 9 की उपधारा (1) के खंड (झ) के अधीन संरक्षण अधिकारी द्वारा पालन किए जाने वाले अन्य कर्तव्य ;

(छ) धारा 10 की उपधारा (1) के अधीन सेवा प्रदाताओं के रजिस्ट्रीकरण को विनियमित करने के नियम ;

(ज) वह प्ररूप जिसमें इस अधिनियम के अधीन अनुतोषों की वांछा करने के लिए धारा 12 की उपधारा (1) के अधीन कोई

आवेदन किया जा सकेगा और वे विशिष्टियां जो उस धारा की उपधारा (3) के अधीन ऐसे आवेदन में अंतर्विष्ट होंगी ;

(झ) धारा 13 की उपधारा (1) के अधीन सूचनाओं की तामील करने के उपाय ;

(ञ) धारा 13 की उपधारा (2) के अधीन संरक्षण अधिकारी द्वारा दी जाने वाली सूचना की तामील की घोषणा का प्ररूप ;

(ट) परामर्श देने के लिए अर्हताएं और अनुभव जो धारा 14 की उपधारा (1) के अधीन सेवा प्रदाता के किसी सदस्य के पास होंगे ;

(ठ) वह प्ररूप, जिसमें कोई शपथपत्र, धारा 23 की उपधारा (2) के अधीन व्यथित व्यक्ति द्वारा फाइल किया जा सकेगा ;

(ड) कोई अन्य विषय, जो विहित किया जाना है या किया जा सकेगा ।

(3) इस अधिनियम के अधीन केंद्रीय सरकार द्वारा बनाया गया प्रत्येक नियम, बनाए जाने के पश्चात् यथाशीघ्र संसद् के प्रत्येक सदन के समक्ष, जब वह ऐसी कुल तीस दिन की अवधि के लिए सत्र में हो, जो एक सत्र में अथवा दो या अधिक आनुक्रमिक सत्रों में पूरी हो सकती है, रखा जाएगा और यदि उस सत्र के या पूर्वोक्त आनुक्रमिक सत्र के ठीक बाद के सत्र के अवसान के पूर्व दोनों सदन उस नियम में कोई परिवर्तन करने के लिए सहमत हो जाएं या दोनों सदन इस बात से सहमत हो जाएं कि वह नियम नहीं बनाया जाना चाहिए तो ऐसा नियम, यथास्थिति, तत्पश्चात् केवल ऐसे परिवर्तित रूप में ही प्रभावी होगा या उसका कोई प्रभाव नहीं होगा, तथापि, उस नियम के ऐसे परिवर्तित या निष्प्रभावी होने से उसके अधीन पहले की गई किसी बात की विधिमान्यता पर प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ेगा ।